घटनाएं जो इतिहास बन गईं

(मुनिश्री नगराजजी के कतिपय ऐतिहासिक एव चित्रमय जीवन-अध्याय)

लेखक

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०

भूमिका

डा० शंकरदयाल शर्मा

उप-राष्ट्रपति, भारत, नई दिल्ली

परिशिष्ट लेख

ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी

सम्पादक

रामचन्द्र सारस्वत

प्रकाशक

अर्हत् प्रकाशन, क

परामर्शक
श्री श्रीचन्द बैद
श्री नवरतनमल बेगवानी
श्री सोहनलाल कोकर

प्रकाशक :
बिमलकुमार जैन
मन्त्री, **अर्हत् प्रकाशन**
महेन्द्र मुनि सभागार
पी ७१०, 'ए' ब्लॉक, लेक टाउन
कलकत्ता-७०००८९

प्रथम सस्करण ३० दिसम्बर १९८८

मूल्य रु० ३००

मुख पृष्ठ श्री वीजेन्द्र शर्मा

मुद्रक
शुक्ला
कृष्ण म
मौजपुर,

र :
प्रिंटिंग सर्विस
न्दिर गली, जम्मु मोहल्ला
शाहदरा, दिल्ली-५३

चित्र मुद्रक
शालीमार ऑफसेट
२६२२, कुचा चेल्ल
नई दिल्ली-११०००२

र प्रेस
ान, दरियागज

GHATANAYAN JOITIHAS BAN GAIN

(Some Historical Chapters and Rare Pictures of the Auto Biography of Rev Muni Shri Nagraj Ji D Litt)

Author

Rashtrasant Muni Shri Nagraj Ji D Litt

Foreword by

Dr Shankar Dayal Sharma

Vice-President of India, New Delhi

Suplementary chapters by :

Jyotirvid Muni Shri Manmal Ji

Edited by :

Ram Chandra Sarswat

Published by :

Arhat Prakashan, calcutta

Advisors
Shri Shree Chand Baid
Shri Sohan Lal Kochar
Shri Navrattan Mal Begawani

Published by
Bimal Kumar Jain
Secretary, **Arhat Prakashan**
Mahendra Muni Sabhagar
P 710, 'A' Block, Lake Town, Calcutta 700089

First Edition 30th December 1988,

Price Rs 30 0
$ 60

Title Vijendra Sharma

Printed by
Suakla Printing Service
Krishna Mandir gali, Jammu mohalla
Moujpur, Shahadara, Delki-1ಜ0053

Pictures Printed by
Shalimar Offset Press
2622 Kucha chellan, Daryaganj
New Delhi-110002

भूमिका

मुनिश्री नगराज जी की "घटनाएं जो इतिहास बन गईं" पुस्तक पढ़ने का मुझे अवसर मिला।

मुनिश्री जी की यह पुस्तक आत्मपरक कम इतिहासपरक अधिक है। इसमें मुनिश्री जी ने अपने जीवन को कालक्रम ढंग से सपाट रूप में प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि उन्होंने अपने जीवन के उन्हीं प्रसंगों का स्पर्श किया है, जो सामाजिक और ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। यह बात पुस्तक के शीर्षक से भी स्पष्ट होती है। आत्मकथा तो इतिहास नहीं होती लेकिन इतिहास का एक भाग तो होती ही है। यह कहीं-न-कहीं अपने समय का दर्पण होता है। यह बात अलग है कि उस दर्पण में उस समय की पूरी तस्वीर दिखाई न दे। मुनिश्री जी की यह पुस्तक एक ऐसे दर्पण का भी काम करती है, जिसमें हमें उन राष्ट्रीय नेताओं की छवि दिखाई पड़ती है, जिनके सम्पर्क में वे आए। मुनिश्री जी ने इस पुस्तक में अनेक राष्ट्रीय नेताओं के संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। यहां पर यह पुस्तक आत्मकथा और संस्मरण की संधि रेखा बन जाती है। जहां-जहां वाद-विवादों की योजना की गई है, वे अंश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन पड़े हैं। इनमें प्रकारान्तर से दार्शनिकता की झलक मिलती है।

मुनिश्री जी ने अपनी बात को बड़े प्रभावशाली तथा विश्वसनीय ढंग से पाठकों के सामने रखा है। कहीं-कहीं उन्होंने किस्सागोई की मुद्रा अपनाई है। संवादों की योजना करके उन्होंने कथ्य की रोचकता को बढ़ा दिया है। भाव एवं भाषा नियंत्रित एवं गम्भीर है। शैली प्रवाहपूर्ण है।

आत्मकथा लिखना एक साहस का काम होता है। मुनिश्री नगराजजी ने इस साहस का परिचय दिया है। मैं इसके लिए उन्हें बधाई देता हूं। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक आने वाली पीढ़ी के लिए एक प्रेरणा और मार्गदर्शक का काम करेगी।

शंकर दयाल शर्मा

(डा० शंकरदयाल शर्मा)
उप-राष्ट्रपति, भारत

उप-राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली
९ सितम्बर, १९८८

लेखकीय

'अभिनिष्क्रमण' के कुछ ही समय पश्चात् मेरे अग्रज श्री मघराजजी दफ्तरी ने एक दिन प्रसगोपात्त निवेदन किया—आपका जीवन गौरवपूर्ण व घटनात्मक रहा है। आप उसे किसी शैली में इतिहास का रूप दे सके तो सर्वसाधारण के लिए भी प्रेरक व स्थिति-बोधक होगा तथा हम पारिवारिकों के लिए तो वह अविस्मरणीय थाती-स्वरूप होगा ही।

मेरे स्वय के मन मे भी उन दिनो यही विचार उठ रहा था कि इतिहास लिखा जाए पर, कैसे ? आत्म-कथा के रूप में या किसी अन्य विधा के रूप में ? दूसरा प्रश्न सामने था कि जीवन के ६० वर्षों तक का इतिहास तो 'अभिनिष्क्रमण' से पूर्व का ही था। ऐतिहासिक कोटि के अनेका कार्य तब तक हाथ से निकल चुके थे। यह सब लिखा जाए, यह तो निर्विवाद लग रहा था, क्याकि जहा से अभिनिष्क्रमण हुआ था, वहा की परम्परा सर्व विदित है ही।

मेरे सामने अगला प्रश्न था कि इतिहास लेखन में नीति क्या अपनाई जाए ? मैने निणय लिया, वहा हमारे बारे मे कैसी भी नीतिया अपनाई जाए, वे तो उनकी अपनी होगी। मुझे तो अपनी स्वस्थ व शालीन नीति पर ही चलना है। जिस वातावरण मे जो घटित हुआ, उसे ठीक उसी भाव-भाषा से लिखना है। तात्कालिक मतभेद या प्रासगिक कटुताओ को भी यथा सम्भव बीच में नही लाना है। उस समय मैं उन्हे आचार्य श्री तुलसी कहता था तो अब भी मुझे वही कहना है या लिखना है। अस्तु, प्रस्तक पुस्तक मे मैने जो लिखा है, वह आत्म-साक्षी मे लिखा है। इतिहास को कही बढा-चढाकर गरिमामय बनाने की चेष्टा नही की है, नो उसे विकृत करने की चेष्टा भी नही की है। हा, लिखा मैने मुख्यत वही इतिहास है, जिसके लिए मैं स्वय साक्षी हू तथा जो मेरे हाथो से घटित हुआ है। सम्बन्धित सन्दर्भों में दूसरो का इतिहास तो उतना-सा ही जोड पाया हू, जो मेरे पास से होकर गुजरा है। हाँ, इतना कह सकता हू, उसमे मैने अपनापन या परायापन नही बरता है। आज वे लोग मेरे निकट के है या अनिकट के, यह प्रश्न मेरे मन में नही रहा है।

परिशिष्ट के रूप में कतिपय लेख इस पुस्तक मे मेरे अनन्य सहयोगी मुनि मानमलजी द्वारा लिखित भी दे दिए गये है। वे पूरक सामग्री के रूप मे है तथा इतिहास को विशेषत उजागर करने वाले है।

पुस्तक का दूसरा महत्त्वपूर्ण आकर्षण है, चित्र-सामग्री। चित्र मुख्यत वही दिए गये है, जो ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। 'अभिनिष्कमण' के बाद के चित्र भी इसमे दे दिए गये हैं। इसका मुख्य कारण तो यही रहा कि पुस्तकें व चित्र बार बार प्रकाशित नही होते,

जो कि इतिहास के मौलिक प्रमाण होते है, दूसरी बात इससे इस भ्रान्त धारणा का भी निराकरण होगा कि मुनि नगराजजी का शीर्षस्थ सम्पर्क तो सघ के पीछे ही था।

प्रस्तुत पुस्तक मे कदाचित् कही सन्, सम्वत या तिथि की भूले रह सकती है, जो कि क्षम्य होगी, क्योकि डायरी लिखने या नोट लिखते रहने का आदी मै कभी नही रहा। इतने लबे इतिहास मे तिथि आदि की कुछ भूले रह जाना स्वाभाविक भी है।

कुछ बाते प्रसगापात्त दुहरानी भी पडी है, उन्हे दोहराना न मान जाये, क्योकि ऐसा किये बिना पाठक के सामने पढते-पढते कुछ शून्यता-सी आ जाती। पढते-पढते रुककर किसी अन्य अध्याय को टटोलना पडता।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने अपने जीवन-क्रम से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाए ही लिखी है, अत मुझे पुस्तक का नाम भी 'घटनाए जो इतिहास बन गई' ही सार्थक लगा।

मेरा व मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का अभिन्न साहचर्य रहा है। एक के घटना-प्रसग मे दूसरे के घटना-प्रसग या कहना चाहिए, एक की जीवनी मे दूसरे की जीवनी स्वत समाहित हो जाती है। आज वे वर्तमान होते तो शायद यह इतिहास वे ही लिखते। खैर, मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक मे जितने रूप मे मेरी जीवनी आ पाई है, उतने रूप मे उनकी जीवनी भी आ गई है। जिसे समग्र जीवनी कहा जा सके, वह तो दोनो की ही नही बन पाई है, पर, मुझे यही पसद था कि 'यत् सार भूत तदुपासनीयम्' अर्थात् जो सारभूत है वही लिखा जाए। आज के पाठक भी प्रबुद्ध है, वे अल्प मे अनल्प ग्रहण करने के आदि हो गए है।

अभिनिष्क्रमण का इतिहास व सम्बन्धित सघर्षो की कथा लिखू या न लिखू, यह मैं अभी तक निश्चय नही कर पाया हू। समय ही बताएगा कि वह क्या चाहता है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन मे मुनि मणिकुमारजी का योगदान भी उल्लेखनीय रहा है। प्राय समग्र ही पुस्तक बोली मैंने है, लिखा उन्होंने है। हालाकि अब वे हमारे से पृथक् है, पर, यथार्थ को मिटाना तो मेरा नीतिगत विषय ही नही है, जैसा कि मै पहले ही लिख चुका हूँ।

मुझे आशा है, चिन्तक व समीक्षक पाठक प्रस्तुत पुस्तक को यथार्थ व सन्तुलित इतिहास ही मानेगे। आत्म-गरिमा का जहा तक सवाल है, उससे जहा तक या जितना मै बच पाया हू, उससे अधिक बचने के लिए मुझे कोई मार्ग ही नही मिला। उसे पाठक कुछ भी समझ सकते है, क्योकि ऐसे प्रसगो मे विषय-वस्तु व लेखक के बीच वह एक विवशता ही होती है।

सोने मे सुगन्ध वाली बात तो प्रस्तुत पुस्तक मे यह बन पाई है कि इस पर भूमिका उप-राष्ट्रपति डा० शकरदयाल शर्मा ने लिखी है, जो कि स्वय विद्वान्, साहित्यकार व चिन्तक है। जो कुछ लिखा है, उसका काफी भाग उनके सामने से भी गुजरा है।

२१ अक्टूबर, १९८८
दिल्ली

—मुनि नगराज

विषय-क्रम

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०

(वयोमान वर्ष 49, जयपुर चातुर्मास)

: १ :

सत्यं शिवं की राह पर

घटनाए आकस्मिक और तात्कालिक होती हैं, पर कभी-कभी वे जीवन की धारा को आमूल परिवर्तन दे देती हैं। मेरा दीक्षा-प्रसग भी किसी एक घटना-विशेष पर ही फलित होता है।

क्रांति घटित हो गई

जीवन के बारह वर्ष पार कर तेरहवें वर्ष मे प्रवेश कर चुका था। अपनी जन्म-भूमि सरदारशहर के राजकीय माध्यमिक विद्यालय मे पाचवी कक्षा का विद्यार्थी था। दैनिक, मासिक पत्र पत्रिकाए, महापुरुषो की जीवनिया तथा समाज-सुधार सम्बन्धी साहित्य पढने मे विशेष रुचि रहती थी। प्रगति-मूलक साहित्य के कारण विचार भी प्रगति-मूलक बनते। समवयस्को और प्रौढो के बीच बैठकर भी सामाजिक ढर्रों व रूढियो का विरोध करने लगता। प्रौढ लोगो को वह छोटे मुह बडी बात लगती। नये विचार भी उनके हृदय को नही छू पाते। उन्हे लगता, थोडी-सी पढाई मे भी इसका दिमाग खराब हो रहा है तो अधिक पढ लेने से न जाने क्या होगा ? पारिवारिको ने प्रतिबन्ध लगाया कि तुम अपने पाठ्यक्रम की पुस्तको के सिवाय बाहर का कोई भी साहित्य नही पढ सकते। घर मे रही पुस्तको की अलमारियो के भी ताला लगवा दिया। पुस्तकालय जाना भी बन्द करवा दिया। मेरे मानस पर यह मार्मिक आघात था। पढ़ने की लालसा असीम थी और सम्बन्धित वातावरण उसके नितान्त प्रतिकूल था। बस, इसने ही जीवन मे एक क्राति घटित कर दी।

उन्ही दिनो तेरापथ के अष्टमाचार्य परम पूज्य श्री कालूगणी सरदारशहर पधारे। साधु-साध्वियों का बृहद् परिवार उनके साथ था। उनके प्रभापूर्ण व्यक्तित्व ने मुझे सहसा खीच लिया। घण्टों-घण्टो सामने बैठकर उन्हे अपलक दृष्टि से निहारता रहता। सहसा मन मे विचार कौंध गया, अरे ! यही तो मेरी समस्या का समाधान है। जीवन भर पढ़ते रहो, पढ़ते रहो, कभी रुकावट नही। आत्म-

साधना भी साथ-साथ फलित हो । वह क्षणिक विचार धीरे-धीरे परिपक्वता लेने लगा । चिन्तन चलता रहा, माता-पिता व पारिवारिको के मोह से हटना होगा । साधुत्व से सम्बन्धित परिषहों पर भी पुन.-पुन. विचार करता रहता । ज्ञानार्जन की प्रबल पिपासा ने अन्य समस्त आने वाले गतिरोधो को गौण कर दिया । मन स्वत आश्वस्त होने लगा । माता-पिता से तो एक दिन अलग होना ही है, मैं साधु नहीं होऊगा तो भी किसी दिन ये मुझे छोड जायेंगे । परिषहो के विषय मे यह सोचकर आश्वस्त हुआ कि मेरे समवयस्क साधु जब केश-लुचन का कष्ट सह सकते हैं, पाद-विहार कर सकते हैं, भूमि-शयन कर सकते हैं, तो मैं स्वय को क्यो कमजोर मानू कि मैं यह सब नही कर सकूगा। लगभग तीन-चार महीने तक मेरा मानसिक आलोडन-विलोडन चलता रहा, मैंने किसी से कुछ कहा नही । पूर्ण आत्म-विश्वास फलित हो गया, तब मैंने एक प्रौढ़ मुनिजी से अपने वैराग्य सम्बन्धी चर्चाए की । उनसे बल मिला । इसी अवधि मे प्रतिक्रमण और थोकडो का ज्ञान धडल्ले से मैंने कर लिया था । स्कूल जाना भी छोड दिया था। घरवालो को भी खुशी थी कि कभो साधु-सगत मे नही जाने वाला सामायिक-सवर मे लगा है ।

परीक्षा की कसौटी पर

ज्यो ही मैने पारिवारिको के बीच दीक्षा लेने की भावना रखी कि सारे परिवार मे एक भूचाल-सा आ गया । सभी से विरोध । मुझे प्रतिबन्धित कर दिया गया । तुम साधुओ के पास नही जा सकते, स्कूल जाना ही पडेगा । मैने कहा—दर्शनो का नियम मैने ले रखा है तो मुझे पिताजी की तरफ से इतनी आज्ञा मिली कि बडे भाई मघराज को साथ लेकर दर्शन करने जा सकोगे । अकेले दर्शन नही कर सकते । मेरे प्रासुक पानी, रात्रि-भोजन आदि सामान्य साधना-क्रम मे भी व्याघात डाला जाने लगा । जबरदस्ती रात मे पानी पिलाया जाता तथा 'लिलोती' खिलाई जाती । एकाएक मुझे कलकत्ता रवाना कर दिया गया । कलकत्ता मे मै अपने ज्येष्ठतम बन्धु श्री सुमेरमलजी के निर्देशन मे रहता । उन्होने मेरा कार्यक्रम बनाया, समवयस्को के साथ चिडियाघर, अजायबघर, नाटक, सिनेमा आदि सब कुछ देखते रहो । उधर से अपना ध्यान हटाओ । लगभग नौ माह तक यह क्रम चलता रहा । मैंने अपना ज्ञानाभ्यास, साधना क्रम छोडा नही । शेष समय मे उनके कथनानुसार घूम-फिर भी लेता । उस जमाने मे लडको की सगाई-सम्बन्ध भी बहुत जल्दी हो जाया करते थे । मेरा भी आठ-नौ वर्ष की अवस्था मे सगाई-सम्बन्ध हो चुका था । लडकी वालो से कह दिया, कोई खास बात नही है, सम्बन्ध यथावत रहेगा । बचपन की बातें हैं, दिमाग से अपने आप निकल जायेगी ।

संस्कार परिवर्तन का अध्याय

नौ-दस माह पश्चात् मुझे पुन सरदारशहर ले आया गया। मैं माध्यस्थ भावना से चल रहा था। विचार ज्यो-के-त्यों थे। बीच-बीच मे आज्ञा-प्रदान के लिए पिताजी से आग्रहपूर्वक अनुरोध भी करता। मेरे पिताजी श्री भीखमचन्द जी दफ्तरी जाने-माने बुद्धिमान् व्यवसायी तथा अपनी बात के धनी थे। उन्होने स्पष्ट-स्पष्ट कहा—"मैं दीक्षा का विरोधी नही हू। मेरे लिए भी तो यह गौरव का विषय है, पर, मैं तुम्हे इस काबिल नही समझता।"

मैंने कहा— 'क्या त्रुटि है, मेरे मे ?"

उन्होने कहा—"तुम्हे बात बात मे गुस्सा आ जाता है, भाई बहिनो से भी झगड लेते हो, मन-पसन्द भोजन नही परोसा गया तो थाली ठुकराकर चल देते हो, क्या ये सब बाते साधुपन मे चलने वाली हैं ?"

उनका यह कथन मेरी आदतो पर सीधा तमाचा था। उससे कुछ समय पूर्व तक ये आदते मेरी चालू थी। मुझे चुप रह जाना पड़ा। बात पूर्ण सही थी। उसका जवाब हो भी क्या सकता था ? उन्ही दिनो मैं महात्मा गाधी की आत्म-कथा पढ़ रहा था। उनके क्षमा-प्रयोगो पर मेरा ध्यान अधिक केन्द्रित हो गया। सच पूछो ता महात्मा गाधी की आत्म-कथा ने मुझे इस माने मे बहुत कुछ बदल दिया। शनै-शनै लगने लगा, पिताजी भी इस विषय मे आश्वस्त हो रहे हैं। संस्कार परिवर्तन का वह अध्याय आज भी मेरा सबल है।

साढे साती

दीक्षा की सहमति न देने मे पिताजी का दूसरा तर्क था—"तुम्हारे अभी शनि की 'साढे साती' चल रही है। दिमाग-भ्रमित हुआ है। वैराग्य कुछ नही है। केवल मानसिक विभ्रम है। 'साढे साती' समाप्त हो जाने के पश्चात् भी तुम्हारा विचार स्थिर रहा तो मै समझूगा तुम्हारे विचार परिपक्व हैं।"

मैंने कहा—"यह भी तो हो सकता है, मेरे शनि के इस प्रभाव ने मेरे शुभ कार्य मे बाधा डालने के लिए आपके चिन्तन को ही इस रूप मे बना दिया हो ?"

उन्होने कहा—"यह तो समय बतायेगा। मैं ज्योतिष जानता हू। उसमे मेरा विश्वास भी है, अत शनि की यह अवधि समाप्त न होने तक आज्ञा प्रदान करने का प्रश्न ही नही उठता। सतरह वर्ष पूर्ण हो जाने तक शनि का प्रभाव चलेगा। जब से तुमने बात उठाई है, शनि के आखिरी चार वर्ष बाकी रहे हैं।"

आमरण अनशन

समय अपनी गति से चलता रहा। आत्मा मे शीघ्रातिशीघ्र दीक्षित हो

जाने की व्यग्रता थी, ताकि समय का सही उपयोग होने लग जाये। इस दिशा में समय-समय पर अनेक प्रयत्न करता रहता, पर, पिताजी की सिद्धान्तवादिता के सामने मेरा कोई भी प्रयत्न सफल नही हो रहा था। इसी अन्तराल मे एक अवसर ऐसा भी आया, जब आज्ञा प्राप्त करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर, परिणाम वही का वही। पूज्यवर श्री कालूगणी राज का वि० स० १६८८ का चातुर्मास सरदार शहर मे ही था। मेरी व्यग्रता मे और ज्वार आया। सोचा, घर आया अवसर निकल गया तो फिर देर ही देर। मैंने अनेक बार अपनी बात पिताजी के सम्मुख दोहराई, पर वे टस-से-मस नही हुए। उन्ही दिनो एक विचित्र प्रसग घटित हो रहा था। फतेहपुर की एक तेरापथी महिला ने आमरण अनशन ले लिया कि जब तक मेरे पति, मेरे श्वसुर दीक्षित होने की आज्ञा नही देंगे, तब तक यह चलता ही रहेगा। बात उल्टी पड गई। आमरण अनशन के दिन व्यतीत होने लगे। क्रमश. ४०, ५०, ६० की तपस्या होती ही गई। पर, सम्बन्धित व्यक्ति यही कहते रहे, मर जाये तो मर जाये, हम आज्ञा नही देंगे। समाज मे और पूरे देश मे इस द्वन्द्व की चर्चा थी। सभी लोग उसके ससुराल-पक्ष के व्यक्तियो की ही भर्त्सना कर रहे थे। सबधित प्रश्न के उत्तर मे महात्मा गाधी ने भी कह दिया था, दीक्षा लेने वाली प्रौढ़ महिला है, इसे बलात् रोकने का अधिकार न पति को है, न सास-श्वसुर को।

मैंने उस सामाजिक वातावरण से फायदा उठाना चाहा। एक दिन पिताजी दर्पण के सामने बैठे अपनी पगडी बाध रहे थे। मैंने गरमा कर कहा—"बहुत दिन हो गये, आपको इन्कार करते। अब यह बात चलने वाली नही है। अब भी आपके मुह से इनकारी की बात निकली तो एक आमरण अनशन फतेहपुर मे चल रहा है, दूसरा आमरण अनशन सरदार शहर मे आपके घर मे चलेगा।"

पिताजी ने पगडी बाधते-बाधते ही दर्पण की ओर से मुह हटाकर मेरी ओर झाका तथा मेरे से भी द्विगुणित आवाज मे बोले—"तुम मुझे धमकी देकर अपनी बात मनवाना चाहते हो तो करलो अनशन, कल से ही क्यो, आज से ही, पर सोच लेना, फिर आज्ञा मिलेगी ही नही। मैं समझूगा, मेरे चार लडके नही, तीन लडके ही हुए थे। तुम जानते हो, मैं मामाजी श्रीचन्दजी गधैया के पास ही बडा हुआ हू। उन्ही के सस्कार मेरे मे आये हैं। दबाव मे आकर कोई भी बात स्वीकार करना मुझे कभी नही आया। फिर यदि पूज्य कालूगणी और मत्री मुनि श्री मगनलालजी स्वामी भी तुम्हारी सिफारिश करेंगे तो भी चलने वाली नही है।"

उनके उत्तप्त विचार सुनकर मैं हक्का-बक्का-सा रह गया। उनकी कथनी-करनी की एकरूपता को मैं समझता था। मैंने मन मे सोचा, अब अनशन करने का तो मतलब है, मर जाना। इसके लिए तो मेरी भी तैयारी नही थी। न उसे कोई विवेक की बात भी मैं समझता था। मेरी तो मात्र धमकी थी। मैं बिना कुछ बोले

वहाँ से उठ गया। मन में निश्चय किया, काम जब होना है, तभी होगा। नियति से ऊपर मनुष्य नहीं है।

समय आया

आखिर कभी तो ये चार वर्ष पूरे होने ही थे। समय को आना ही था। मुझे इसी मे सन्तोष था कि मैं उस काल मे अपने समय का बहुत अच्छा उपयोग कर सका। अध्ययन की दृष्टि से विद्वान् मुनिजनो का मुझे मार्ग-दर्शन था ही। सस्कृत के एक पण्डितजी को भी पढाने के लिए नियुक्त कर लिया था। अनेकानेक स्फुट विषयो के अतिरिक्त मैंने आचार्य हेमचन्द्र का 'अभिधान चिन्तामणि कोष' तथा 'सिद्ध हेम शब्दानुशासनम्' की अष्टाध्यायी भी आद्योपान्त कण्ठस्थ कर ली थी।

शनि की 'साढे साती' पूर्ण हो गई। मैं अठारहवें वर्ष मे प्रवेश कर गया। शनि के प्रभाव ने मेरे मस्तिष्क को तो नही, पारिवारिको के मस्तिष्क को बदला। सब की समझ मे आ गया, यह घर मे रहने वाला है ही नही तो व्यर्थ इसको क्यो रोका जाये। मेरे द्वितीय ज्येष्ठ बन्धु श्री झमरमलजी का इस दिशा मे पूर्ण योग-दान रहा। मेरे पारिवारिक श्रीमान् गणेश दासजी वृद्धिचन्दजी गधैया पिताजी के निर्णय के साथ सहमत हुए तथा दीक्षा-विषयक विधि-विधानो को सम्पन्न कराने मे जुट गये। श्री नेमीचदजी गधैया ने भी मेरे दीक्षा समारोह मे सक्रिय उत्साह अभिव्यक्त किया।

वि० स० १६६१, माघ शुक्ला पचमी (वसत पचमी) के दिन सुधरी (बगडी सज्जनपुर) के बाहर विशाल वट वृक्ष के नीचे परमाराध्य पूज्य कालूगणी के कर-कमलो से मेरा दीक्षा-सस्कार सम्पन्न हुआ। मेरा चिर अभीप्सित सकल्प फला और मैं सत्य शिव की राह पर अग्रसर हुआ।

—०—

: २ :

अणुव्रत और मैं

मेरे चौबीसवे वर्ष की बात है। एक रेखाविद् ने मुझे बताया—आप जब बत्तीस वर्ष के होगे, तब कोई ऐसी योजना आपके हाथ से लिखी जायेगी, जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करेगी। अस्तु, उस समय तो यह बात समझ से परे की थी, क्या रूपरेखा होगी, कैसे विस्तार पायेगी, आदि-आदि।

मेरा बत्तीसवा वर्ष सन् १९४९, सितम्बर मे प्रारम्भ हो रहा था। उस वर्ष का चातुर्मास सरदारशहर था। आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास छापर मे था। वहा एक विषय उठा। आचार्यश्री ने कहा—लोग कहते है, वर्तमान युग मे कोई नैतिक बनकर नही जी सकता, मैं इस बात को उत्तरित करना चाहता हू। क्या इस सहस्रो की उपस्थिति मे पच्चीस ऐसे आदमी अभी-अभी मुझे अपना नाम दे सकेंगे, जो निकट भविष्य मे ही निर्धारित की जाने वाली नैतिक आचार-सहिता के पालन मे अपने आप को समर्पित कर सके। लोगो ने नाम दिये। नाम देने वालो मे सरदारशहर के मास्टर श्री रामचन्द्रजी जैन भी थे, जो कि आगे चलकर गाधी मन्दिर के रजिस्ट्रार बने। वे सरदारशहर लौटे तब मुझे बताया—"पच्चीस नाम हो जाने के पश्चात् आचार्यश्री के सान्निध्य मे एक गोष्ठी हुई। आगामी मर्यादा-महोत्सव पर एकआचार-सहिता प्रस्तुत किये जाने का निर्णय हुआ है। सम्बन्धित योजना का एक प्रारूप वहा मुझे भी प्रस्तुत करना है। कृपया आप वह तैयार कर दे तो अधिक उपयोगी हो सकेगा।" तदनुसार श्रावक के बारह व्रतो एव अतिचारो को आधार मानकर मैंने एक प्रारूप तैयार किया।

आगामी मर्यादा-महोत्सव राजलदेसर होना था। इससे पूर्व ही हम लोग आचार्यश्री के पास पहुच चुके थे। मास्टर श्रीरामचन्द्रजी जैन ने आचार्यश्री को बता दिया था कि मुनिश्री ने भी एक प्रारूप तैयार किया है। उस सन्दर्भ मे समय-समय पर चिन्तको की गोष्ठिया हुआ करती थी। आचार्यश्री ने आचार-सहिता को अतिम रूप से तैयार करने का भार मेरे ऊपर ही छोड दिया। उस समय तक वह आचार-

संहिता केवल कुछ ही व्यक्तियो के लिए सोची जा रही थी। आचार्यश्री का कहना था—"अपने कार्यकर्ता व मुख्य-मुख्य श्रावक आदर्श रूप बन सके, ऐसी आचार-सहिता हमे तैयार करनी है।" योजना के प्रति जनता मे एक ऊहापोह एवं आकर्षण बन गया था। जो पच्चीस व्यक्ति पहले समर्पित हुए उनके लिए ही यह नियमावली बनाई जानी थी। मैंने कार्य आरम्भ किया। कतिपय वरिष्ठ चिन्तक श्रावक भी मेरे साथ बैठते थे। सहसा मेरे मन मे आया, क्यो नहीं, प्रस्तुत आचार-सहिता को एक राष्ट्रीय-आचार-सहिता के रूप मे तैयार किया जाये। देश अभी-अभी स्वतन्त्र हुआ है, राष्ट्रीय चरित्र का एक ज्वलन्त प्रश्न है। केन्द्र मे नया मत्रि-मण्डल बना है। वित्त, शिक्षा, रक्षा आदि पृथक्-पृथक् विभाग निर्धारित हुए हैं, पर, राष्ट्रीय चरित्र सम्बन्धी कोई विभाग नही बना है, इस स्थिति मे तेरापथ का साधु-सघ इस विषय को क्यो नही उठाये? साढ़े छ सौ साधु-साध्वियो का सघ है। उनका कोई राष्ट्रीय स्तर का काम भी होना चाहिए। केवल तेरापथ या जैन तक ही हमारा कार्य सीमिति क्यो रहे? अस्तु, इससे साधु-सघ की गरिमा भी बढेगी तथा राष्ट्र-हित भी सधेगा।

चिन्तन की इसी पृष्ठ-भूमि पर मैंने कार्य आरम्भ कर दिया। अणुव्रत आचार-सहिता बन गई। आचार्यश्री के सान्निध्य मे चिन्तन गोष्ठिया चलने लगी। श्रावक समाज से कुछ एक चुने हुए लोग तथा मैं और मुनिश्री नथमलजी उसमे भाग लेते। अणुव्रत-आचार-सहिता के एक-एक नियम पर चर्चाए चलती। उसकी व्यावहारिकता एव उपयोगिता परखी जाती। नये-नये सुझाव भी आते। सशोधन-परिवर्तन-परिवर्द्धन का एक जटिल अनुष्ठान बन जाता। मेरा चिन्तन रहता, नियम इतने सुगम भी न हो, जो लोगो को बेजान लगे तथा इतने कडे भी न हो कि नितान्त अव्यवहार्य बन जाये। देश का व समाज का जो स्तर वर्तमान मे चल रहा है, उसमे दस-बीस अश (डिग्री) की ऊचाई तो हमारी आचार-सहिता मे होनी ही चाहिए। नियमावली मे सामाजिक रूढियो के उन्मूलन, व्यावसायिक एव चारित्रिक जीवन मे पवित्रता का मुख्य लक्ष्य था। उस समय जो नियम निर्धारित किये गये, आज भले ही वे नगण्य जैसे लगे, पर, उस समय वे समाज मे ज्वलन्त चर्चा के विषय थे। चोर बाजारी न करना, झूठा तोल-माप न करना, तेरह तोला से अधिक सोना न पहनना, रिश्वत न लेना आदि-आदि।

छोटी-छोटी गोष्ठियो मे जो विषय चर्चित होते, वे समाज मे भी चर्चा का विषय तो बन ही जाते थे। अणुव्रत का प्रारम्भ हुआ, उससे पूर्व ही वह ज्वलन्त प्रतिक्रियाओ का केन्द्र बन गया। कुछ लोग कहते, इस प्रकार के नियम लेकर क्या कोई व्यवसाय चला सकेगा, नौकरी कर सकेगा? कुछ लोग कहते, साधुओं को इस प्रकार का आन्दोलन चलाना 'कल्पता' भी कैसे है? इसमे तो मांसाहार का

भी सर्वथा वर्जन नहीं है; आदि-आदि। कही पर्दा-प्रथा की चर्चा ज्वलन्त थी तो कहीं दहेज न लेने-देने की । सरगर्म प्रतिक्रिया का ही कारण था कि अणुव्रत आन्दोलन एक उच्चता पा गया। सरदारशहर मे सन् १९४९ मे जब इसका आरम्भ हुआ, तब तक लोगो मे इसका इतना आकर्षण बन गया कि अणुव्रती न बन पाने वाले स्वयं मे हीनता की अनुभूति करने लगे। समाज के मुख्य-मुख्य लोग अपने आपको बहुत कुछ बदल कर भी अणुव्रती बनना चाहने लगे। अणुव्रती बन जाने के बाद अच्छे से अच्छा चारित्रिक आदर्श प्रस्तुत करने की होड-सी लग गई। अधिवेशनों व गोष्ठियो मे सबको अपने-अपने अनुभव सुनाने का अवसर दिया जाता। कहना चाहिए, उस समय चरित्र-निर्माण का एक अनूठा ही वातावरण बन गया। प्रारम्भ मे अणुव्रतियो के विशेष सस्मरण सकलित भी किये गये। उनमे से कुछ मेरी 'प्रेरणा दीप' नामक पुस्तकमे संग्रहीत हैं। प्रत्येक नियम की सटीक व्याख्या हेतु मैंने 'अणुव्रत दृष्टि', 'अणुव्रत जीवन-दर्शन' आदि पुस्तके लिखी। मुनि श्री नथमलजी ने भी पुस्तके लिखी। अणुव्रतो से सम्बन्धित लेख आदि लिखने का तो सघन कार्यक्रम रहता ही। आशा नही थी कि प्रारम्भ मे ही काम इतना जोर पकड लेगा। काम मेरे से सबन्धित था। आचार्यश्री के पास रहना भी अनिवार्य समझा जाने लगा। इसी सन्दर्भ मे दो-तीन बार मेरे चातुर्मास घोषित होकर भी बदल देने पडे। अर्थात् जयपुर, दिल्ली, हासी, पजाब एव सरदारशहर आदि के सलग्न चातुर्मासिक एव शेषकालीन प्रवासो मे मुझे आचार्यश्री के साथ ही रहना पडा। अणुव्रत आन्दोलन के प्रारम्भ होने के पश्चात् प्रथम चातुर्मास जयपुर व तदनन्तर हासी चातुर्मास के लिए जाते हुए आचार्यश्री का दिल्ली प्रवास हुआ। वहा अणुव्रत आन्दोनल का प्रथम वार्षिक अधिवेशन रखा गया था। वही से अणुव्रत आन्दोलन एकाएक राष्ट्रीय ख्याति पा गया। उस सन्दर्भ मे मुझे कुछ दिन पूर्व ही दिल्ली जाना पडा। श्री देवेन्द्रजी कर्णावट आदि कार्यकर्त्ता वहा विद्यमान थे ही। आचार्यश्री का वहा का समस्त कार्यक्रम मेरे हस्तगत कर दिया गया था। अर्थात् कोई श्रावक भी उनसे बात करना चाहे, तो वह मेरे माध्यम से ही वहा तक पहुच पाता। अधिवेशन चादनी चौक मे टाऊन हॉल के पीछे खुले मैदान मे हुआ। लगभग ६०० अणुव्रतियो ने जब चोर-बाजारी व झूठा तोल-माप न करने की प्रतिज्ञा ली तो दिल्ली के नागरिक स्तम्भित रह गये। अगले ही दिन देश भर के दैनिक पत्रो के माध्यम से वह समाचार बिजली की तरह कौंध गया। देश मे उस समय चोर-बाजारी का वातावरण बहुत भयावह था। इस स्थिति मे उक्त समाचार को अप्रत्याशित प्रश्रय मिला। बडे सम्पादकीय भी लिखे गये। उसे 'कलयुग मे सतयुग का अवतरण' की सज्ञा दी गई। यहा तक कि लन्दन, न्यूयार्क आदि के समाचार-पत्रो ने भी इस समाचार को महत्त्व दिया। तदनन्तर हासी चातुर्मास के लिए दिल्ली से प्रस्थान हो गया। दिल्ली

के उस कार्यक्रम मे अणुव्रत को तात्कालिक व्यापन तो मिला, पर, उस गतिक्रम की निरन्तरता नही रही। तब तक दिल्ली अणुव्रत का स्थायी केन्द्र नही बन पाई थी।

अणुव्रत नियमावली में परिवर्तन-परिवर्द्धन वर्षों तक चलता ही रहा। मैं आचार्यश्री के पास होता तब तो वह मेरे माध्यम से होता ही, पर कही दूर चातुर्मास मे भी होता तो नया प्रारूप सहमति के लिए मेरे पास पहुच जाता। आचार्यश्री के अहमदाबाद चातुर्मास मे भी नियमावली का काफी रूपान्तरण हुआ। उसे भी अन्तिम रूप देने से पूर्व श्री गणेशमल जी दूगड वायुयान से जयपुर आये व आवश्यक विचार-विनिमय कर उसी दिन साय वायुयान से अहमदाबाद लौटे। नामकरण भी प्रारम्भ मे अणुव्रती सघ था। आगे चलकर वह अपनी व्यापकता के कारण अणुव्रत आन्दोलन बन गया।

सन् १९५३ मे मेरा वर्षावास दिल्ली के लिए निश्चित हुआ। उस समय मेरे सहयोगियो मे मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', मुनि हर्षचन्द्रजी, मुनि मानमलजी थे। अणुव्रतो का अब तक का इतिहास उसकी नियमावली व रूपरेखा के जम जाने का था। दिल्ली के इस वर्षावास से नये-नये आयाम प्रारम्भ हुए। वर्गीय आधार पर अणुव्रतो का काम हम लोगो ने आरम्भ किया। विद्यार्थी वर्ग, राजकर्मचारी, आदि मे भरपूर कार्यक्रम चलाये गये व वर्ग से सम्बन्धित अणुव्रत प्रतिज्ञाए दिलाई गई। विद्यार्थियो मे प्रारम्भिक विद्यालयो से लेकर महाविद्यालयो तक भारी भरकम कार्यक्रम चले। न्यायालय के कर्मचारियो मे, बैंक कर्मचारियो मे, व्यापारियो मे, कारावास के बन्दियो मे जमकर काम किया। आज वे कार्यक्रम हमे इतने असाधारण नही लगते, पर, उस समय वे पहली बार हो रहे थे; अतः सार्वजनिक रूप से उनका महत्त्व बना। प्रतिदिन के दैनिक पत्रो मे बडी सुर्खियो से समाचार छपने लगे। कार्य आरम्भ किया उस समय प्रवचन प्रदान करने के लिए हमे स्वीकृति लेनी पडती थी तथा कार्यक्रम चल पडने के पश्चात् स्वीकृति हमे देनी पडने लगी। आचार्य कृपलानी एव उनकी धर्मपत्नी सुचेता कृपलानी जैसे गण्यमान्य लोग भी हमारे स्थान पर आकर अपनी-अपनी सम्बन्धित सस्थाओ की ओर से प्रवचन के लिए आमन्त्रित करने लगे।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का कर्तृत्व उसी वर्ष मुखरित होकर सामने आया। उन्होने व्यक्तिगत श्रम एव सूझबूझ से नाना प्रभावोत्पादक आयाम खोले। हमारे सम्पर्क की मुख्य दिशाए थी—साहित्यकार, पत्रकार, वरिष्ठ राजनयिक व शिक्षाविद् आदि-आदि। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने घर-घर जा-जाकर सम्पर्क की पहल की। वह इतनी कारगर निकली कि एक ही वर्ष मे हम लोग सभी सम्बन्धित क्षेत्रों मे छा गये। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री प० जवाहरलाल नेहरू, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् आदि से आत्मीयता के सम्पर्क बन गये। अणुव्रत

सभाओं में अणुव्रत पर प्राय सबका बोलना व लिखना आरम्भ हो गया। बोलने के लिए अणुव्रत विचार परिषद् का मच चलता था तथा लेखन के लिए मुनि महेन्द्र कुमारजी ने एक हस्तलिखित कलात्मक विशेषाक निकालने की योजना बनाई, उसमें मूर्धन्य साहित्यकारो व राजनयिको के लिखित विचार प्रथम बार मिले। अस्तु, दिल्ली के उसी वर्षावास की सफलता ने हमे दिल्ली से प्रलम्ब काल तक बांध दिया। मेरे जीवन के ३६वे वर्ष से ४५वे वर्ष तक दो-दो वर्षों के अध्याय हम पूरे करते गये। दो-दो वर्षों के अध्याय ही मुनिश्री बुद्धमल्लजी करते गये। राजधानी के प्रभावशाली कार्यक्रमो ने समग्र देश मे भी आन्दोलन को बल दिया। पाद-विहारी साधु-साध्वियो व स्थानीय कार्यकर्त्ताओ मे भी एक अद्‌भुत-सा वेग आ गया। दिल्ली आचार्यश्री के पदार्पण का भी एक मुख्य केन्द्र बन गया। विशेष प्रसगो पर जब भी हम निवेदन करते, आचार्यश्री दिल्ली आते। प्रधानमत्री प० नेहरू से जब हम लोगो का प्रथम वार्तालाप हुआ, मैने उनसे कहा—"आपके दाये-बाये बैठने वाले सभी लोग अणुव्रतो के सम्बन्ध मे बोल भी पाये हे व लिख भी पाये हैं, पर, आप दोनो मे से अब तक एक भी काम नही कर पाये हैं।" वह वार्तालाप लगभग ४५ मिनट का था। अणुव्रतो के मम्बन्ध मे व तेरापंथ सघ के विषय मे हम उन्हे बहुत कुछ बता चुके थे। वे प्रभावित भी हुए। उन्होने कहा—"अब कभी मैं अणुव्रत सभा मे अवश्य भाग लूगा।" मैने उनसे कहा—"मै चाहता हू, आप जब भाग ले, तब हमारे आचार्यश्री भी दिल्ली मे हो। उनके सान्निध्य मे समायोजित मभा मे आप पहली बार भाग ले।"

प्रधानमत्री ने कहा—"मैं अपनी सम्भावित तारीख आपको बता देता हू, आप उन्हे आमन्त्रित कर ले।" अस्तु, यह वही प्रसग था, जब आचार्यश्री मिगसर प्रतिपदा को ही सरदारशहर मे प्रस्थान कर केवल ग्यारह दिनो की पद-यात्रा से दिल्ली पहुचे थे। अस्तु, इस प्रकार दिल्ली मे बडे-बडे प्रयोजन, बड़े-बडे आयोजन समय-समय पर होते ही रहते। कभी लालकिले मे ऐतिहासिक स्वागत तो कभी मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के राष्ट्रपति भवन मे होने वाले अवधान-प्रयोग। आगे चलकर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का सिंघाडा हो गया। तब से हम सात साधु दिल्ली रहने लगे। सहयोगी साधुओ मे भी कार्य करने की अनुवृत्ति चलने लगी। मुनि हर्षचन्द्रजी, मुनि मानमलजी, मुनि विनयकुमारजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' आदि उल्लेखनीय रूप से आगे आये और अणुव्रत कायक्रमो को बल दिया। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है, अणुव्रत आन्दोलन को राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय स्तर तक पहुचाने मे दिल्ली का मच बहुत कारगर रहा। उक्त अणुव्रत दशक की सम्पन्नता गगाशहर मे होने वाले धवल-समारोह के साथ हुई, जहा कि मुझे 'अणुव्रत-परामर्शक' के स्थायी सम्मान से सम्मानित किया।

अणुव्रतो का इतिहास बहुत बड़ा है। उद्गम से विकास तक की कथा किसी बडे ग्रन्थ का विषय बन जाती है। इस महान् अभियान के चरितार्थ होने में मेरा ही या हम ही लोगो का सारा इनिहास है, यह मैं नही मानता, स्वय आचार्यश्री तुलसी एव समस्त साधु-साध्वियो ने बहुत बडे-बडे कार्य इस दिशा मे किये हैं। प्रस्तुत लेख मे मुझे तो केवल वही झाकी दे देनी अपेक्षित है, जो घटनाए मेरे जीवन से सम्बन्धित थीं और वे आगे चलकर एक इतिहास बन गईं।

—०—

: ३ :

धवल समारोह : योजना व परिणति

सन् १९५८ का आचार्य श्री तुलसी का चातुर्मास कलकत्ता था। मै और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' दोनो सिघाडे साथ थे। झझावातो से भरा चातुर्मास था। मुनि श्री नथमलजी का चातुर्मास हैस्टिंग एरिया मे था। अत आचार्यश्री के पास कार्य का अधिकतम सबध मेरे से ही था। नित नए प्रश्न व नित नई समस्याओ से गुजरने का वह अनूठा प्रसग था। चातुर्मास के अन्त मे राजस्थान का विहार घोषित हो गया। केलवा मे तेरापथ का द्विशताब्दी समारोह होना था।

एक दिन मै, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' व श्री शुभकरणजी दशाणी तीनो बैठे थे। आगामी कार्यक्रमो का चिन्तन चल रहा था। देश मे अणुव्रत आन्दोलन का नाम शिखर पर था। चर्चा चली। क्यो नही, इस उठते वातावरण का राष्ट्रीय स्तर पर कोई लाभ उठाया जाये। आचार्य श्री तुलसी के पदासीन होने के २५ वष पूरे होने वाले हैं। क्यो नही, विराट स्तर पर रजत जयन्ती समारोह जैसा कुछ मनाया जाये। दिल्ली को माध्यम मानकर ही यह कार्य उठाया जाये। दशाणीजी ने कहा—आप दोनो का इस प्रयोजन से दिल्ली रहना आवश्यक होगा। रजत जयन्ती समारोह के अन्य कतिपय पहलुओ पर भी चर्चा चली। तब तक यह विषय हम तीनो तक ही सीमित था।

आचार्यश्री कलकत्ता से विहार कर भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली आये। दिल्ली प्रवास के अनन्तर रजत जयन्ती समारोह की रूपरेखा तैयार कर ली गई थी। मुख्य पहलू तीन थे—१ अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन, २ उस उपलक्ष मे अन्य ग्रन्थो का प्रणयन व प्रकाशन, ३ अणुव्रत को रचनात्मक एव और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अणुव्रत विहार योजना। रूपरेखा को अन्तिम रूप देने के लिए आचार्यश्री के सान्निध्य मे ही मनोनीत सन्तो की अनेक गोष्ठिया हुई। रजत जयन्ती, समारोह को 'धवल-समारोह' के नाम से मनाया जाना भी निश्चित हुआ। रजत जयन्ती, स्वर्ण जयन्ती, हीरक जयन्ती आदि नाम

तो भौतिकता के प्रतीक हैं, अतः रजत का प्रतीक धवल शब्द ही हम लोगों ने श्रेयस्कर माना।

कार्यक्रम की रूपरेखा के साथ-साथ यह भी निश्चित हो गया कि मैं और मुनि महेन्द्र कुमारजी 'प्रथम' दोनो सिघाडे तब तक दिल्ली रह कर ही कार्य-सचालन करते रहे। आचार्यश्री का जब यहा से विहार हुआ, तब मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' आदि तीन सन्त दिल्ली रह गये। मैंने अपने सहयोगी मुनियो सहित आचार्यश्री के साथ विहार कर दिया। इस निर्धारण के साथ कि हासी मर्यादा महोत्सव एव सरदारशहर मे चल रहे घोर तपस्वी मुनिश्री सुखलालजी स्वामी के सथार-समारोह मे भाग लेकर पुनः दिल्ली लौट सकू।

समिति व सम्पादक मण्डल

उक्त दोनो ध्येय सम्पन्न कर मैं अपने सहयोगी मुनियो सहित वापिस दिल्ली पहुच गया। धवल समारोह का कार्यक्रम व्यवस्थित ढंग से करने मे हम सब जुट गये। कार्यक्रम के मुख्य बिन्दु थे, धवल समारोह समिति का गठन, अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन तथा धवल समारोह के उपलक्ष मे अन्य पुस्तको का प्रकाशन। समिति के गठन मे यह चिन्तन रहा कि वह राष्ट्रीय स्तर की हो तथा देश के शीर्षस्थ साहित्यकारो तथा उद्योगपतियो आदि का उच्चस्तरीय प्रतिनिधित्व हो। तदनुसार सम्पर्क चालू हुआ। तत्कालीन सत्ता पक्ष से अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के भू० पू० अध्यक्ष श्री यू० एन० ढेबर धवल समारोह समिति के अध्यक्ष बनाये गये। पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण चार प्रान्तो के तत्कालीन मुख्य मत्रियो को उपाध्यक्ष बनाया गया। राष्ट्रीय समिति मे धर्म-गुरुओ, उद्योगपतियो और साहित्यकारो के नाम भी सदस्यता मे ले लिए गये। योजना आयोग के सदस्य श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल धवल समारोह समिति के सयोजक बने।

आचार्यश्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादक-मण्डल समायोजित किया गया। प्रधान सम्पादक मे श्री जयप्रकाश नारायण का नाम सोचा गया था। उनसे मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने सम्पर्क किया तो उन्होने कहा—किसी भी अभिनन्दन ग्रन्थ मे सम्पादक न बनने का मैंने चिन्तन कर रखा है, भले ही वह आचार्य विनोबा भावे का ही अभिनन्दन ग्रन्थ क्यो न हो ? मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने कहा—इस चिन्तन को तो आप बदल ही ले। यह सही है कि बहुत सारे अभिनन्दन अतिशयोक्तियो व व्यक्ति ख्यापन से ही भरे होते हैं, पर प्रस्तुत ग्रन्थ मे अणुव्रत खण्ड, दर्शन खण्ड आदि चिन्तन धरातल के अध्याय भी समायोजित हैं। अस्तु, काफी विचार-विनिमय चला। अन्त मे श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा—मुनिश्री नगराजजी की देख-रेख मे यह कार्य हो व स्वय वे सम्पादक मण्डल मे रहे तो मेरा

भी नाम आप दे सकते है। प्रधान सम्पादक मुनिश्री होगे तो मुझे विश्वास है, सब कार्य शालीन व स्तरीय ही होगा। अस्तु, शैक्षणिक व साहित्यिक क्षेत्र के शीर्षस्थ व्यक्तियों सहित दस नाम सम्पादक मण्डल मे रखे गये।[1]

मेरा नाम ?

इसी बीच एक अन्य चिन्तनीय प्रश्न उठ खड़ा हुआ। आचार्यश्री तुलसी के पास जब यह प्रस्ताव गया कि सम्पादक मण्डल मे मुनिश्री का नाम रहना श्री जयप्रकाश नारायण ने आवश्यक समझा है तो वहा नाना चिन्तन खडे हुए। इससे पूर्व सम्पादक के रूप मे किसी मुनि का नाम नही लगा था, अत पहली बात तो यह खडी हुई कि ऐसा तेरापथ की परम्परा मे सम्भव है या नही ? दूसरी बात कि एक ही मुनि का नाम इतने महत्त्वपूर्ण स्थान मे क्यो आये ? बात अटक गई। इधर नाम भी अटक गया। सपादक मंडल सुनिश्चित न हो तब तक किसी को सूचना भी क्या दी जाती ? इतनी बडी योजना के क्रियान्वयन मे छ ही माह अवशेष रहे थे। तब कही यथोचित स्वीकृत हुई।

कार्य-व्यस्तता

समय स्वल्प रह गया था, अतः कार्य को विशेष वेग देना पडा। श्री जब्बरमलजी भण्डारी एव श्री सुगनचन्दजी आचलिया समिति के सह सयोजक थे। उन्होने कार्यालय, कर्मचारी आदि की सुव्यवस्थाए की। नवभारत टाइम्स के प्रधान सपादक श्री अक्षयकुमार जी जैन कार्यकारी सपादक थे। अभिनन्दन ग्रन्थ की प्रस्तावित रूपरेखा तैयार होकर उनकी ओर से सबधित विद्वानो व साहित्यकारो के पास भेज दी गई। श्री अक्षयकुमारजी जैन का नाम भी इस सबध मे बहुत कारगर रहा। उनके आवेदन पर प्रत्येक क्षेत्र के शीर्षस्थ लोगो ने अपने-अपने उद्गार शीघ्र भेज देने मे उत्साह दिखाया। कार्यालय सहयोगी श्री सोहनलाल बाफना एव श्री लादूलाल आछा ने भी इस सदर्भ मे अपनी कार्य-कुशलता का विशेष परिचय दिया।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' व 'द्वितीय' दोनो सम्पादन कार्य मे तल्लीन हो गये। उनके सम्पादन मे कोई भी सदिग्ध लेख व पहलू रह जाता, वह मेरे तक आ जाता।

---

१ (१) मुनिश्री नगराजजी, (२) श्री जयप्रकाश नारायण, (३) श्री नरहरि विष्णु गाडगिल, (४) श्री मैथिलीशरण गुप्त, (५) श्री के० एम० मुन्शी, (६) श्री एन० के० सिद्धान्त, (७) श्री हरिभाऊ उपाध्याय, (८) श्री जैनेन्द्र कुमार, (९) श्री मुकुट बिहारी वर्मा, (१०) श्री जब्बरमल भण्डारी।

प० नेहरू का संदेश

मुनि मानमलजी कतिपय महत्त्वपूर्ण अटके हुए कार्यों को निपटाने मे लग रहे थे। प्रधानमत्री प० जवाहरलाल नेहरू का सन्देश आना निश्चित था, पर, प्रतीक्षा-प्रतीक्षा में ही समय इतना बीत गया कि एक-दो दिनो में आ जाये तभी उसका उपयोग सम्भव हो। प्रधानमत्री से सीधी बात हो, तभी वह सम्भव हो सकता था। हमे भी आशा नही थी कि आज चाहे और बात हो जाये, पर, मुनि मानमलजी के आत्म-विश्वास ने वह भी कर दिखाया। नया बाजार से प्रधानमत्री की कोठी छ: मील दूर पडती थी। अगले दिन प्रात काल किसी एक कार्यकर्ता को साथ लेकर वे चल पडे सीधे अपने लक्ष्य की ओर। सयोग की बात थी, प्रधानमत्री भवन के व्यवस्थापको मे ही कुछ परिचित लोग मिलते गये और सीधे प्रधानमत्री तक पहुच गये। प्रधानमत्री प० नेहरू उस समय अपने कक्ष से निकल कर दक्षिण से समागत एक बहुत बडे शिष्ट-मण्डल के बीच मे जा रहे थे। मुनि मानमलजी को देखते ही उन्होने प्रणाम किया। चलते-चलते ही पूछा –कहिये मुनिजी ! कैसे कष्ट किया ? मुनि मानमलजी को उनकी बाह पर हाथ रखकर साथ ले लिया। आगन्तुक लोगो से मिलते भी गये, बीच बीच मे मानमलजी से बाते भी करते गये। मुनि मानमलजी ने कहा—हमारे अभिनन्दन ग्रन्थ का काम अब केवल आपके सदेश भर के लिए अटका पडा है। प्रतीक्षा करते-करते बहुत समय गुजर गया। प्रधानमत्री ने कहा—"मुनिजी ! मैं भी इसे समझता हू। आपके यहा से समागत अभिनन्दन ग्रन्थ की रूपरेखा व सम्बन्धित परिपत्र मेरी टेबल पर ही पडे हैं। प्रतिदिन मुझे याद भी आता है, पर अत्यधिक व्यस्तता के कारण लिख नही पाया। कल ही मैं दो दिन के लिए बाहर जा रहा हू। वापिस आते ही वह कार्य कर दूगा।"

मुनि मानमलजी ने कहा—"यह आपने फिर देर की बात कह दी। आप चाहते है, क्या मुझे फिर दुबारा आना पडे और आपको याद दिलाना पडे ? अस्तु, अब तो अनिवार्यता यही बन गई है कि आज आप वह कार्य करके ही कही रवाना हो।"

प्रधानमत्री प० नेहरू इस सहज-सरल तकाजे पर हसे और बोले—"मुनि जी ! अच्छा, मैं वचन देता हू कि आज सम्बन्धित सदेश लिख कर ही सोऊगा। कल आपके स्थान पर वह पहुच जायेगा।" अस्तु, बात यथार्थ निकली और अगले ही दिन सदेश हमारे हाथो मे आ गया। राष्ट्रीय स्तर के सभी व्यक्तियो के सन्देश हो और तत्कालीन प्रधानमत्री का न हो, यह एक अपूर्णता खटक रही थी। अब वह अध्याय समाप्त हो गया। मुनि मानमल जी को इस अचिन्त्य सफलता के लिए सम्बन्धित सभी कार्यकर्ताओं ने हार्दिक बधाई दी।

आचार्य विनोबा भावे से सदेश प्राप्त करने धवल समारोह समिति के प्रति-

निधि श्री लादूलाल आच्छा वर्धा गये। आचार्य विनोबा भावे ने कहा—"अक्षय-कुमार जैन का पत्र मुझे मिल गया था। मैंने अपना सदेश भेज दिया है। वहां मिल ही गया होगा।" राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की सद्य.रचित कविता हमे पहले ही प्राप्त हो गई थी।

हमारे सामने गुरुतर कार्य साहित्य-सम्पादन का ही हो गया। अभिनन्दन ग्रन्थ का तो था ही, साथ साथ उसी उपलक्ष मे लगभग साठ पुस्तको का सम्पादन व प्रकाशन चल रहा था। आचार्य श्रीतुलसी की भरत-मुक्ति, अग्नि-परीक्षा, आषाढ़भूति, आदि ग्रन्थ भी इसमे सम्मिलित थे। समस्त लेखक साधु-साध्वियो को किसी की कोई भी पुस्तक जो धवल समारोह के उपलक्ष मे प्रकाशित होनी है, वह यहा आ सकती है, यह हम लोगो ने कहलवा दिया था। अभिनन्दन ग्रन्थ के अतिरिक्त सभी पुस्तको का प्रकाशन राजधानी के विख्यात प्रकाशक 'आत्माराम एण्ड सन्स' की ओर से होने जा रहा था।

दो चरणो मे

वि० स० २०१८ का चातुर्मास चल रहा था। आचार्य श्री बीदासर मे थे और हम दिल्ली मे। हमारे समक्ष प्रश्न यह था कि धवल समारोह का कार्य कब हो ? आचार्य श्री के पट्टारोहण की तिथि चातुर्मास मे ही पडती थी। बीदासर स्थित सन्त समुदाय व कार्यकर्त्ता चाहते थे, बीदासर मे ही यह कार्यक्रम हो जाये। पर हमारे लिए उसमे कई असुविधाए थी। पहली तो यह कि हम स्वय समारोह मे भाग नही ले सकते। दूसरी यह कि तब तक अभिनन्दन ग्रन्थ और सम्बन्धित साहित्य सामने नही आ सकता था। कुल मिलाकर यह निश्चित हुआ कि धवल समारोह का प्रथम चरण बीदासर मे ही मना लिया जाये और द्वितीय चरण इसी वर्ष के फाल्गुन कृष्णा दशमी, १ मार्च, १९६२ के दिन गगा शहर (बीकानेर) मे मनाया जाये। बीदासर स्थित कतिपय सन्तो मे इस बात को लेकर काफी रज रहा। कहा गया—द्वितीय चरण फिर कौन-सा अद्वितीय चरण होने वाला है। सब कुछ एक साथ ही क्यो न मना लिया जाये ? धवल समारोह की चाबी दिल्ली मे ही क्यो लटका दी गई है, आदि आदि। खैर, जो भी हो, समारोह दो चरणो मे मनाया जाना निश्चित हो गया।

अष्टग्रही योग

इसी वर्ष माघ मास के आस-पास ही अष्टग्रही योग पड रहा था। सारे देश मे उसे लेकर भयानक ऊहापोह मच रहा था। इतना आतक था कि अष्टग्रह

के पश्चात् कोई बचेगा भी क्या ? ज्योतिषी लोग आतंक पैदा करने में मुख्यतः हेतुभूत थे। दूसरे चरण का समय निर्धारित करते हमारे सामने भी यही समस्या थी। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने मुझे कहा—"आप भी तो स्वय ज्योतिर्विद् हैं। आपका अन्तःकरण क्या कहता है ? हम तो उसे ही प्रमाण मानकर चलेंगे। मैंने कहा—"ज्योतिष के हिसाब से भी तथा अपने अन्तःकरण की अनुभूति के आधार से भी मुझे ऐसा कुछ भी नहीं लगता कि कोई असाधारण बात घटित होगी।" उत्तर प्रदेश के भू० पू० मुख्यमन्त्री व देश के जाने-माने विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्द ने भी कहलवाया कि जो कुछ करना है, अष्टग्रही योग के पूर्व ही कर लिया जाये। फिर तो पता नहीं, क्या कुछ घटित होने वाला है। हम लोगो ने उनसे भी कहलवा दिया, समय तो निश्चित कर ही लिया गया है। इस बीच मे आशंकित स्थिति घटित हो जायेगी, यह हमे लगता भी नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा, जीवित रहा तो मैं भी भाग ले लूगा। अस्तु, कहने का तात्पर्य है कि धवल समारोह का वह वर्ष भयकर आशकाओ से भरा-पूरा था।

डा० राधाकृष्णन् से सरगर्म चर्चा

अभिनन्दन ग्रन्थ किसके हाथो भेंट कराया जाये, यह सबसे मुख्य प्रश्न था। तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद से बात चल रही थी। वे हा भी भर रहे थे, पर, साथ-साथ यह अनुबन्ध भी था, स्वास्थ्य ठीक रहा तो। स्थिति यह थी कि उनका स्वास्थ्य रह-रहकर बिगडता ही जा रहा था। इतने बडे कार्य-क्रम मे मुख्य व्यक्ति का निर्धारण कुछ मास पूर्व तो कर ही लेना पडता है। हमने सोचा, यह तो आखिरी क्षण तक अनिश्चितता की स्थिति रहेगी। उन्होने स्वीकार कर लिया उसे ख्यापित कर दिया, फिर भी वह समय पर पहुच पाये, यह सदिग्ध है। इस स्थिति मे उपराष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन् को ही क्यो न चुन लिया जाये ? उनकी स्वीकृति प्राप्त करने के लिए मैंने धवल समारोह समिति के अध्यक्ष श्री यू०एन० ढेबर एव सयोजक श्री श्रीमन्नारायण से वार्तालाप किया। निश्चय रहा, श्री ढेबर भाई उनसे मिलकर स्वीकृति लेगे। कुछ दिनो पश्चात् समय लेकर श्री ढेबर भाई उनसे मिले। पर, डॉ० राधाकृष्णन् ने कुछ एक आदर्श-वादी बाते कह कर ऐसे ही बात टाल दी। ढेबर भाई ने आकर हमे बता दिया कि उपराष्ट्रपति की स्वीकृति हो पाना असम्भव है। हम लोगो के सामने एक समस्या बन गई। राष्ट्रीय स्तर पर उठाया गया काम और उसमे राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति दोनो मे से कोई एक भी न हो तो सब कुछ किरकिरा लगेगा। कुछ दिनो का अन्तर डालकर मेरे नाम से उनसे बात करने का समय मांगा गया। सेक्रेटरी ने उनसे पूछकर उत्तर दिया कि अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने की

बात छोडकर मुनिश्री कभी भी आने की कृपा कर सकते हैं। हम लोगों ने सोचा, चलो, मिल तो लें ही। अस्वीकृत हो ही चुके है। उससे अधिक और क्या होना-जाना है।

कतिपय कार्यकर्त्ता और हम मुनिजन निर्धारित समय पर उनसे मिले। शिष्टाचार-मूलक बाते हुई। उन्होने स्वय ही विषय चालू किया कि आप लोग भी नेताओ के रास्ते पर चल पडे। अभिनन्दन राजनेता और धनिक लोग ही तो कराया करते है। मैंने कहा—"उसी धारा को ही तो हम मोड देना चाहते हैं। अर्थ और सत्ता से भी ऊपर भारतीय सस्कृति मे त्याग और सेवा का महत्त्व है। इस बात को लोग इसलिए तो भूले हैं न कि त्याग और सेवा का इतिहास गढने वालो का अभिनन्दन करते आप लोग भी हिचकते हैं।"

विषय बहस पर चला गया। वे भावावेश मे कहने लगे—"स्वामीजी ! देश मे एक ही दौड है, नाम कमाने की। एक विधायक चाहता है, मै ससद् सदस्य बन जाऊ, एक ससद सदस्य चाहता है, मै मत्री बन जाऊं और एक मत्री चाहता है, मै प्रधानमत्री बन जाऊ।"

मैंने बात को आगे बढाते हुए कहा—"एक उपराष्ट्रपति चाहता है, मैं राष्ट्र-पति बन जाऊ।" हकीकत यह थी कि उन्ही दिनो डॉ० राधाकृष्णन् के राष्ट्रपति बनने का विषय सरगर्मी से चल रहा था और वे स्वय भी उसमे सक्रिय दिलचस्पी ले रहे थे। मेरी बात उनको लग गई। वे चुप और गम्भीर हो गये। वार्तालाप गरमा-गर्मी मे चल रहा था। वे भी अग्रेजी मे बोल रहे थे तथा मैं भी अग्रेजी मे बोल रहा था। सुनने वालो को आश्चर्य हो रहा था कि मुनिश्री अग्रेजी मे इतना बोल सकते है। कमरो मे से सेक्रेटरी लोग बाहर आ गये कि क्या कोई झगडा हो रहा है ? पर, डा० राधाकृष्णन् से मै बहुत बार इस प्रकार की बातें पहले भी कर चुका था। वे देश के जाने-माने दार्शनिक व चिन्तक थे। अपने चिन्तन को स्पष्ट-स्पष्ट कहने का उनमे साहस भी था। पर, ऐसे वाद-विवादो को वे अपने मान-अपमान का प्रश्न नही बनाते थे। हम लोग आश्चर्य मे रहे कुछ ही क्षण चुप रहकर वे बोले—'अच्छा तो मुनिजी कहिये—अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करने मुझे कब और कहा आना है ?" उनके इस एक वाक्य के साथ ही सारा वातावरण बदल गया। उन्हे स्थान व तिथि नोट करा दिये गये। बात अन्तिम रूप से निर्णीत कर ली गई। लगा, जो काम जिस निमित्त से बनना होता है, तब ही बन पडता है।

उपसंहार

ज्यो-ज्यो समय निकट आता जा रहा था, व्यस्तताए बढ़ती जा रही थी।

ग्रन्थ का सम्पादन, चित्रों का चयन तथा उस अवसर पर पहुंच पाने वाले विशेष अतिथियों का निर्धारण कार्य-व्यस्तता के मूल आधार थे। प्रूफ-रीडिंग का कार्य आगे-से-आगे गुरुतर होता आ रहा था। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' और 'द्वितीय' दोनो की ही स्वभावगत विशेषता थी कि कोमा व पूर्णविराम की भी अशुद्धि कही रह न पाये। अन्तिम प्रूफ की जिम्मेदारी उन दोनों ने ले रखी थी। अन्य भी कई प्रूफ-संशोधन का काम कर थे। अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होकर हाथ में आ जाने के पश्चात् विद्वानो का यह विशेषतः मन्तव्य रहा—अब तक निकलने वाले अभिनन्दन ग्रन्थों मे सम्पादन व शुद्धि की दृष्टि से यह प्रथम कोटि का है। अत क्रमश. व्यस्तता इतनी सघन हो गई थी कि सहज विद्युत् के प्रकाश मे रात-रात भर भी हम सन्तो का कार्य चलता रहता। कभी कोई सोता तो कभी कोई काम पर बैठता। प्रधानमंत्री प० नेहरू ने द्विशताब्दी समारोह पर हमे आश्वासन दिया था कि मै प्रस्तुत समारोह मे तो भाग नही ले सकता, फिर आप जब भी कहेगे, मै सहर्ष आपके यहा आऊगा। अस्तु, मैं चाहता था, दिल्ली से प्रस्थान हो, उससे पूर्व इस महत्त्वपूर्ण अवसर का उपयोग कर ही लिया जाये, पर, कार्य व्यस्तता का देखते हुए वह विचार हमे अपनी ओर से ही स्थगित करना पडा। चालू कार्य के लिए एक-एक दिन और एक-एक प्रहर का भी बहुत महत्त्व बन रहा था। क्रमशः सभी कार्य अपेक्षित स्थिति मे आ गये। तब हम सभी सन्तो ने दिल्ली से भीनासर मे होने वाले मर्यादा-महोत्सव और गगाशहर मे होने वाले धवल-समारोह के लिए प्रस्थान किया। अवशेष कार्य दिल्ली मे कार्यकर्त्ता सम्भाल रहे थे।

हम सरदारशहर से श्री डूगरगढ़ होकर बीकानेर की ओर बढ़ रहे थे। मकर राशि पर अष्टग्रहो का जिस रात को समागम हुआ, उस रात हम लोग तोलिया-सर के भैरूजी के मन्दिर मे थे। रात के आरम्भ से समाप्ति तक कही कोई चूहा भी नही फुदका। अगले दिन सभी सही-सलामत आगे बढ गये। मर्यादा-महोत्सव मे हम लोग सम्मिलित हो गये। उस मर्यादा महोत्सव मे हमारा ध्यान एक विशेष बात की ओर आकृष्ट हुआ। उस समय माईक का प्रयोग किसी भी रूप मे नही हुआ करता था। मर्यादा-महोत्सव के दिन हम लोगो ने भी भाषण दिये, पर, कोलाहल इतना था कि किसी के कुछ भी पल्ले नही पड रहा था। मैने उसी दिन साय आचार्यश्री से बातचीत की। मैंने कहा—धवल समारोह तो इससे भी बड़ पैमाने पर होने जा रहा है। उस समय भी इस प्रकार का कोलाहल रहा तो समागत अतिथियो पर व जैनेतर जनता पर हमारे यहा की शालीनता का क्या प्रभाव पडेगा? आचार्यश्री ने कहा—समस्या तो है ही। कोई रास्ता निकालो। मैंने कहा—जनता मे इस समारोह मे शान्ति रखने के लिए

सशक्त वातावरण बना देना होगा। अगले दिन से प्रवचनों व खास-खास गोष्ठियों में यह अभियान चालू कर दिया। परिणाम भी बहुत सुन्दर आया। धवल समारोह के दिन लगभग चालीस हजार की उपस्थिति आकी गई। बीकानेर में देश के इतने मूर्धन्य लोगों का एक साथ पहुचने का यह प्रथम ही अवसर था। बीकानेर व गगाशहर के पारिपार्श्विक अचल के जैनेतर लोग भी सहस्रो-सहस्रो की सख्या मे उपस्थित थे, पर, शान्ति इतनी कि जिसकी हम लोगो ने भी कल्पना नही की थी। आने वाले अतिथियो मे डॉ० राधाकृष्णन् के अतिरिक्त, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री यू० एन० ढेबर, डॉ० सम्पूर्णानन्द, श्री श्रीमन्नारायण, श्री अक्षयकुमार जैन, महाकवि डॉ० हरिवंशराय बच्चन, बीकानेर महाराजा डॉ० करणीसिंह आदि समुल्लेखनीय थे।

अणुव्रत-परामर्शक

समारोह की उल्लेखनीय निष्पत्ति यह रही कि मुनिश्री बुद्धमलजी को 'साहित्य-परामर्शक' और मुझे 'अणुव्रत परामर्शक' की उपाधि से आचार्यश्री ने सम्मानित किया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' आदि अनेक साधुओ को भी आचार्यश्री की ओर से प्रशस्ति-पत्र दिये गये। डॉ० राधाकृष्णन् आदि दिल्ली से विशेष प्लेन मे आये थे। धवल समारोह की योजना चामत्कारिक रूप से सफल रही। सर्वसाधारण के मुख पर यही चर्चा थी कि द्वितीय चरण वास्तव मे अद्वितीय चरण हो गया। राष्ट्रीय ख्याति के इतने लोगो का एक साथ राजस्थान के कोणवर्ती स्थान पर पहुच कर किसी आचार्य विशेष को इतना सम्मान देना सर्वथा अभूतपूर्व ही है।

—०—

: ४ :

राजस्थान विधान सभा में अणुव्रत प्रस्ताव

जयपुर मे राजनैतिक समन्वय संधान का कार्य पूरा कर हमे चातुर्मास के लिए जोधपुर की ओर प्रस्थान करना था। पर, यहां समय भी काफी लग चुका था तथा अगला कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था; अत जोधपुर का चातुर्मास स्थगित कर इस वर्ष का चातुर्मास जयपुर के लिए ही निश्चित हो गया था। इससे पहले वर्ष का चातुर्मास नगर के 'मिलाप भवन' मे था। इस वर्ष का चातुर्मास सी-स्कीम मे श्री मन्नालालजी सुराणा के निवास स्थान 'सुराणा हाऊस' में ही करना निश्चित हुआ। उस चातुर्मास मे मेरे पास सन्त थे—मुनि मानमलजी, मुनि महेन्द्र कुमारजी 'द्वितीय', मुनि दिनेशकुमारजी।

राजनैतिक समन्वय संधान के सिलसिले मे विधायको एव विभिन्न दलो के शीर्षस्थ नेताओ से पर्याप्त सम्पर्क हो चुका था। उनमे से कुछ एक लोगो ने कृतज्ञता भाव से कहा—"आपने राजनैतिक स्तर पर हमे अहिंसा का मार्ग सुझाया है, हम आपको क्या सेवाए दे सकते हैं ?" इस प्रश्न ने ही मेरे मन मे एक कल्पना को जन्म दिया। सोचा, अच्छा अवसर है, क्यो नही विधान सभा के स्तर पर अणुव्रत आन्दोलन का ही समर्थन इन लोगो से कराया जाये। विधान सभा स्तर पर अणुव्रतों के समर्थन का एक प्रयोग पहले हो चुका था। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का चातुर्मास लखनऊ था। उन्होने सभी दलो से सम्पर्क कर अणुव्रत आन्दोलन के समर्थन मे प्रस्ताव पारित करने की भूमिका बनाई थी। तदनुसार कार्य भी हुआ। उत्तर प्रदेश विधान सभा मे विस्तृत चर्चाए इस पर हुई। आन्दोलन को समर्थन भी मिला, पर, अन्ततोगत्वा प्रस्ताव पारित नही हो सका था। विधायको ने समर्थनात्मक चर्चा को ही पर्याप्त मान लिया था। उक्त कार्यवाही उत्तर प्रदेश विधान सभा की विवरण पुस्तिकाओं मे सुविस्तृत रूप से प्रकाशित है।

मैंने सोचा, स्थिति का लाभ उठाया जाये। विषय चालू किया जाये। सर्व

प्रथम मैंने मुख्यमंत्री श्री सुखाडिया जी से इस सम्बन्ध मे चर्चाए की। वे सुराना हाऊस ही दर्शनार्थ आये थे। उन्होने कहा, "ऐसा सम्भव हो सकता है, जबकि विरोधी पक्ष इस प्रकार का प्रस्ताव अपनी ओर से लाये। हम सत्तारूढ पक्ष से लायेंगे तो विरोधी पक्ष उसका विरोध करेगा। वे लोग लायेंगे तो हम उसे स्वीकार कर लेंगे।"

विरोधी दल के नेताओ से एक-एक करके वार्तालाप किया गया। महारावल श्री लक्ष्मणसिंह, श्री भैरोंसिंह शेखावत, श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल, श्री कुम्भाराम आर्य, मास्टर आदित्येन्द्र, श्री दौलतराम सारण आदि नेताओ से मैंने कहा—अणुव्रत आन्दोलन राजस्थान से आरम्भ हुआ है। आज वह देश के पूर्वी अचल से पश्चिमी अचल तक तथा दक्षिणी अचल से उत्तरी अचल तक विस्तार पा चुका है। भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद और प्रधानमत्री प० नेहरु इसमे दिलचस्पी ले रहे हैं। समय-समय पर अणुव्रत सभाओ को सम्बोधित करते रहे हैं। अन्य प्रान्तो मे भी सर्वत्र राज्यपालों एव मुख्यमत्रियोने आन्दोलन का स्वागत किया है। यह एक राष्ट्रीय-चरित्र के उन्नयन की क्रान्ति है, जो राजस्थान से उठी है। राजस्थान से ही साधु-साध्विया दूरवर्ती अचलो मे पाद-विहार से पहुचते है, इस नैतिक सन्देश को उजागर करते हुए। एक राष्ट्रीय स्तर की नैतिक क्राति राजस्थान से आरम्भ व सचालित हो, यह राजस्थान के लिए गौरव का विषय है। विधान सभा मे आप सर्व सम्मति से अणुव्रत प्रस्ताव पारित करें, यह एक औचित्य की एव ऐतिहासिक महत्व की बात होगी। सभी विरोधी नेता मेरे इस विचार से सहमत हुए। मैंने यह भी कहा— ऐसा भी न हो कि अणुव्रत प्रस्ताव विधान सभा मे लाया जाये और विधान सभा की परम्परा के अनुसार उसकी छीछा-लेदर वहा हो। अस्तु, सर्व सम्मति से पारित होने की सम्भावाना हो, तभी अणुव्रत को विधान सभा मे डाला जाये।

नेताओ ने कहा—"हम सब तो पूर्णतया सहमत हैं ही, पर, आप व्यक्तिश पृथक्-पृथक् विधायको से भी सम्पर्क करते जाये; क्योकि विधान सभा मे अनुमान नही रहता कि कौन-सा क्या बोल बैठे?"

उस चातुर्मास मे मुख्य कार्य विधायक-सम्पर्क का ही चला। मेरे परम सहयोगी मुनि मानमलजी, मुनि महेन्द्रकुमार जी 'द्वितीय' दत्तचित्त होकर इस कार्य मे लगे रहे। एक-एक करके अधिकाश विधायको को वे मेरे सीधे सम्पर्क मे ले आये। उत्साहपूर्ण वातावरण मे सब कुछ चल रहा था, पर, अनायास ही एक प्रतिक्रिया पैदा हो गई। श्री चन्दनमलजी बैद ने इस समग्र विषय को अन्यथा ही ले लिया। उसका कारण शायद यही था कि हमारे इस अभियान को आगे बढ़ाने मे श्री निरजननाथ आचार्य, श्री कुम्भाराम आर्य व श्री दौलतराम सारण आदि विशेष

रूप से भाग ले रहे थे, जो कि बैदजी के पक्षधर नहीं थे। हमें अपने अभियान की परिपक्वता के लिए अणुव्रत विचार परिषदो में उन्हें आमन्त्रित करना ही होता था। बैदजी के लिए वह सब असह्य हो रहा था। उन्हे लगता था, मेरे ही विरोधी लोगों को मुनिश्री अणुव्रत मच पर हावी कर रहे हैं। हालाकि उनका यह सोचना यथार्थ नही था। सकीर्ण भावनाओ से ओत-प्रोत था। उन्हे सोचना तो यह चाहिए था कि विधान सभा मे अणुव्रत का समर्थन हमारे समाज के लिए कितना गौरव-सूचक होगा। मुनिश्री को इसमे सबसे समर्थन लेना ही होगा, अत वे यदि उनसे सम्पर्क बढा रहे हैं तो क्या बुरा कर रहे हैं ? पर, अपनी चिरतन चितन शैली के कारण उन्होने सोचने का दूसरा ही रास्ता चुन लिया। उनकी अन्यमनस्क स्थिति से हमे भी यह स्पष्ट-स्पष्ट भान होने लगा था कि वे हमारे इस कार्य से प्रसन्न नही हैं, पर, हमे यह कदाचित् भी कल्पना नही थी कि उनकी ओर से बाधक हरकते भी हमारे रास्ते मे खडी की जायेंगी। बैदजी उस समय न मत्री थे, न विधायक, पर उनके मित्र श्री बरकतउल्ला खा, श्री हरिदेव जोशी, जो आगे चलकर क्रमश' मुख्यमत्री बने, आदि अनेको लोग मत्रिमण्डल मे थे। मुख्यमत्री श्री सुखाडियाजी ने भी एक बार मुझे कहा था, विधायक समुदाय को अणुव्रत प्रस्ताव मे सहमत करने का कार्य आप श्री चदनमलजी से लें। मैंने श्री सुखाडिया जी का सुझाव उन्हे बताया भी, पर, शायद उन्होने अपने लिए यह कार्य बहुत छोटा समझा। एक भी विधायक को इस दिशा मे उन्होने कभी प्रेरित नही किया।

बढते हुए वातावरण मे एकाएक रुकावट आने लगी। उनके समर्थक कार्यकर्त्ता चौराहो पर भी बाते करने लगे कि हम तो पहले से ही कह रहे है यह प्रस्ताव पारित नही होगा, नहीं होगा। श्री हरिदेव जोशी सुराणा हाऊस मे आये। प्रस्तुत विषय की जानकारी उन्हे कराई गई तो उन्होने साफ-साफ कह दिया—यह होने वाली बात है ही नही। प्रथम तो चर्चा के लिए बेलेट मे ही इसका स्थान नही आयेगा, कदाचित आ ही गया तो विषय निर्धारण समिति मे ही यह रुक जायेगा। उस समिति के वे स्वय भी एक सदस्य थे। हमे भयकर निराशा तो तब हुई, जब प्रस्ताव की तिथि निकट आ चुकी थी, तब दर्शनार्थ आये मुख्यमत्री श्री सुखाडिया ने कह दिया—"मुनिश्री ! रहने दीजिये, अणुव्रत-प्रस्ताव को। मेरे कुछ साथी उसमे सहमत नही हैं।"

यह सुनते ही मैं अवाक् रह गया। निराशा हुई, यह जानकर कि काता-पीना पुनः कपास हो रहा है। फिर भी मैंने श्री सुखाडियाजी का हाथ पकडते हुए कहा--"यह आप क्या बच्चो का-सा खेल कर रहे है ? हमारे सारे समाज मे यह प्रचारित हो चुका है कि अणुव्रत-प्रस्ताव पारित होने ही वाला है। आपके आश्वासन पर ही मैंने बात उठाई थी। अब समय पर आप ही पीछे खिसकते हैं, यह नहीं

हो सकेगा। मेरी भी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न है। यह नही हुआ तो क्या मेरी मजाक नही उड जायेगी कि बिना सोचे-समझे ले गये थे अणुव्रत को विधान सभा में।

श्री सुखाड़ियाजी सहम गये। बोले—"ऐसी बात है, तो प्रस्ताव आने दीजिये, देखूगा।"

हम लोगो ने कार्यवाही चालू रखी। चातुर्मास समाप्त हो चुका था। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का चातुर्मास रतनगढ था। आचार्यश्री से निवेदन कर विशेष कार्य हेतु उनके सिंघाडे को भी मैंने वहा बुला लिया। विधान सभा अध्यक्ष श्री निरजननाथजी आचार्य हमारे परम सहयोगी थे। उन्होने हमे हरिदेव जोशी द्वारा उल्लिखित दोनो कठिनाइयो से पार करने का रास्ता सुझा दिया था। उन्होने बताया—गैर सरकारी प्रस्तावो मे चर्चा तभी होती है, जब प्रस्ताव बेलेट मे आ जाते हैं। बेलेट मे पचासो प्रस्ताव हो सकते हैं। उसमे से हम तीन-चार को ही निकालते हैं। जो भी आ जाये, उन पर विधान सभा मे चर्चा होती है। उसके लिए तो आप ऐसा कर, अणुव्रत समर्थन का एक ही प्रस्ताव आप बीस-तीस विधायको से अलग-अलग डलवा दे। चार प्रस्तावो मे एक तो वह आ ही जायेगा। फिर उसे प्राथमिकता देना मेरा काम रहेगा।

विषय निर्धारण समिति मे भी अध्यक्ष की हैसियत से मैं हू। अन्य पाच-छ आदमी और है, जिनके नाम मै बता देता हू। उनसे आप व्यक्तिश सम्पर्क कर लें। हम सब यदि चाहेगे और अकेले जोशीजी न भी चाहेगे तो कोई बात नही।

यथासमय सारी कार्यवाहिया सम्पन्न कर ली गईं। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' भी पहुच चुके थे। वे भी इस कार्य मे जुट गये। होना या न होना प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। आखिरी दिन तक हम आश्वस्त थे कि हमारी तैयारिया परिपक्व हैं। अब कोई खतरा नही आ सकता। प्रस्ताव विषय निर्धारण समिति मे भी स्वीकृत हो गया। बेलेट मे भी आ गया तथा चर्चा के लिए ३० जनवरी १९६८ का दिन भी निर्धारित हो गया।

विधान सभा मे

३० जनवरी का दिन आया। हम सातो सन्तो के लिए विधान सभा की 'विशेष गेलेरी' मे व्यवस्था थी। हम मध्याह्न ११ बजे ही वहा पहुंच गये थे। अन्य किसी सरकारी प्रस्ताव पर चर्चा चल रही थी। श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत विधान सभा की उपाध्यक्ष की हैसियत से सदन का सचालन कर रही थी। प्रस्ताव को लम्बा चलता देख श्री मथुरादास माथुर ने अध्यक्ष से अनुरोध किया—"चालू प्रस्ताव पर काफी चर्चा हो चुकी है। अब आज के महत्वपूर्ण विषय अणुव्रत पर चर्चा होनी है।" सारे सदन ने हर्ष-ध्वनि से प्रस्ताव का स्वागत किया। दो जनसघी विधायको

के नाम से प्रस्ताव बेलेट में आया था। विधायकों ने प्रशस्त भूमिका के साथ अणुव्रत प्रस्ताव विधान सभा के पटल पर रख दिया। सभी विधायकों के सामने बेंचो पर अणुव्रत नियमावली व अन्य सम्बन्धित साहित्य पड़ा था। श्री पन्नालाल बांठिया व श्री महेन्द्र जैन (भगवतगढ़) आदि कार्यकर्त्ताओ ने विधान सभा में प्रवेश करते समय सभी विधायको के हाथो में वह साहित्य दे दिया था। विधायको में अणुव्रत पर बोलने की भरपूर उत्सुकता थी। एक के बोल चुकने पर दसो विधायक एक साथ खडे हो रहे थे। तब तक आचार्य निरंजन नाथ भी अपनी कुर्सी पर आ चुके थे। सदन को सचालित करने का उनका तौर-तरीका बहुत ही ओजस्वी व प्रभावशाली था। पृथक्-पृथक् दलो के नेताओ को वे क्रमश बोलने का अवसर देते गये। सभी ओर से सर्वांगीण समर्थन का रुख चल रहा था। एक साम्यवादी सदस्य श्री रामानन्द अग्रवाल थे जो कि बीच-बीच मे खडे होकर अणुव्रत आन्दोन के विषय मे विरोधी दलीलें पेश कर रहे थे। उनका विरोधी रुख देखकर हमे आश्चर्य था, क्योकि हम लोगो ने जब पृथक्-पृथक् दलो के नेताओ से इस विषय मे सम्पर्क किया था तब साम्यवादी नेता एच० के० व्यास से भी सम्पर्क कर लिया था। उन्होंने हमे आश्वासन भी दे दिया था कि हमारी पार्टी का तो केवल एक ही विधायक है, उसे मैं कह दूगा। पर, ऐसा लगा, या तो श्री व्यासजी ने उन्हे कहा ही नही, या साम्यवादी विधायक ने माना नही। पर, कुल मिलाकर उस साम्यवादी विधायक की फूलझरिया वातावरण को रोशन करने मे बहुत कारगर रही। उस एक के विपक्ष मे सारा सदन था। जब वह विधायक सदस्य किसी तरह चुप न रहा, तो अन्त मे विरोधी पक्ष के नेता श्री भैरोंसिह शेखावत खडे हुए और अणुव्रत पुस्तिका को सबके समक्ष करते हुए बोले— "मैं बहुत देर से इस चिन्तन मे था कि अणुव्रत मे ऐसी क्या बात है, जिसके लिए हमारे कामरेड साथी को उसका इतना विरोध करना पड रहा है। अणुव्रत नियमावली को जब मैंने पढा तो मेरे समझ मे बात आ गई, इसमे एक नियम साम्यवादी पार्टी के लिए बडा घातक है, वह है—"मैं तोड-फोड-मूलक विध्वंसात्मक कार्यवाही मे भाग नही लूगा।" हमारे कामरेड को चिन्ता है कि अणुव्रत प्रस्ताव पारित हो गया तो फिर हमारा काम ही क्या रह जायेगा।" तालियो की गड-गडाहट से सारा सदन गूज उठा।

साम्यवादी विधायक भी चुप बैठने वाला नही था। उसने कहा—"श्री शेखावत राजपूत है। इनका नाम ही भैरोंसिह है। पर, आज इनमे जितनी अहिंसा ओत-प्रोत हो रही है, उसे देखते हुए मै अगली बहस मे इन्हे भैरोलालजी महाराज साहेब के नाम से ही सम्बोधित करूगा।" इस प्रकार घण्टो बीतते गये। बहस की सरसता बढ़ती गई। बीच-बीच मे ही बरकतउल्लाजी खडे होकर बोलना चाहते

थे, पर, श्री निरंजननाथजी आचार्य उनकी विरोधी विचार-धारा से अवगत थे, अत. उन्हे बोलने का मौका नही दिया। बहस चलते लगभग तीन घण्टे पूरे हो रहे थे। हम ऊपर बैठे मुग्ध थे कि चलो, उठाया काम परिसम्पन्न हो ही चला है। पर, अकस्मात् अप्रत्याशित ढग से एक बाधा उपस्थित हुई कि हम लोगो को कुछ देर तक भौचक्के ही रह जाना पडा। समस्त बहस के अन्त मे मुख्यमत्री श्री सुखाड़िया ने अपने उपसहारात्मक भाषण मे कह दिया—"अणुव्रत पर सुन्दर चर्चाए हुई। सबका समर्थन है ही। मैं समझता हू, अब प्रस्ताव पारित करने की कोई आवश्यकता ही नही रह गई है।" यह सुनते ही सारे सदन मे एक बार के लिए सन्नाटा छा गया। काग्रेसी विधायक तो अपने नेता के विरुद्ध बोले ही कैसे? हवा का रुख देखकर अन्य भी चुप हो गये। हम लोग ऊपर बैठे केवल सुन ही सकते थे, बोल नही सकते थे। इस आपात् स्थिति से मेरा मन एक बार के लिए घबरा उठा। अब क्या किया जाये? यह तो सारा ही गुड-गोबर हो रहा है। मैं तत्काल आख मूद कर अपने इष्ट के स्मरण मे लगा। इष्ट-स्मरण मे जितनी तल्लीनता उस दिन हुई, उससे पहले-पीछे उतनी शायद कभी नही हुई होगी। इष्ट-बल काम आया। उस समय के विरोधी नेता व वतमान के भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री भैरोसिह शेखावत मे राम जगा। उन्होने खडे होकर दहाडती आवाज एव व्यग्य मे कहा—यह क्या तमाशा है। इसी विधान सभा मे सरकारी पक्ष नाजायज से नाजायज प्रस्ताव सदा ही पारित करता रहता है। आज जो एक सर्वसम्मत विषय है, वह भी राष्ट्रीय-चरित्र से सम्बन्धित, उसे टाला जा रहा है। सारे देश मे हमारी विधान सभा की क्या यह छीछा-लेदर नहीं होगी कि राजस्थान विधान सभा के विधायक इतने चरित्र समर्थन के प्रस्ताव को भी पारित नही कर सके? अस्तु, वातावरण पुन प्राणवत्ता मे आ गया। सदन का रुख देखकर नगण्य-सा शाब्दिक सशोधन कर प्रस्ताव पारित कर देने मे मुख्यमत्री ने अपनी सहमति अभिव्यक्त कर दी। विधान सभा अध्यक्ष श्रीनिरंजन नाथ आचार्य ने ध्वनि-मत से प्रस्ताव पारित करवाया। एक साम्यवादी सदस्य को छोड कर सारे सदन की एक ही ध्वनि प्रस्फुटित हुई और प्रस्ताव पारित होगया। प्रस्ताव की भाषा थी—"सदन निश्चय करता है कि आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आन्दोलन की प्रशसा की जाये।" दर्शक-दीर्घाये उस दिन खचाखच भरी थी। जैन व तेरापथी दर्शको की बहुलता थी। हम सातो सन्तो ने भी आद्योपान्त सारी कार्यवाही देखी व सुनी और अन्त मे स्वय को कृत-कृत्य अनुभव करते सानन्द सुराणा हाऊस लौटे।

फिर विश्वस्त सूत्रो से इस बात का भी पता चल गया कि वह आकस्मिक आपत्ति क्यो व कैसे उठी थी। श्री चन्दनमल बैद के हिमायती श्री हरिदेव जोशी ने अपने कक्ष मे समागत श्री रामनिवास मिर्धा से कहा कि आप चिन्तन कर कि इस

प्रकार के प्रस्ताव पारित करने की विधान सभा की परंपरा भी है क्या ? प्रस्ताव पारित कर देने के पश्चात् अणुव्रत के सारे नियमो को पूरे राज्य मे लागू करने के लिए क्या सरकार उत्तरदायी नही बन जायेगी ?

श्री मिर्धाजी भी विधान शास्त्री थे । व्यवहार की अपेक्षा नियम की भाषा ही अधिक जानते थे । वे भी श्री जोशीजी के कथन से सहमत हो गये। तब श्री जोशी जी ने यही बात श्री सुखाडियाजी के कान मे डाल देने के लिए श्री मिर्धाजी को प्रेरित कर दिया। श्री सुखाडियाजी धर्म-सकट मे पड गये। वे इतनी औपचारिकताओ में न जाकर प्रस्ताव को पारित करवाना ही चाहते। बाल की खाल निकालना उन्हे पसन्द नहीं था। पर, एक पक्ष का विपरीत दबाव भी उन्हे कुछ डावा-डोल कर रहा था । यही कारण हो सकता है कि श्री सुखाडियाजी को एक बार के लिए अपनी राय कुछ ढिल-मिल कर देनी पडी। पर, सयोग की बात थी, विरोधियो के मनसूबे धरे रह गये और प्रस्ताव सोत्साह पारित हो गया।

अगले दिन राजस्थान, दिल्ली के तथा अन्य सभी प्रान्तो के दैनिक पत्रो मे मुख्यता से यह समाचार छपा। उस सम्बन्धित मम्वत व मास की विधान सभा-विवरण पुम्तिका मे भी सदन की समस्त चर्चा यथावत प्रकाशित हुई। एक चिर स्मरणीय इतिहास बना, जो अब तक भी अपने आप मे प्रथम व अन्तिम है तथा श्री चन्दनमलजी बैद भी अब विधान सभा मे अणुव्रत सम्बन्धी आरोपो से अपना बचाव यही कह कर करते हैं कि हमारी विधान सभा ने वर्षों पूर्व ही अणुव्रत समर्थन का प्रस्ताव पारित कर रखा है ।

श्री बरकतउल्लाजी बडे सहज व्यक्ति थे। विधान सभा की इस कार्यवाही के पश्चात् वे कई बार मेरे से मिले। मुक्त हास्य के साथ तब उन्होने अणुव्रत प्रस्ताव के विषय मे अपने व अपने साथियो के मनसूबे साफ-साफ बतलाए।

—o—

: ५ :

राजस्थान की द्वद्वात्मक राजनीति को एक औचित्य का आधार

सन् १९६७ की बात होगी। राजस्थान की राजनीति मे एक भयकर ज्वार आया। विधानसभाई चुनावो के पश्चात् सयुक्त विधायक दल और काग्रेस दोनो ने ही अपने-अपने बहुमत का दावा किया। तत्कालीन राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द ने काग्रस विधायक दल के नेता श्री मोहनलाल सुखाडिया को मत्रिमण्डल निर्माण के लिए आमन्त्रित कर लिया था। इसी पहलू पर सयुक्त विधायक दल से सम्बन्धित सभी राजनैतिक पार्टियो मे तथा जनता-जनार्दन मे भी एक ज्वार आ गया। विरोध-प्रदर्शन का उत्तेजनापूर्ण जुलूस निकाला गया। जौहरी बाजार मे पुलिस एव उत्तेजित भीड के बीच टकराव हुआ। गोलिया चली। लाशे गिरने लगी। कुछ सम्बन्धित, कुछ असम्बन्धित भी। अनेकानेक व घायल होकर भी गिरे। जुलूस एक बार के लिए तितर-बितर हो गया, पर, विरोध की आग द्विगुणित होकर भभक उठना चाहती थी। दैनिक पत्र-पत्रिकाओ के मुख-पृष्ठ इन्ही चर्चाओ से भरे रहते थे।

शांतिप्रयत्न करें

उन दिनो हम लोग मर्यादा-महोत्सव के निमित्त से बीदासर, सुजानगढ़ अचल मे थे। आचार्यश्री तुलसी ने मेरा चातुर्मास जोधपुर के लिए घोषित कर दिया था। बिहार की तैयारिया हो रही थी। आचार्यश्री तुलसी वहा से मेवाड-मारवाड की ओर बिहार कर चुके थे। लाडनू से कुछ ही दूर 'रताऊ' गाव मे थे। श्रीशुभकरणजी दशाणी रताऊ से सायकाल सुजानगढ आये। मेरे व मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के दर्शन किये। निवेदन किया कि आचार्यश्री चाहते हैं, आप यहा से जयपुर जाये और वहा की बिगडती हुई राजनैतिक स्थिति मे बीच-बिचाव का काम करे। अहिंसा व शान्ति का उपदेश दें।

मैं यह आकस्मिक और अप्रत्याशित-सी बात सुनकर एक क्षण मौन रहा। फिर बोला—चातुर्मास मेरा जोधपुर कहा हुआ है। जयपुर होकर जोधपुर जाना बहुत कष्ट-साध्य है; फिर भी मैं पहले जयपुर जाना स्वीकार करता हू। मेरे मन में उक्त राजनैतिक समस्या का न तो कोई सीधा समाधान था तथा न यह भी स्पष्ट था कि मुझे वहा जाकर क्या करना है, कैसे करना है। पर कुछ कर दिखाने का अवसर समझ कर मैंने आचार्यश्री का वह मनोभाव मजूर कर लिया।

हम लोग द्रुत-गति से विहार कर जयपुर पहुचे। उस समय मेरे साथ मुनि मानमलजी, मुनि महेन्द्र कुमारजी 'द्वितीय,' मुनि दिनेशकुमारजी थे। जयपुर मे श्रीमन्नालालजी सुराणा के सी-स्कीम स्थित 'सुराणा हाऊस' मे हमारा प्रवेश हुआ। राजनैतिक वातावरण तब तक भी पूरा तनाव पर था। कब किस नेता को कौन गोली मार दे, कोई पता नही। मन्त्रिमण्डल शपथ नही ले सका था। सयुक्त विधायक दल के विधायक बडी सख्या मे दिल्ली पहुच कर अपना बहुमत अभिव्यक्त कर आये थे। इधर सुखाडियाजी के नेतृत्व मे बहुमत का दावा चल ही रहा था।

जनतंत्र एक गाणितिक विषय

मेरे सामने समस्या थी, इस तनावपूर्ण स्थिति मे अनाहूत पच कैसे बना जाये? मैने श्री मन्नालालजी सुराणा से कहा- -महारानी गायत्री देवी को आज कल मे ही दर्शन करा सकें तो कैसा रहे? श्रीमती गायत्री देवी विगत वर्ष के हमारे जयपुर चातुर्मास मे अनेक बार सम्पर्क मे आ चुकी थी। मन्नालालजी ने फोन पर मेरी भावना उनको बताई और वे अगले ही दिन प्रात:काल सुराणा हाऊस मे उपस्थित हो गई।

मैंने विषय प्रस्तुत किया—जयपुर मे पिछले दिनो गोली-काण्ड आदि जो घटित हुआ और अब भी जो नाना अवाछनीय घटनाए घटित हो रही हैं, वह समग्र राजस्थान के लिए लज्जा की बात है। राजस्थान की शालीनता व गौरव को कम करने वाली हैं। जनतत्र तो गणित पर आधारित होता है, उसमे भूल नही चल सकती। एक बार की गणना में कोई भूल रह भी जाये तो वह दूसरी बार सुधारी जा सकती है। उस गणित का निपटारा आम रास्तो मे किया जाये, यह उचित नही है। यदि राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द ने अल्पमत के नेता को ही आमन्त्रित कर लिया था, तो उसका निपटारा अगले ही दिन विधान सभा मे हो सकता था। वह सरकार स्वत: गिर जाती। उस साधारण-सी बात को आपने सड़क पर लाकर और जटिल बना लिया है।

वार्ताक्रम का दौर

महारानी लगभग मेरे विचारो से सहमत हुई। उन्होने कहा—बातचीत से कोई सही समाधान निकलता है तो मुझे कोई आपत्ति नही। महारानी उस समय राजनैतिक क्षेत्र की नवोदित तारिका थी। उनका परम्परागत राजकीय प्रभाव, असाधारण व्यक्तित्व और तत्कालीन चुनावो की उनकी अप्रत्याशित सफलता ने एकाएक उन्हें राजनैतिक क्षितिज पर चमका दिया था। अगले ही दिन मेरे व उनके विचार-विनिमय का समाचार स्थानीय दैनिक पत्रो मे प्रमुखता से छपा। साथ-साथ यह भी प्रकाशित हुआ—मुनिश्री इसी सौहार्द के मुद्दे को लेकर आज राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द से भी मिलेंगे। उनके साथ भी वार्तालाप होना पहले दिन ही निश्चित हो चुका था। सहसा समस्त राजनैतिक दलो का ध्यान इस समन्वय-प्रयत्न की ओर आकृष्ट हो गया। प्रतिक्रिया मिश्रित थी। पहली प्रतिक्रिया यह थी कि साधु लोग इस बखेडे मे क्यो आ रहे हैं ? दूसरी प्रतिक्रिया थी, देखे, क्या करते है। अगले दिन हम लोग राजभवन की ओर चले। मार्ग मे सुखाडियाजी की कोठी पडती थी। मुनि मानमलजी अन्दर गये तो देखा, सुखाडियाजी व विधायको का जमघट लग रहा है। सुखाडियाजी ने खडे होकर उनका अभिवादन किया और आने का निमित्त पूछा। मुनि मानमलजी ने उन्हें बता दिया कि मुनिश्री नगराजजी राज्यपाल से मिलकर आपके यहा पधारेंगे। उपस्थित सभी विधायको मे कौतूहल और जिज्ञासा का भाव उतर आया।

राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द से बात आरम्भ हुई। वे बहुत ही खिन्न व अन्यमनस्क प्रतीत हो रहे थे। लगभग एक घण्टा तक विभिन्न पहलुओं पर विचार विनिमय हुआ। आगे क्या करना है, कैसे करना है, इस विषय पर बात चलते ही उन्होने कहा—मेरे करने की अब कोई बात नही रही है। केन्द्रीय सरकार मेरा यहा से परिवर्तन करने का निश्चय कर चुकी है। मेरे स्थान पर सरदार हुक्कुमसिंह आयेंगे। जो कुछ करना है, अब उन्हे ही करना है। सरदार हुक्कुमसिंह इससे पूर्व लोकसभा के अध्यक्ष रह चुके थे। दिल्ली रहते हमारा सम्पर्क उनसे भी रहा करता था। अस्तु, बात उनके आने तक के लिए लटक गई। वापिस आते समय सुखाडियाजी से मिलना हुआ। सौहार्द-मूलक बाते हुई। उन्होने कहा—मैं तो चाहता ही हू कि समस्या का समाधान संवैधानिक-स्तर पर ही निकाला जाये। अस्तु, आज के वार्तालापो की चर्चा अगले दिन के दैनिक पत्रों मे महत्त्व पा गई। सारे नगर मे यह बात चर्चा मे आ गई कि कोई जैन सन्त राजनैतिक स्तर पर बीच-बिचाव कर रहे हैं।

प्रतिक्रियाएं

जैन समाज की प्रतिक्रिया सुखद नही थी। सब का लगभग यही स्वर था—जैन सन्तो को इस बखेडे-बाजी से क्या मतलब, आदि आदि। तेरापथ समाज की प्रतिक्रिया तो और अधिक कटुतर थी। श्रावक-श्राविकाए बौखला उठे थे—मुनिश्री! यह क्या कर रहे हैं? सारे जैन समाज मे हमारी निन्दा हो रही है। स्थिति को सम्भालने के लिए मुझे तत्काल ही एक श्रावक-सम्मेलन आयोजित करना पडा। सम्मेलन मे मैंने बताया- किसी भी झगडे मे बीच-बिचाव करने की अपनी परम्परा है। जो कुछ भी हो रहा है, उसमे नया कुछ भी नही है। आप लोगो के परिवार मे होने वाले आये दिन के झगडो को क्या हम लोग नही निपटाते हैं? हाईकोर्ट और सुप्रीमकोर्ट मे चलने वाले झगडो को भी कभी-कभी साधु-सतिया निपटा देते हैं। भगवान महावीर के युग मे युद्ध-स्तर के राजाओ के झगडो को भी साधु-सतियो ने बीच मे पडकर टाला है। अस्तु, उपस्थित श्रावक-समुदाय के वह बात गले तो नही उतरी, फिर भी अवसर देखकर वे लोग चुप रहे। मैं यह भी सोचता था कि उठाये गये अनुष्ठान मे सफलता मिल गई, तब तो सब वाह-वाही देगे और यदि असफलता मिल गई तब तो मेरे पर हावी होगे ही। इस तरह मैंने अपना कार्य रोका नही। सम्पर्क चालू रखा। प्रतिदिन 'सुराणा हाऊस' मे पृथक्-पृथक् दलो के नेता व विधायक आकर मिलने लगे। जिनमे चौधरी कुम्भाराम, मास्टर आदित्येन्द्र, हरिदेव जोशी, दौलतराम सारण, मनफूल सिंह भादू आदि के नाम उल्लेखनीय है। मूल झगडे की जड यही थी कि दोनो ही पक्ष यह दावा करते थे कि इतने विधायको का अपहरण प्रतिपक्ष ने कर लिया है, उनको छिपा रखा है, आदि-आदि। उनकी वह बात अयथार्थ भी नही थी। कुछ-कुछ विधायक दोनो ही तरफ अवरुद्ध किये हुए थे।

समाधान का मार्ग

राज्यपाल के रूप मे सरदार हुक्कुमसिंहजी का आगमन हो गया। निवर्तमान राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द को बिना बिदाई लिये ही अनजाने समय ही प्लेन से निकल जाना पडा। उनको खतरा था कि उत्तेजित जनता मे से कोई भी गोली मार सकता है। सरदार हुक्कुमसिंह से भी हमारा यथासमय मिलन हो गया। खुलकर बातें हुईं। उन्हे अतीत से वर्तमान तक का घटना-प्रसग मैंने अपने दृष्टिकोण से बताया। उनसे पूछा—"आप इसका समाधान अब कैसे करना चाहते हैं?"

राज्यपाल श्री हुक्कुमसिंह ने कहा—"मैं समस्त विधायको की एक बैठक बुलाना चाहता हू। उनसे कह दूगा, जो कांग्रेस में हैं, वे एक तरफ बैठ जायें।"

मैंने कहा – "इससे समाधान नही निकल पायेगा। दोनो ओर के विधायक आपके सामने गुत्थम-गुत्था हो सकते हैं। एक-एक विधायक की छीना-झपटी हो सकती है। कुछ विधायक पहले ही लापता किये जा सकते हैं। इस स्थिति मे समाधान की अपेक्षा नई उलझन खडी हो सकती हैं।"

सरदार हुक्कुमसिंह ने कहा—"आप क्या सोचते हैं ?"

मैंने कहा—"सब को एकत्रित करने की आवश्यकता ही नहीं है। आप दोनों पक्षो से उनकी अपनी-अपनी सूची माग सकते हैं। दोनो सूचियो मे जो नाम समान आते हैं अर्थात् जिन-जिनके नाम दोनो सूचियो मे हो, उन-उन विधायको से आप स्वयं बात करे, दोनो पक्षो के नेताओं को आप अपने पास बिठा लें। उक्त विधायको की भावनाए उसी उसी समय 'टेप' की जा सकेंगी तो आपके लिए निरापद बात होगी।"

राज्यपाल ने कहा—"मैं भी ऐसा सोचता हू, पर, सयुक्त विधायक दल के नेता महारावल लक्ष्मणसिंह इस बात पर आग्रहशील हैं कि एक बार समस्त विधायको को एक साथ उपस्थित किया जाये, तभी हम अपने विधायको को उनसे मुक्त करा सकेंगे। स्वामीजी ! आप उनसे मिलकर उन्हे इस आग्रह से मुक्त करा सके तो मेरे लिए काफी सुविधा हो जाती है।"

राजभवन से हम लोग तत्काल समीपस्थ महारावल लक्ष्मणसिह की कोठी आये। सयोग से वे भी वहा मिल गये, बातें हुईं। बहुत ही भले व सज्जन व्यक्ति। बीकानेर महाराजा श्री करणीसिंह के श्वसुर लगते थे। बडी आत्मीयता से विचार-विनिमय हुआ। आखिर उन्होने यह तथ्य स्वीकार कर लिया कि राज्यपाल यदि दोनो पक्षो की सूची माग लें तो मैं भी अपनी सूची उन्हे प्रेषित कर दूगा। अस्तु, हमने यह सूचना राज्यपाल तक पहुचा दी।

उक्त वर्तालाप के दूसरे या तीसरे दिन ही समाचार पत्रो मे पढने को मिला, राज्यपाल ने दोनो सूचियो मे उल्लिखित विधायको को बुलाया। उनकी सुरक्षा की पूरी जिम्मेदारी देते हुए अपना अभिमत प्रस्तुत करने को कहा और प्राप्त अभिमत के अनुसार लगभग पाच-छ. विधायको के अन्तर से काग्रेस का बहुमत प्रमाणित हो गया तथा श्री मोहनलाल सुखाडिया को मत्रिमण्डल-निर्माण हेतु राज्यपाल ने आमन्त्रित कर लिया। समस्त सम्बन्धित कार्यवाही शान्ति व सौहार्द के वातावरण मे सम्पन्न हो गई। अब पारस्परिक तनाव का कोई आधार नही रहा।

साधुवाद सफलतायें

स्थानीय दैनिक पत्रों में इस घटना-प्रसंग पर विस्तृत सम्पादकीय लिखे गये। कतिपय सम्पादकों ने स्पष्टतः उल्लेख किया कि वर्तमान राजनैतिक उठा-पटक मे सवैधानिकता लाने का एकमात्र श्रेय मुनिश्री नगराजजी को है। उन्होंने इस अवसर पर जो बोध दिया, वह ठीक वैसा ही है, जैसा कि राम-राज्य मे महर्षि वशिष्ठ दिया करते थे। राजनीति और धर्म परस्पर निरपेक्ष माने जाते हैं, पर, मुनिश्री के प्रयत्नो ने यह प्रमाणित कर दिया है कि राजनीति और धर्म का सम्बन्ध हो तो ऐसा ही हो। अर्थात् राजनीति के दलदल से ऊपर रहता हुआ धर्म भटके हुए राजनीतिकों का सही मार्ग-दर्शन करे।

इस सफलता के पश्चात् तो तेरापंथ समाज का वातावरण भी बदल गया। सब ने माना, इससे तो तेरापथ व जैन धर्म की प्रभावना ही हुई है। हम लोग इस माने मे कृत-कृत्य थे कि जिस उद्देश्य से हम जयपुर आये थे, उसे सार्थक कर सके।

कुछ ही दिनो पश्चात् राजस्थान के मत्री श्री अमृतलाल यादव अहमदाबाद गये। वहा आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास था। आचार्यश्री ने जब उनसे पूछा कि हमारे सन्तो का योगदान कैसा रहा ?

श्री यादव ने कहा—"मुनिश्री नगराजजी ने तो इस बार वह काम कर बतलाया जो किसी जमाने मे ईसा मसीह ने किया था।"

—०—

: ६ :

..तभी, मैं और सारा संघ सकुशल लौट सका

(रायपुर का अग्नि-परीक्षा प्रकरण)

सन् १६७० की घटना है। भ० महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती की समायोजना हेतु मैं व मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' दिल्ली मे थे। आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास रायपुर (म०प्र०) मे था। चातुर्मास से पूर्व मुनि राकेशकुमार जी कार्य कर रहे थे, अत आचार्यश्री के चातुर्मासिक आगमन पर विराट स्वागत हुआ। स्वागत के समाचारो के अनन्तर ही कुछ मतभेद के समाचार हमे मिलने लगे। यह भी पता चला कि 'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक से सम्बन्धित वाद-विवाद है। हम लोगो ने उसे कोई महत्त्व नही दिया। ऐसे छुटपुट विवाद होते ही रहते हैं। कुछ दिनो पश्चात् श्री दशाणीजी दिल्ली आये। उन्होने गम्भीरता से वह बात मेरे समक्ष रखी। आधे चातुर्मास के लगभग तो बडे विकट समाचार हमे मिलने लगे। उसी पुस्तक को लेकर आचार्यश्री पर अनेको मुकदमे खडे कर दिये गये हैं। विद्रोह पूरी तरह से भभक गया है तथा आचार्यश्री को चातुर्मास मे ही विहार करने का निश्चय कर लेना पडा है। इन समाचारो से तो हम सभी लोग सन्न रह गये। साथ-साथ यह भी था कि स्थानीय जिलाधीश व मुख्यमत्री आदि भी सहयोगात्मक रुख नही रख रहे हैं। दो-तीन दिन मे वहा से विहार हो ही जाने वाला है। रात मे हम सातो सन्त व दिल्ली के भाई-बहिन एकत्रित हुए। विविध मन्त्रणाए चली। रायपुर से भी सीधे फोन दिल्ली आने लगे थे।

हम लोगो के चिन्तन का निष्कर्ष रहा—कल ही प्रधानमत्री श्रीमती गाधी से मिला जाये तथा उनसे सम्बन्धित कार्यवाही करने के लिए कहा जाये। अन्य व्यक्तियो से भी मिला जाये, जो मध्यप्रदेश प्रशासन से सलग्न हो या उन्हे प्रभावित कर सकने वाले हो। प्रश्न यह भी सामने था कि पहले से समय निर्धारित किये बिना प्रधानमत्री से मिल भी कैसे पायेंगे?

सक्रियता का प्रथम दिवस

अगले दिन प्रात काल ही कतिपय सन्त, कार्यकर्त्ता व हम लोग चल पड़े। समाज के अग्रणी सीधे प्रधानमत्री भवन के बाहर पहुच गये थे। सयोग की बात थी, हमारे चिर परिचित व प्रधानमत्री के विशेष सहायक श्री आर० के० धवन प्रधानमत्री भवन मे प्रवेश करते हमे बाहर मिल गये। बात बन गई। हम सब उनके साथ ही अन्दर पहुच गये। सहवर्ती लोगों को प्रतीक्षा-गृह मे बिठा दिया गया। हम साधुओ को उसी कमरे मे आसीन कर दिया, जहां प्रधानमत्री को बातचीत करने पहुचना था। प्रधानमत्री के आते ही मैंने कहा—पिछले दिनो तो हम भगवान् महावीर के निर्वाण जयन्ती समारोह के सन्दर्भ मे मिलते रहे हैं, पर, आज तो बहुत ही अनिवार्य एव आकस्मिक कार्य लेकर आये हैं। प्रधानमंत्री का ध्यान बात सुनने मे केन्द्रित हो गया। उस समय उन्हे रायपुर की सारी स्थिति से अवगत कराया गया। चातुर्मास मे विहार होने की बात को एक दु खद घटना के रूप में प्रस्तुत किया। प्रधानमत्री ने कहा—"आप बताइये, मुझे क्या करना है ?" मैंने कहा—"अभी तो आपको आचार्यश्री के सम्भावित विहार को ही रुकवाना है तथा सुरक्षा की दृष्टि से हमे आश्वस्त करना है।" उन्होने कहा—"मैं मुख्यमत्री श्यामाचरण शुक्ल को फोन पर बोल दूगी।" मैने कहा—"यह कार्य फिर लम्बा हो जायेगा। मुख्यमत्री भोपाल मे रहते है। वहा से रायपुर पहुचने तथा सम्पर्कित होने मे देर लग सकती है। हो सकता है, तब तक आचार्यश्री का विहार वहा से हो जाये। अच्छा तो रहे, आप वहा के जिलाधीश को ही सीधा सकेत करे और वह तत्काल अपेक्षित कार्यवाही करे।"

श्रीमती गाधी ने एक क्षण सोचकर कहा—"अच्छा, ऐसा भी हो जायेगा।"

मैंने कहा—"अभी आप हमारे सामने ही उनसे फोन पर कह सकेगी ?"

उत्तर मिला—"मुनिश्री ! अभी नही।" अपने पास ही खडे श्री धवन की ओर सकेत करते हुए कहा—"एक और दो के बीच हम लोग पुनः यही मिलेंगे, तब हम यह कार्य कर देंगे।" धवन की ओर पुन देखकर बोली—"याद रखना, मुनिजी का कार्य भूल मे न रह जाये।"

हम आश्वस्त होकर प्रधानमत्री भवन के बाहर आये। उपस्थित अग्रणी लोगो को प्रधानमत्री से हुई बातचीत की अवगति दी। सबको हार्दिक प्रसन्नता होनी ही थी। वहा से हम लोग नई दिल्ली मे ही मध्यप्रदेश भवन की ओर चले। मुख्यमत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल आज दिल्ली मे ही हैं, ऐसी अवगति मिल चुकी थी। सयोग से उनसे भी जाते ही मिलना हो गया। एकान्त वार्तालाप हुआ। मैंने कहा—"मध्यप्रदेश से एक महान् जैनाचार्य को चातुर्मास मे ही विहार करना

पड़े, इससे तो आप व आपकी सरकार पूरे देश में चर्चित हो जायेगी। मध्य प्रदेश के जैन समाज मे भी आक्रोश फैल जायेगा, आदि।" मुख्यमत्री ने कहा--"हम आचार्यश्री को रुकने के लिए तो नही कहेंगे, पर, वे रुकेंगे तो सुरक्षा की जिम्मेदारी हमारी है ही। आप जानते हैं, हम लोग राजनैतिक हैं। अपना राजनैतिक लाभ- अलाभ सोचकर ही कार्य कर सकते हैं। रायपुर मे ही नही, पूरे मध्यप्रदेश में आचार्यश्री तुलसी का विरोध खडा हो गया है। उनके विरोधी आन्दोलन मे मेरे भी निजी व्यक्ति अगुआ हो रहे हैं। इस स्थिति मे कुछ भी करू तो मेरे लिए धर्म-सकट है। वे अपने आप जाने का निश्चय कर रहे हैं तो यह हमारे लिए सबसे कम आपत्तिजनक है। वैसे मुनिश्री, आप जो कह रहे हैं, मध्यप्रदेश के जैन समाज मे विद्रोह हो जायेगा, वैसी कोई बात नही है। तेरापंथ समाज के सिवाय आचार्यश्री तुलसी के पक्ष मे मध्यप्रदेश का कोई जैन घटक है ही नही। तेरापथी मध्यप्रदेश मे इतने से हैं, जो अगुलियो पर गिने जा सकते हैं, फिर भी मै यथासम्भव सहयोगात्मक रुख रखूगा।"

उनके मनोगत भाव मेरी समझ मे आ गये कि स्वय मे सुरक्षात्मक कार्यवाही भी पूरी कर सकेंगे, ऐसा नही लगता। चातुर्मास मे रुके रहने का निवेदन ये फिर क्या कर सकेंगे? मैने उनसे नही कहा कि मैं प्रधानमत्री से अभी मिलकर ही आया हू, वहा से सीधी कार्यवाही होने ही वाली है।

श्री प्रभुदयालजी डाबडीवाल हमारे साथ थे। उन दिनो तेरापथ समाज मे राजनैतिक सम्पर्क उनका भी काफी रूप मे था। वे हमे मध्य प्रदेश के कुछ ससद सदस्यो व केन्द्रीय मत्रियो से भी मिलाने ले गये। सबसे यथोचित बातें हुईं। सभी का रुख सहयोगात्मक बना। अन्त मे हम राजस्थान भवन मुख्यमत्री श्री मोहनलाल जी सुखाडिया से मिलने आ गये। सुखाडियाजी चिर-परिचित व्यक्ति थे ही। सभी के साथ बैठकर उन्होने बडे प्रेम से बातें की। मैंने उन्हे मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री श्री शुक्ल के अभिप्रायो की जानकारी दी तो उन्हे भी रज हुआ। एक मुख्यमत्री होकर इतनी गैरजिम्मेदारी की बाते! उन्होने मेरे सामने ही फोन उठाया और शुक्लजी से बात करने लगे। श्री सुखाडियाजी ने दृढता के साथ कहा—"शुक्लजी! आप यह न समझें, आचार्य तुलसी केवल जैनियो के ही गुरु हैं। वे हम सबके ही गुरु हैं। आपके यहा उनका तनिक भी अपमान हुआ तो वह राजस्थान व मध्यप्रदेश के बीच का सवाल बन जायेगा।"

राजस्थान भवन स बाहर आकर हम सब लोग प्रसन्न थे कि आज अनिर्धारित स्थिति मे भी सभी सयोग बैठते गये। लोगो ने भावोद्रेक से कहा—मुनिश्री, यह तो आपके 'पग फेरे' का ही कोई अचूक प्रभाव है। अस्तु, वहा से कार्यकर्त्ता अपने-अपने स्थाना पर गये तथा हम मुनिजन नई दिल्ली मे ही श्रीमती कान्ता बहिन (गुजराती) के यहा लगभग दो बजे पहुचे। वही हमे आहार-पानी करना था।

लगभग चार बजे जब पुरानी दिल्ली की ओर चले तब मन में आया, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री का दिमाग सही नही है तो आगे भी कठिनाइया आती रहेंगी। अच्छा हो, प्रधानमत्री श्रीमती गाधी से भी उन्हे सकेत करवा दें। काग्रेस भवन मे उसी दिन सायं प्रधानमत्री और मुख्यमत्रियो की कोई बैठक होनी थी। मुनि विनय-कुमारजी ने कहा—आप कहें तो मैं रात भर काग्रेस भवन मे ही रह जाऊंगा तथा प्रधानमत्री को इस सन्दर्भ मे अवगत करा दूंगा। अस्तु, वैसा ही किया गया। हम लोग पुरानी दिल्ली मे नया बाजार आ गये। मुनि विनयकुमारजी एक-दो कार्यकर्त्ताओ के साथ काग्रेस भवन मे ही रह गये। उन दिनो कांग्रेस अध्यक्ष मध्य प्रदेश के भू० पू० मुख्यमत्री शकरदयाल शर्मा थे, जो कि परम सज्जन एव सबधित घटनाओ की पूरी जानकारी रखने वाले थे। उसी दिन प्रात हम उनसे मिल भी चुके थे।

विहार की घोषणा स्थगित

नया बाजार मे सायकाल रायपुर का फोन आ गया कि स्थानीय जिलाधीश के विशेष निवेदन पर आचार्यश्री ने विहार की घोषणा वापस ले ली है तथा चातुर्मास पर्यन्त यही विराजेंगे। यह हर्ष-सवाद विद्युत-गति से समाज मे फैल गया और सर्वत्र हर्ष की लहर दौड गई। हम भी अपने आपको कृत-कृत्य अनुभव करने लगे। एक ही सपाटे मे सम्बन्धित सभी लोगो से बात हो जाना तथा सायकाल तक परिणाम आ जाना, लोगो को आश्चर्यजनक लग रहा था।

काग्रेस भवन मे मुनि विनयकुमारजी की भी श्रीमती गाधी से उनके वहा आते ही बातें हो गई। फिर मुख्यमत्रियो की बैठक के पश्चात् एक कोने मे श्री शुक्लजी व श्रीमती गाधी को बात करते देखा गया। अगुलियो के सकेत बता रहे थे कि श्रीमती गाधी ने उन्हे काफी सतर्क कर दिया है।

संघर्ष टला नहीं

चातुर्मास मे रायपुर ही रहने का तथा सुरक्षात्मक व्यवस्था का निश्चय तो हो गया, पर, सघर्ष टला नही, प्रत्युत् और जोर खा गया। आये दिन वहा दुर्घटनाएं होने लगी। कभी तेरापथियो के घरो पर पत्थर-बाजी तो कभी तेरापथियो की दुकानो की लूट-खसोट। एक दिन अकस्मात् ही दिल्ली नगर निगम के महापौर लाला श्री हसराज गुप्ता नया बाजार आये। उन्होंने हमे एकान्त मे बताया कि आप तो इन्दिराजी से मिलकर रायपुर का प्रबन्ध करवा रहे हैं, आपको मालूम होना चाहिए, दिल्ली मे भी यही अग्नि-परीक्षा विरोधी आन्दोलन भीषण रूप से

उठाया जाने वाला है। गोस्वामी गिरधारी लालजी एव श्री प्रेमचन्द गुप्ता इसमे अगुआ हो रहे हैं। सनातन धर्म सभा एव जनसंघ का यह सयुक्त मोर्चा बन सकता है। आप यहा की स्थिति को भी सम्भालने का प्रयत्न करे। हालाकि मैं जनसघ के प्रतिनिधि के रूप मे ही महापौर हूं, पर, आप लोगो से आत्मीयता है, अत सूचित करने आ गया हू। हमारे ही लोगो ने यदि उक्त विरोधी आन्दोलन उठा लिया तो मुझे भी धर्म-सकट मे पड जाना होगा।

मैंने अगले ही दिन प्रात मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' को श्री प्रेमचन्दजी गुप्ता की ओर तथा मुनि मानमलजी को गोस्वामी गिरधारी लालजी की ओर भेज दिया। गोस्वामीजी का विरोधी वक्तव्य एक-दो दिनो पूर्व ही पत्रो मे आ चुका था और वे सनातन धर्म से सम्बन्धित सस्थाओ की बैठक बुला चुके थे। श्री प्रेमचन्दजी गुप्ता भी दिल्ली के प्रभावशाली व्यक्ति थे। मुनि महेन्द्रकुमारजी उनके घर पहुचे तो उन्होने पहले ही कह दिया, आपके आने का तात्पर्य मैं समझ गया, पर, मैं तो बहुत आगे तक बढ चुका हू, पेम्फलेट, पोस्टर आदि तैयार हो रहे है। मुनि महेन्द्र-कुमारजी 'द्वितीय' ने कहा—"आप जो भी करे, कौन रोक सकता है, पर, कम-से कम मुनिश्री नगराजजी से मिल तो ले।" यही बात गोस्वामी गिरधारीलालजी से हुई। दोनो उसी दिन मेरे से मिले। विस्तार से बाते हुई। वे रोष से भरे थे। मैने पुस्तक निर्दोष साबित करना आरम्भ किया तो वे लोग बोले—"समझने व समझाने की बात मे आप मत जाइये। हम भी आपको दस गुनी दलीले दे देगे। यदि आप चाहते है कि यह आन्दोलन दिल्ली मे खडा न हो, तो उसका आधार आपका व हमारा चिरन्तन अपनत्व ही हो सकता है। आप कह दीजिये, दिल्ली मे यह नही करना है, हम प्रतिज्ञा-बद्ध हो जायेगे कि अभी तो हम करेगे ही नही, भविष्य मे भी करेगे तो आपकी जानकारी मे लाकर ही करेगे। अस्तु, उन्हे तथारूप अनुबन्धित कर लिया गया। मैंने कहा—"आप दोनो के सिवाय अन्य लोग भी तो विरोधी अभियान खडा कर सकते हैं?" उन्होने कहा--"आप भरोसा रखिये, दिल्ली मे ऐसे अभियान हम दोनो के बिना खडे नही हो सकते।"

रायपुर की हरकते बढ रही थी। वहा के टेलीफोन सम्पर्क व डाक-सम्पर्क भी विच्छिन्न से हो चुके थे। जिस विभाग मे देखो, सभी सरकारी कर्मचारी विरोधी। तब दिल्ली और रायपुर का टेलीफोन सम्पर्क अहमदाबाद के माध्यम से चालू किया गया। वहा श्री स्वरूपचन्दजी व शुभकरणजी दूगड बराबर फोन पर रहते। दिल्ली व रायपुर का सम्पर्क बनाये रखते। थली, मारवाड, मेवाड, हरियाणा, पजाब, उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तो के लिए सूचना केन्द्र दिल्ली बन गई। सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक चौबीसो ही घण्टो फोनो की श्रृखला चालू रहती। लाइटनिंग कोलो की भी कोई गणना नही रहती। अनुभवी एव कर्मठ कार्यकर्त्ता

श्री सोहनलाल बाफणा दिन-रात फोन पर बैठे ही रहते। कुछ-कुछ दिनो मे तो भूख-नीद आदि सब हराम। दान्तुन करते-करते ही कई 'ट्रंकोल' बीच मे ही सुन लेने पड़ते। अस्तु, जनता की जिज्ञासा-तृप्ति के लिए दिल्ली से कतिपय महत्त्वपूर्ण विज्ञप्तिया भी सारे देश मे प्रसारित की गईं। सर्वसाधारण को वास्तविकता की जानकारी मुख्यतः उन्ही से मिलती रही।

मध्यप्रदेश में पुस्तक प्रतिबन्धित

ज्वलन्त घटना-क्रम के मध्य ही एक भूचाल और आ गया। मध्यप्रदेश की जनता मे उठते विद्रोह के पक्ष मे मध्यप्रदेश सरकार ने 'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक को अपने राज्य मे प्रतिबन्धित घोषित कर दिया। अगले ही दिन देश भर के हिन्दी, अंग्रेजी आदि सभी पत्रो मे बडी सुर्खियो मे समाचार छपा। साथ-साथ यह भी छपा कि पुस्तक मे हिन्दू धर्म तथा राम और सीता को दुर्भावनापूर्वक आचार्यश्री तुलसी ने लाछित किया है। उक्त समाचारो से दिल्ली की हवा बदली तथा देश भर मे एक बार आचार्य तुलसी विरोधी वातावरण बन गया। यह सब देखकर एक बार के लिए हम सब भी भौचक्के से रह गये। किस-किस को समभायं, क्या करे ?

उसी दिन मै पुन कुछ सन्तों व कार्यकर्त्ताओ के साथ नई दिल्ली की ओर चल पडा, तत्काल एक प्रेस कॉन्फ्रेंस रखने की योजना को लेकर। हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दुस्तान दैनिक आदि के सम्पादको से हम लोग मिले। कार्यकर्त्ताओ ने अन्य सभी पत्र-प्रतिनिधियो व समाचार एजेन्सियो से सम्पर्क किया। मध्यान्ह मे तीन-चार बजे का समय कॉन्फ्रेंस का रखा गया। हम लोग लगभग १ बजे अणुव्रत विहार पहुचे; आहार-पानी से निवृत्त होकर एक प्रेस वक्तव्य तैयार किया। कार्यकर्त्ता भी तत्परता से कार्य कर रहे थे। प्रेस वक्तव्य को अंग्रेजी मे अनूदित करना तथा उसकी हिन्दी, अंग्रेजी प्रतिया करना आदि सभी कार्य उन्होने यथासमय सम्पन्न कर दिये। प्रेस कॉन्फ्रेन्स काफी प्राणवान् रही। नाना प्रश्न-प्रतिप्रश्न आये। सबको यथोचित ढग से समुत्तरित किया। उन दिनो सरदार शहर के श्री नवरतन मल दुगड इण्डियन एक्सप्रेस के जनरल मैनेजर थे। उनका सहयोग बहुत ही मूल्यवान् रहा। वक्तव्य की प्रतियां लेकर वे स्वय प्रेसों में गये तथा प्रधान प्रबन्धकों व प्रधान सम्पादको से सम्पर्क किया। अस्तु, अगले ही दिन देश-भर के समाचार-पत्रो मे 'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक के पक्ष मे मेरा वक्तव्य छपा, जिसमे यह भी छपा कि मध्यप्रदेश सरकार का यह निर्णय विरोधी आन्दोलन से प्रभावित होकर ही हुआ है। न्यायालय मे मध्य प्रदेश सरकार को ही पराजित होना पड़ेगा। वातावरण

को पुन. पक्ष मे लाने की दिशा में उस दिन की कॉन्फ्रेन्स व सम्बन्धित कार्यवाही बहुत ही कारगर रही।

विरोधी कहां-कहां तक !

विरोधियो का अभियान आगे-से-आगे जोर पकड रहा था। रायपुर के विरोधी प्रतिनिधि दिल्ली मे आकर शीर्षस्थ लोगो से भी सम्पर्क करने लगे थे। सभी ससद-सदस्यों के पास डाक से भी विरोधी सामग्री पहुचाई जा रही थी। सर्व-साधारण से लेकर बहुत सारे शीर्षस्थ लोगो के मन भी भ्रान्त हो गये थे। उदाहरणार्थ, उन्ही दिनो दिल्ली के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी प० हवेलीरामजी के यहा हमारा जाना हुआ। चिर-परिचित थे। हम साधु-सन्तो की अनेक कुण्डलियो पर अपनी अरुणसंहिता से विचार कर चुके थे। आचार्यश्री तुलसी की जन्म-कुण्डली पर भी वे आचार्यश्री व हम लोगो के समक्ष अरुणसहिता का वाचन कर चुके थे, पर, उस दिन ज्यो ही हम उनके कक्ष मे गये, हमे देखते ही रोषाकुल हो गये। घण्टाभर तक वे अग्नि-परीक्षा, आचार्यश्री तुलसी, जैन धर्म, जैन मुनि आदि विषयो पर ही भर्त्सना-मूलक बोलते रहे। गालिया भी गिनी जाती तो शायद हजार से कम नही होती। अग्नि परीक्षा पुस्तक उनकी मेज पर पडी थी। कहा—"देखिये, केन्द्रीय मत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने यह मुझे पढ़कर रिपोर्ट देने हेतु दी है। मैने उनको भी इस सम्बन्ध मे यही रिपोर्ट दी है, जो अभी घण्टाभर बोल गया हू।" हम लोग बहस मे नही पडे। उठकर चले आये। कुछ ही दिनो बाद नन्दाजी के मानस की टोह ली तो वे मिलने वाले सन्तो से बोले—"हम नही जानते थे, अणुव्रत आन्दोलन चलाने वाले आचार्यश्री तुलसी हमारी ही पीठ मे इस तरह छुरा भोकेंगे।" अस्तु, अब हमे अनुभव होने लगा कि विरोध कहां-कहा तक पहुच चुका है।

मैं प्रधानमत्री होता तो ·

'अग्नि-परीक्षा' विरोधी वातावरण कितना उग्र हो गया था, उसका एक अन्य उदाहरण बने माननीय श्री मोरारजी भाई देसाई। आध्यात्मिक विचार-विनिमय हेतु हम लोग प्राय उनकी कोठी पर जाया करते थे। इस बार अग्नि-परीक्षा की ही बात चली। उन्होने कहा—"आचार्य तुलसी ने अग्नि-परीक्षा मे राम की अनेक पत्नियां बताई हैं।"

मैने कहा—"यह तो आचार्यश्री तुलसी का ही सवाल नहीं, जैन सस्कृति का ही सवाल है। सहस्राब्दियो पूर्व रचित जैन रामायणो मे सर्वत्र बहुपत्नियो का

ही उल्लेख है। वाल्मीकि रामायण में भी तो राम की अनेक स्त्रियों का संकेत मिलता है।"

श्री मोरारजी भाई भावावेश में आ गये। बोले—"गलत, बिलकुल गलत। जैन या सनातन किसी एक भी रामायण में बहु पत्नीत्व का उल्लेख हो तो मैं आप से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हू।"

मैं बोला—"इस विषय पर शास्त्रार्थ मुझे स्वीकार है। कोई भी दिन इसके लिए निश्चित कर लीजिये।" एक सप्ताह बाद का दिन शास्त्रार्थ के लिए निश्चित हुआ। श्री मोरारजी भाई ने यह भी कहा—"आपके पास जो भी शास्त्रीय प्रमाण हो, वे पहले ही मेरे पास भेज सकते है, ताकि उन पर अपेक्षित चिन्तन कर सकू।"

वार्तालाप की समाप्ति पर जब हम उठने लगे तो मोरारजी भाई फिर बोले—"आचार्य तुलसी ने राम की अनेक पत्निया लिखकर तो भारतीय सस्कृति के 'एक पत्नी' के आदर्श को ही झुठला दिया है। यह तो असह्य घटना है। मैं अभी प्रधानमंत्री होता तो मध्यप्रदेश मे ही नही, पूरे देश मे ही इस पुस्तक को प्रतिबन्धित करवा देता।" हम लोग खिन्नमना उनकी कोठी से बाहर आये। यही बाते करते हुए कि कितना जहर फैला दिया है विरोधियो ने। जिनसे हम सहयोग की अपेक्षा रखते हैं, वे भी सब भ्रान्त हो चले हैं।

शास्त्रार्थ की बात हम निश्चित करके चले ही थे। मैं नही चाहता था, आमने-सामने बहस-बाजी हो और जय-पराजय का प्रश्न बने। सम्बन्धित साहित्य व प्रमाण चिह्नित होकर उनके पास चले जाये, यही उपयुक्त समझा। कतिपय जैन रामायण तथा कामिल बुलके की रामकथा आदि ग्रन्थ श्री सोहनलाल बाफना उन्हे दे आये, इस निवेदन के साथ कि आप अवलोकन करले। शास्त्रार्थ की निर्धारित तिथि पर हम लोग उनकी कोठी पर गये। सदैव की तरह विचार-विनिमय हेतु बैठे। श्री मोरारजी भाई गम्भीर थे। वार्तालाप का आरम्भ करते ही सम्बन्धित साहित्य की ओर संकेत करते हुए बोले—"मेरी तो धारणा ही नही थी कि रामकथा के भी इतने रूप व इतने कथा-भेद प्रचलित हैं।"

मैंने कहा—"हैं तो और भी अधिक, पर, इतना साहित्य एक ही जगह कहा उपलब्ध होता है?" मैं मन मे समझ गया कि श्री मोरारजी भाई को सम्बन्धित विषय पर सन्तोष हो गया है। अब इस चर्चा को लम्बाने मे कोई लाभ नही है। मैंने वार्तालाप का विषय बदल दिया और सदा की तरह नाना समसामयिक विषयो पर वार्तालाप कर पुन: नया बाजार आ गये। मन को सतोष मिला कि यह भी एक बडी समस्या थी, जो हल हो गई।

इस सन्दर्भ मे महत्त्व की बात यह रही कि रायपुर-काड के सम्बन्ध मे

जब हमने प्रधानमंत्री इन्दिरा गाधी का सहयोग लेना आरम्भ किया, तब श्री मोरारजी भाई देसाई, श्री अटल बिहारी वाजपेयी आदि अन्य दलों से सम्बन्धित व्यक्तियो के पास भी रायपुर का घटना-प्रसग रख दिया था तथा इन्दिराजी से सहयोग लेने की बात पर उनकी सहमति ले ली थी। मैंने उस समय ही उन लोगो से कह दिया था कि रायपुर की घटनाए रग लेती जा रही हैं, पर, वे चलते-चलते राजनीति का रूप न ले ले। यह न हो जाये कि श्रीमती इन्दिरा गाधी सहयोग मे खडी हो जायें और आप हमारे विरोध मे खडे हो जाये। अस्तु, यह बात आदि से अन्त तक सभी नेताओ ने निभाई। व्यक्तिगत वार्तालाप मे चाहे कुछ लोग असन्तोष व्यक्त करते रहे, पर, राजनेताओ ने अग्नि-परीक्षा पुस्तक या रायपुर-काण्ड के विरोध मे कोई प्रेस वक्तव्य नही दिया, न ही उन्होने लोकसभा मे इसे उछाला।

पण्डाल भी भस्मसात

हम लोगो के सामने अब दो काम मुख्य थे। रायपुर के लिए सुरक्षात्मक कार्यवाही करते रहना तथा दिल्ली के मच से देश के गणमान्य व्यक्तियो से वक्तव्य दिलवाते रहना। सुरक्षात्मक कार्यवाही का प्रश्न भी बहुत टेढा बनता जा रहा था। सुरक्षा मे रखी गई मध्यप्रदेश की पुलिस भी अन्त करण से विरोध मे ही थी। कभी भी खतरा हो सकता था। वह आक्रमणकारियो को आगे बढने का मौका भी दे सकती थी। घटनाए नित नई हो ही रही थी। कभी तेरापथियो के घर लूटने की तो कभी उनकी दुकानो मे आग लगा देने की, कभी कही पत्थर-बाजी की। इस स्थिति मे प्रधानमत्री श्रीमती गाधी से कई बार मुझे स्वय मिलना पडता था तथा कई बार मुनि मानमलजी मिल आते थे। पण्डाल जलने की घटना जिस दिन हुई उसी दिन श्री मोतीलालजी धाडीवाल का लाइटनिंग कोल दिल्ली आया कि पण्डाल धू-धू कर जल रहा है, यहा की सरकारी व्यवस्था का कोई भरोसा नही है। उन लोगो का इरादा तो यात्रियो सहित हम सबको भस्म कर देने का ही हो सकता है। तत्र विराजित मुनिश्री नगराजजी से कहे, वे केन्द्रीय सरकार से ही सुरक्षा की व्यवस्था कराये। उस समय दिन के लगभग चार बजे थे। आहार, पानी, पचमी, प्रतिलेखन आदि का समय हो चला था। पर, वे समाचार घबराहट पैदा करने वाले थे। सूर्यास्त होने मे थोडा ही समय शेष था। हम लोग चिन्ता मे थे, अब करे भी तो क्या करे? इतने आकस्मिक रूप से प्रधानमत्री से मिल पाना शक्य नही है। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' उस वर्षावास मे अस्वस्थ चल रहे थे। उन दिनो कुछ स्वस्थ हुए ही थे। उन्होने कहा—एक-दो कार्यकर्त्ताओ को लेकर मैं नई दिल्ली जाता हू। रात को भी शायद मुझे वही कही रह जाना पड़ेगा।

नया बाजार से सचिवालय व राष्ट्रपति भवन चार-पाच माइल से तो कम है ही नहीं। मुनि महेन्द्रकुमारजी दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ बिना सायकालीन आहार किये ही तत्काल चल पड़े। केन्द्रीय सचिवालय के गृह मन्त्रालय मे पहुचे। मन्त्रियो मे वहां कोई नही मिला, पर, संयोग से सचिव मिल गये। सारी स्थिति की जानकारी लेकर सचिव ने मध्य प्रदेश के लिए फोन पर फोन चालू कर दिये। मुख्यमन्त्री, मुख्य सचिव और न जाने कितने लोगो को कड़ाई के साथ कहा—मध्य प्रदेश सरकार सुरक्षा की व्यवस्था नही कर पा रही है तो केन्द्रीय सरकार से आवेदन क्यो नही करती ? इस कार्यवाही से प्रभावित होकर मध्य प्रदेश सरकार ने तत्काल एक विकल्प निकाला—जो स्थानीय पुलिस पहले से सुरक्षा मे थी, उसको बदलकर अन्य किसी जिले की या प्रान्त की पुलिस को बुलाया और नये सिरे से सुरक्षा-व्यवस्था को सुदृढ कर दिया। मुनि महेन्द्रकुमारजी देर रात तक सचिवालय मे ही रहे। प्रतिक्रमण आदि भी वही किये। तत्पश्चात् सचिवालय के ही निकट किसी कोठी मे स्थानान्तर किया एव रात भर वही रहे।

प्रकाशक भी भयभीत

'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक आत्माराम एण्ड सन्स से धवल समारोह के उपलक्ष मे प्रकाशित हुई थी। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का उस मे विभिन्न रामायणो के कथा-भेद का दिग्दर्शन कराने वाला शोधपूर्ण सम्पादकीय था। आत्माराम एण्ड सन्स के सचालक श्री रामलाल पुरी नया बाजार आये। उन्होने कहा—"मुझे धमकिया मिल रही हैं कि रायपुर मे जिस प्रकार अग्नि परीक्षा-काण्ड हो रहा है, आपके यहा भी वैसा ही होने वाला है, क्योकि आप उसके प्रकाशक हैं। लोग ग्राहक बनकर भी बहुत आते हैं। मैं तो यही कह रहा हू, पुस्तक उपलब्ध नही है, पर, यदि कभी भीड आ गई और प्रवेश कर गई तो अग्नि-काण्ड होकर ही रहेगा। मेरे पास पाच सौ-छः सौ पुस्तकें अब भी विद्यमान है। उन्होने यह भी कहा—"मेरा तो सारा कारोबार ही कागज का है, आग लग जाने से बचेगा भी क्या ? रायपुर मे तो सुरक्षा के लिए प्रधानमत्री तक सचेष्ट हो रहे हैं, पर, मेरे प्रकाशन सस्थान को बचाये रखने की जिम्मेदारी किसकी है ?" समाज के अग्रणी लोग वार्तालाप मे उपस्थित थे। उन्होने कहा—"आपके पास जितनी पुस्तकें हैं, उन्हे हमारी समाज खरीद लेती है, आप निश्चिन्त हो जाइये। सबको बोलते रहिये, मेरे पास पुस्तके नही है, कोई चाहे तो बाहर-भीतर तलाशी ले सकता है।" अगले दिन वहा से पुस्तकें मगवा ली गईं। प्रश्न उठा, इन्हे रखें कहा ? नया बाजार मे सन्तो के

ठिकाने रखेंगे तो खतरा है ही। रायपुर की तरह यहा भी कभी हमले हो सकते हैं। यह बात भी सही थी; क्योकि विरोधी लोग भी जानते थे कि दिल्ली मे इनका केन्द्र नया बाजार—श्री वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन ही है। ठिकाने के दोनों ओर जीनो पर नेपाली जवानो की ड्यूटी लगा दी गई थी। माननीय श्री सुशील मुनिजी ने भी कहलाया था—मुनिश्री नगराजजी व अन्य सन्त बाहर आना-जाना बन्द रखें तथा जहा हैं, वहा भी सुरक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था रखे। वैसे बीच-बीच मे अज्ञात व्यक्तियो की धमकियो के फोन भी आते थे। एक बार तो स्पष्ट-स्पष्ट फोन पर कहा गया—"मुनि नगराजजी को जो जान का खतरा है। हम लोग बदला लेकर रहेगे।" इस स्थिति मे पुस्तको को प्रच्छन्न रूप से ही लाया गया तथा प्रच्छन्न रूप मे ही श्रावको के निजी भवनो मे सुरक्षित रखवाया गया।

विचार परिषद् एव वक्तव्य

अणुव्रत विचार परिषदो का क्रम विशेष रूप से चालू कर दिया गया। प्रति सप्ताह साहित्यकार, पत्रकार, नेता, मत्री आदि उनमे भाग लेते व अग्नि-परीक्षा पुस्तक के पक्ष मे अपने विचार रखते। दैनिक पत्र भी उन्हे महत्त्व देकर प्रकाशित करते। दिल्ली के पत्रो का प्रभाव प्रान्तीय राजधानियो व सम्बन्धित दैनिक पत्रो पर अच्छा पडने लगा। वे भी पक्ष की धारा मे क्रमश. आगे आने लगे। हिन्दी व अग्रेजी पत्रो के मुख्य सम्पादको व सम्बन्धित अन्य व्यक्तियो से मुनि महेन्द्रकुमार जी 'द्वितीय' कुशलतापूर्वक सम्पर्क रख रहे थे।

उक्त विचार परिषदो मे भाग लेने वालो मे लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण, गुजरात के तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, मद्रास के राज्यपाल श्री के०के० शाह, केन्द्रीय मत्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा, श्री के०सी० पत के नाम समुल्लेखनीय हैं।

व्यक्तिश विचार-विनिमय करके प्रमुख-प्रमुख लोगो के समर्थनात्मक वक्तव्य दिलाने का क्रम भी चालू कर दिया गया था। श्री प्रभुदयालजी डाबडीवाल ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी को ठिकाने दर्शन करवाये। उन्हे सारी स्थिति समझाई गई तथा अग्नि-परीक्षा पुस्तक भी दी गई। उन्होने कहा कि पुस्तक पढ़कर वक्तव्य दे दूगा। अस्तु, वैसा ही किया। अपने वक्तव्य मे उन्होने साफ-साफ कहा था—"मैंने अग्नि-परीक्षा पुस्तक आदि से अन्त तक पढी है। उसमे सीता के चरित्र पर कोई लाच्छन नही है, प्रत्युत् सीता को शील की देवी के रूप मे वहां प्रस्तुत किया गया है।" इस वक्तव्य का भी देश भर मे व्यापक प्रभाव पडा। राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के सर सघ सचालक गुरु गोलवलकरजी से हम लोग मिले। उन्होने

भी समर्थनात्मक बात कहीं ।

करपात्रीजी एवं शंकराचार्यजी

चालू प्रकरण के समर्थन में हम लोगों ने एक और नया आयाम खोला। स्वामी करपात्रीजी से हम लोग मिले। वस्तुस्थिति की जानकारी करवाई। उन्होंने भी कहा—"आचार्य तुलसी ने इतना स्पष्टीकरण दे दिया है, वह काफी है। अब व्यर्थ का झगड़ा चलाने मे कोई लाभ नही है।" इस आशय का एक प्रेस वक्तव्य भी उनसे दिलवा दिया गया। उन्होने वार्तालाप के सन्दर्भ मे अपनी रायपुर जाने की सम्भावना व्यक्त की। इस स्थिति मे मुझे कहना ही था कि आप वहा दोनो पक्षो मे ताल-मेल बिठाकर चालू प्रकरण को समाप्त करवा दें तो अच्छा रहे।

स्वामी करपात्रीजी का समर्थनात्मक वक्तव्य ज्योंही पत्र-पत्रिकाओ मे छपा, रायपुर के उ विरोधी भौंचक्के से रह गये। तत्काल उन्होने अपने प्रतिनिधि दिल्ली भेजे। आपने ऐसा वक्तव्य क्यो दे दिया ? स्पष्टीकरण मे दूसरा वक्तव्य दे। ये सब बातें सुनकर स्वामी करपात्रीजी ने कहा—अभी तो मैं इस वक्तव्य के बदले दूसरा वक्तव्य कुछ भी नही दूगा। रायपुर आऊगा, तब सारी स्थिति का अध्ययन करूगा ही।

उन्ही दिनो पुरी के जगद्गुरु शकराचार्य श्री निरजनदेवजी तीर्थ से भी हम लोगो ने विचार-विनिमय किया। जानकारी पा लेने के पश्चात् उनका भी रुख सहयोगात्मक बना। मैने कहा—"आप वहा पहुच कर सनातन समाज को शान्त कर सके तो कैसा रहे ?" इस पर उन्होने कहा—"ऐसा मैं कर सकता हू। अपेक्षित स्पष्टीकरण उन्होने दे ही दिया है, फिर झगडा किस बात का ?" मैने कहा—"आप द्वारा दिये गये शान्ति-सन्देश को भी वहा का सनातन समाज न माने तो ?" इस पर उग्रता भरे स्वरो मे उन्होने कहा—"हिन्दुस्तान मे ऐसा किस का हौसला है, जो जगत्गुरु के कह देने के पश्चात् भी अपनी बात पर अडा रहे। यदि रायपुर मे ऐसा हुआ तो मै स्वय आमरण अनशन करके बैठ जाऊगा। देखूगा कौन फिर आन्दोलन चलाये रखता है ?"

उनकी इतनी दृढता देखकर मैने उनके रायपुर पहुच पाने की सम्भावना पूछी। उन्होने कहा—मै अमुक तिथि को बिहार मे हू। वहा से आपका प्रतिनिधि मुझे रायपुर के लिए ले जा सकता है। श्री हरभजनलाल शास्त्री उस समय हमारे साथ थे। वे पहले आर०एस०एस० के भी कार्यकर्त्ता रह चुके थे। तब वे अ० भा० अणुव्रत समिति मे काम पर थे। वे सारी स्थिति समझकर रायपुर के लिए रवाना हो गये। मेरा कहना था—आचार्यश्री व वहा के मुख्य लोगो से परामर्श करके ही जगद्गुरु को रायपुर लाना उचित रहेगा।

संघर्ष समाप्ति का सयोग अभी निकट नही आया था। हमारा यह प्रयत्न भी नितान्त निष्फल गया। रायपुर वाले सभी लोगो का यही चिन्तन रहा कि स्वामी करपात्रीजी व जगद्गुरु शकराचार्य का रायपुर आना अपने पक्ष मे अच्छा नही रहेगा। अस्तु, मेरा चिन्तन है, उक्त दोनो महानुभावो को रायपुर मे ढंग से टेकल किया जाता तो उनका आना बहुत कारगर हो सकता था। पर, दोष किसी का नही, सयोग ही वैसा चल रहा था। जगद्गुरु शकराचार्य तो इस बात से नाराज हो गये कि दिल्ली मे मेरे साथ बात करके भी बिहार मे मुझे कोई लेने के लिए उनका प्रतिनिधि नही आया। स्वामी करपात्रीजी इससे उल्टे पड गये कि उनके रायपुर आगमन पर तेरापथ समाज के अग्रणी न तो स्वागतार्थ आये और न यथा-समय बात करने के लिए। उन्होंने व्याख्यान मे भी चर्चा की कि मै तो यहा मुनि नगराजजी के कथन पर आया हूं। तब श्रीचन्दजी रामपुरिया आदि कुछ लोग उनसे मिले भी। पर, तब तक वे विरोधी लोगो से घिर गये थे। उनका मानस भी उनके पक्ष मे बदल गया था। अन्ततोगत्वा उन्होने जनता मे इतना आक्रोश भर दिया कि वे स्वय जब अन्तिम प्रवचन कर रायपुर से रवाना हुए, उनके प्रवचन-स्थल से ही जनता सामूहिक आक्रमण के लिए आचार्यश्री के प्रवास-स्थल की ओर चल पडी। आगे जाकर जनता ने देखा तो वहा सुरक्षात्मक पुलिस का बडा घेरा लगा है, यात्रियो व साधुओं तक पहुच पाना सम्भव नही है, अत बीच से ही उग्र जनता ने अपना रास्ता बदल लिया। सतियो के ठिकाने, अर्थात् 'वरलोटा' भवन पर धावा बोला। वहा भी खबर पहले पहुच गई थी, अत मुख्य द्वार बन्द थे। उन्हे तोड पाना सम्भव नही था। तब भयकर पत्थर-बाजी उस मकान पर होने लगी। खिडकियो के काच कटा-कट टूटने लगे। अस्तु, बहुत भारी हगामे के पश्चात् तथा पुलिस के हस्तक्षेप के पश्चात् क्रुद्ध भीड वहा से हटी। साध्वियो को किसी प्रकार की चोट नही आई। इस काण्ड के पश्चात् स्थिति स्पष्ट हो गई कि इस विरोधी अभियान के पीछे अब तक तो स्थानीय सन्त वैष्णवदास ही अगुवा थे तथा अब स्वामी करपात्रीजी और जगद्गुरु श्री निरजनदेव तीर्थ भी उनके समर्थन मे खडे हो गये हैं। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है, अग्नि-परीक्षा के चूरू-प्रकरण का बीजारोपण यहीं से हो चला था।

जगद्गुरु शकराचार्य व स्वामी करपात्रीजी के लिए किया गया हमारा सहयोग-प्रयत्न जहा विपरीत प्रमाणित हुआ, वहा विश्व धर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनिश्री सुशीलकुमारजी के लिए तथा अन्य समग्र जैन समाज के लिए हमारा किया गया प्रयत्न सर्वांगीण रूप से सफल रहा। सभी जैन समाजो के अग्रणी सम्बन्धित कार्यक्रमो मे भाग लेते तथा अपने-अपने समाजो के सभी ने रायपुर एव चूरू की घटनाओ पर खेद प्रस्ताव पारित किये। आचार्यश्री के साथ अपनी सहानुभूति

व्यक्त की । मुनिश्री सुशीलकुमारजी ने तो कतिपय वक्तव्य भी इस पक्ष में दिये । एक बार हमारे अनुरोध पर हम लोगों के साथ प्रधानमत्री श्रीमती गांधी से भी मिले । उन्हे भी उन्होंने साफ शब्दों में कहा—"यह प्रश्न केवल तेरापंथ समाज का नही है, अपितु, पूरे जैन समाज का है ।"

रायपुर से प्रस्थान

ज्यो-ज्यो समय बीत रहा था, रायपुर का वातावरण उत्तेजक ही बनता जा रहा था। पूरे शहर में १४४ धारा और कर्फ्यू का क्रम भी चालू हो गया था। दुर्घटनाओ को रोकने के लिए कर्फ्यू लगाये जाते थे, पर, लम्बे कर्फ्यू जनता को और उत्तेजना दे रहे थे । स्थानीय कालेज के छात्र अब तक निरपेक्ष थे, पर, अब उन्होने भी निश्चय कर लिया था कि छुट्टियो के बाद या कर्फ्यू के बाद उन्हे भी विद्रोह मे कूद पडना है। चातुर्मास सम्पन्न होने मे थोडे ही दिन अवशेष थे, पर, वे भी व्यतीत होने कठिन हो गये । चातुर्मास समाप्ति के लगभग चार दिन पूर्व ही आचार्यश्री, साधु-साध्वियो और श्रावक-श्राविकाओ के पूरे यात्री सघ को आकस्मिक रूप से पुलिस के विराट सरक्षण मे विहार कर देना पडा। मार्ग मे भी यदा-कदा दुर्घटनाए घटित होती रही। सन्त वैष्णवदासजी को भी कुछ समय के लिए गिरफ्तार कर लिया गया। मार्गवर्ती गाव मे होने वाले पथराव से आचार्यश्री तुलसी को भी आहत होना पडा। फिर भी विहार आगे-से-आगे चलता रहा। सुरक्षा की जिम्मेदारी एक प्रान्त से अगले प्रान्त की पुलिस सम्भालती रही।

'अग्नि-परीक्षा' न्यायालय मे

चातुर्मास के पश्चात् भी हम लोग दिल्ली मे ही थे। मध्य प्रदेश सरकार द्वारा अग्नि-परीक्षा पुस्तक प्रतिबन्धित हो गई थी, उसके लिए मध्यप्रदेश के ही हाईकोर्ट जबलपुर मे तेरापथ समाज की ओर से एक 'केस' खडा कर दिया गया था । श्री मोहनलालजी बाठिया उस केस सम्बन्धी प्रक्रिया के मूलभूत नियामक थे। दिल्ली समाज को उनका सदेश मिला कि वहा से ही किसी राष्ट्रीय ख्याति के बेरिस्टर को केस के लिए निश्चित कर दिया जाये। उन दिनो छागला, दफ्तरी आदि के नाम प्रथम श्रेणी मे आते थे। उन दोनो से मेरा स्वय भी वार्तालाप हुआ। एक ने कहा—"बाहर जाकर केस लडना मेरे लिए सम्भव नही है।" दूसरे ने कहा—"रामायण के सम्बन्ध मे केस लडना मेरे लिए नया विषय होता है। उसकी तैयारी मे हमे अधिक समय देना पडता है, यह मेरे लिए सम्भव नही है।" कुछ दिनो पश्चात् कलकत्ता से समाचार मिला कि भू० पू० केन्द्रीय कानून मत्री

श्री अशोक सेन नियुक्त कर लिये गये हैं। वे बगाल के हैं, पर, प्राय: दिल्ली में ही रहते हैं। उनके सोलीसीटर को रामायण सम्बन्धी सर्वांगीण प्रारूप कानूनी ढंग से बनाकर देना है। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' और मैं तीनो दत्तचित्त होकर उस कार्य मे लग गये। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने पहले से ही सम्बन्धित साहित्य व प्रमाण काफी जुटा रखे थे। कुछ ही दिनो मे एक अदालती ढग का प्रारूप तैयार हो गया। सोलीसीटर भी बहुत विख्यात थे। वे दो-तीन बार हमारे यहा आये। अपनी ओर से सारे प्रमाण उन्हे दे दिये गये। कलकत्ता मे श्री मोहनलाल जी बाठिया ने भी वैसा ही प्रारूप तैयार किया था। निर्धारित तारीख पर श्री अशोक सेन व सम्बन्धित सोलीसीटर व अन्य व्यक्ति जबलपुर पहुच गये। केस की पहली रात को ही उन्होने दत्तचित्त होकर रामायण सम्बधी आवश्यक अध्ययन कर लिया था। अगले दिन वे कोर्ट मे खड़े हुए। देश के शीर्षस्थ वकील का किसी दूसरे प्रान्त के उच्च न्यायालय मे आकर खडा होना भी एक महत्त्वपूर्ण घटना मानी गई। एक ही कार्यवाही मे सारा कार्य सम्पन्न हो गया। कुछ ही दिनो पश्चात् जब आचार्यश्री तुलसी राजस्थान की सीमा मे प्रवेश कर गये थे, न्यायालय द्वारा अग्नि-परीक्षा पुस्तक अप्रतिबन्धित का फैसला हो गया। देश भर के पत्र-पत्रिकाओ मे यह सवाद मुख्यता से प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही अग्नि-परीक्षा-प्रकरण का प्रथम अध्याय सम्पन्न हो गया।

आचार्यश्री ने राजस्थान की सीमा मे प्रवेश किया, तब मैंने अपने कतिपय सहयोगी सन्तो के साथ राजस्थान की ओर विहार किया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' आदि कतिपय सन्त दिल्ली मे ही रुके रहे। सैकडो सैकडो की सख्या मे साधु-साध्विया लाडनू पहुच गये थे। वही आचार्य श्री को पहुचना था। हम लोग भी एक दिन पूर्व लाडनू पहुच गये थे। अगले दिन लाडनू से दो-तीन माइल दूर सामने आचार्यश्री के दर्शन किये। दर्शन करने के अनन्तर ही आचार्यश्री ने मेरी दाहिनी बाह थपथपाते हुए कहा—"नगराजजी तुम दिल्ली मे थे, तभी मैं और यह समस्त सघ सकुशल लौट सका है।"

अग्नि-परीक्षा चूरू-प्रकरण

अग्नि-परीक्षा-प्रकरण को दो भागो मे विभक्त कर सकते हैं—रायपुर-प्रकरण तथा चूरू-प्रकरण। चूरू-प्रकरण क्यो पैदा हुआ, कितनी भयानक परिणति रही, यह सर्वांगीण रूप से लिख पाना तो मेरे लिए कठिन है, पर, जो कुछ मेरे सामने से गुजरा, उसे ही यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

भगवान् महावीर की पच्चीस सौवी निर्वाण जयन्ती के उद्देश्य से लगातार

तीन वर्षावास हमारे दिल्ली में हुए। प्रथम दो वर्षावासों मे मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ठा० ३ भी साथ रहे। तीसरे चातुर्मास में वे कलकत्ता मे थे। तथा हम चार मुनि दिल्ली थे।

नया संस्करण

एक दिन श्री कमलेश चतुर्वेदी का पत्र आया,—" 'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक का नया सस्करण 'आदर्श साहित्य सघ' से प्रकाशित करना चाहते हैं, पर, वह तभी सम्भव हो सकता है, जब उसके पूर्व प्रकाशक 'आत्मा राम एण्ड सन्स' सहमति प्रदान कर दे, क्योंकि पुस्तक पर सत्वाधिकार उनका ही है। आचार्य प्रवर की यही दृष्टि है कि मुनि नगराजजी इस कार्य को शीघ्र सम्पादित करवाये। हमने कई पत्र पूर्व प्रकाशक को दिये, पर, कोई उत्तर हमे नही मिला।"

प्रकाशक से प्रकाशन अधिकार लौटा लेने की बात न्यायोचित नही लगी, फिर भी आदेश का प्रश्न था, अत मुझे यह काम कर ही देना पड़ा। आत्माराम एण्ड सन्स के सचालक श्री रामलाल पुरी बहुत ही सज्जन व उदारचेता व्यक्ति थे। हम लोगों के प्रति उनका विशेष श्रद्धाभाव था। मेरे कहते ही उन्होने बात स्वीकार कर ली एव आदर्श साहित्य सघ को अपनी स्वीकृति का पत्र दे दिया। पुस्तक कुछ सशोधित व परिवर्तित होकर प्रकाशन मे भी चली गई।

उस वर्ष का आचार्यश्री का चातुर्मास चूरू के लिए घोषित हो चुका था। पुरी के जगत्गुरु शंकराचार्य श्री निरजनदेव तीर्थ ने भी अपना चातुर्मास चूरू का ही घोषित कर दिया। चातुर्मास से पहले ही उन्होने थली के विभिन्न ग्रामो मे बडी-बडी सभाए कर 'अग्नि-परीक्षा' विरोधी वातावरण बनाना प्रारम्भ कर दिया था। आचार्यश्री की ओर से यही समाधान जनता को दिया जाता रहा कि पुस्तक का नया सस्करण प्रकाशित होकर आ रहा है, जिन-जिन शब्दो के लिए आपत्तिया उठाई जा रही थी, उन्हे बदल दिया गया है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने से कुछ ही दिनो पूर्व पुस्तक प्रकाशित होकर सामने आई। दिल्ली से पुस्तके ले जाते श्री कमलेश चतुर्वेदी ने एक पुस्तक मेरे पास भी भिजवा दी थी। प्रतीकों की शुभता व अशुभता मे भी मेरी कुछ अपनी धारणाए थी। पुस्तक के मुख-पृष्ठ पर प्रज्ज्वलित अग्नि का चित्र था। मेरे मुह से सहसा निकला—यह पुस्तक तो दुबारा भी आग भडका सकती है। पुस्तक को अन्दर से देखा तो मुनि महेद्रकुमारजी 'प्रथम' का सम्पादकीय भी गायब। यह भी मुझे अनुचित लगा। इससे पुस्तक की गरिमा भी घटी। क्योकि वह सम्पादकीय शोधपूर्ण था, विभिन्न रामायणो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करता था। उठाये गये अनेक प्रश्नो का समाधान तो उससे सहज ही मिल रहा था।

विरोध का विस्तार

आचार्यश्री चूरू चातुर्मास के लिए जाते रतनगढ़ पहुचे, तब तक तो थली के प्रायः सभी गांवो मे उत्तेजना फैल चुकी थी। सरदार शहर के लोगो ने तो यहा तक आग्रह किया, चातुर्मास हमारे यहा ही कर लीजिए। तेरापथ की सघन बस्ती है। रतनगढ़ से बिहार हुआ तो पहली मजिल मे ही काफी अव्यवस्था हुई। निर्धारित स्थान नही मिला। वृक्षों के नीचे ही चार-छ घण्टे मध्याह्न के गुजारने पडे। आगे के हर गाव मे उत्तेजना भरा वातावरण मिल रहा था। पुलिस का पहरा शुरू हो गया। काम चलाऊ स्थान भी बडी कठिनता से मिल रहा था। शकराचार्यजी चूरू मे उत्तेजक भाषण कर रहे थे। गाव-गाव से लोगो की भीड वहा पहुच रही थी। सशोधित अग्नि-परीक्षा पुस्तक वितरित हुई तो उन्होने उसमे से राम की बहुपत्नी वाली बात को ही अपना मुख्य मुद्दा बना लिया। शकराचार्यजी ने उसी बात पर जनता मे इतनी गर्मी पैदा कर दी, जैसे दावानल ही फूट पडा हो।

चूरू के प्रतिष्ठित नागरिको का एक मण्डल बीच-बिचाव का जी-तोड प्रयत्न कर रहा था। प्रतिनिधि कभी शंकराचार्यजी से कभी आचार्यश्री से मिल रहे थे। पर, उससे भी उत्तेजना बढने के सिवाय और कोई परिणाम नही आ रहा था। अन्त मे आचार्यश्री और जगत्गुरु श्री शकराचार्यजी के बीच सीधा वार्तालाप भी दोनो ओर से निश्चित करवाया गया। चूरू के आस पास कही वह हुआ भी। पर, शकराचार्यजी का रुख कुछ अधिक ही तीव्र हो रहा था, अत कोई परिणाम नही आया। दिल्ली स्थित हम लोग इन घटनाओ से देर-अबेर परिचित हो रहे थे।

विस्फोट का दिन

आषाढ का महीना था। पुरानी दिल्ली के नया बाजार स्थित ठिकाने मे हम लोग आहार-पानी से निवृत्त होकर हाल मे आये थे कि श्री शिवचन्दराय डाबडीवाल का सन्देश लेकर एक व्यक्ति घबराये हुए से हमारे यहा पहुचे। वे बोले—शिवचन्दरायजी ने कहलवाया है—आप अभी नई दिल्ली स्थित हमारे आवास पर पहुच जाये। अभी-अभी चूरू से फोन आया है, चूरू मे भयकर पत्थरबाजी हो रही है। अनेक लोग आहत हो गये हैं। आचार्य श्री गाव बाहर सुराणाजी के बाल मन्दिर मे विराज रहे हैं। बाल मन्दिर को घेर लिया है। शहर मे प्रवेश नही करने दिया जा रहा है। पुलिस भी भारी सख्या मे खडी है, पर, कोई कडा एक्शन नही ले रही है। अस्तु, हम लोग यह सुनते ही अवाक् रह गये। मैं और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' तत्काल वहा से रवाना हो गये। लगभग चार मील

का रास्ता था। धूप इतनी कडी कि मानो अग्नि बरस रही हो। भोजन करके चले थे, यह भी एक परेशानी थी, पर, जैसे-तैसे हम डाबडीवालो के आवास पर पहुच गये। शिवचन्दरायजी से बाते हुई। दिल्ली मे किन-किन व्यक्तियों को सूचित किया जाये ताकि चूरू मे उचित सुरक्षात्मक कार्यवाही हो सके। धडाधड सम्बन्धित मन्त्रियों एव सचिवो को फोन करने लगे। बीच-बीच मे चूरू से भी फोन आ रहे थे, पर, एक-से-एक भयानक। कभी आया कि कुछ दुकानें लूट ली गई हैं, तो कभी आया कुछ घरो पर हमले बोल दिये गये हैं, तोड-फोड हो रही है। सायकाल तक सरदारशहर से भी श्रीस्वरूपचन्दजी दूगड का फोन आया कि चूरू मे भयकर तबाही मच रही है, न जाने सवेरे तक क्या होगा। चूरू के फोन सब काट दिये गये हैं। वहां से आपको सूचना नही मिलेगी, मैं यही से यथासम्भव सूचनाए देता रहूगा।

उक्त प्रकार की सूचनाओ से हम लोग कितने आतंकित हो रहे थे, यह सहज ही सोचा जा सकता था। गृह मन्त्रालय से हमारा सम्पर्क चालू था। वहा से मुख्य सचिव ने बताया—हमने जानकारी करली है, वहा पुलिस भारी सख्या मे है और स्थिनि पर नियन्त्रण कर लिया गया है। राजस्थान के मत्री श्री चन्दनमलजी बैद चूरू मे ही हैं। पुलिस के बडे अधिकारी वहा पहुचे हुए हैं। गृह मन्त्रालय के सचिव ने हमे यह भी कहा—आप लोग घबराइये मत। आपके पास जो समाचार आ रहे हैं, वे घबराये हुए लोगो के आ रहे हैं। अब ऐसी कोई स्थिति नही है, जा रातभर मे क्या-का-क्या हो जायेगा। गृह सचिव ने बहुत कुछ आश्वस्त किया, पर, हम लोग तो वहा की स्थिति के बारे मे सदिग्ध ही बने रहे। श्री शिवचन्दरायजी से बाते हुई कि कल प्रात ही प्रधानमत्री श्रीमती गाधी से मिल लेना चाहिए।

आश्वस्त किया

अगले दिन प्रातःकाल ही हम लोग प्रधानमत्री निवास की ओर चल पडे। श्री शिवचन्दरायजी सीधे प्रधानमत्री निवास पहुच गये थे। वहां उनका भी अच्छा सम्पर्क था। हम लोगो को अलग से कोई प्रयत्न नही करना पडा। सीधे प्रधान-मत्री कक्ष मे पहुच गये। उस दिन के समाचार-पत्रो में भी चूरू के कल की घटनाओ के समाचार जोरो से छपे थे। समाचारो की रिपोर्ट के अनुसार शकराचार्यजी के लोगो को कम दोषी एव अपने इधर के लोगों को ही अधिक दोषी लिखा गया था। श्रीमती गाधी से खुलकर बाते हुई। वे भी अखबार पढकर आई थी। हमें देखते ही बोली—‘आपके वहा तो फिर वही झगडा-झझट चालू हो गया है। यह फिर क्यो हो गया है, क्या बात है ?” मैंने सम्बन्धित जानकारी दी और बताया—“इस बार विरोधी आन्दोलन के नायक जगत्गुरु शकराचार्य हैं।” इस पर श्रीमती गांधी हस

कर बोलीं—"वे तो मेरे भी विरोध में लगे रहते हैं।" अस्तु, सुरक्षात्मक व्यवस्था की अपेक्षित बातें हुईं। श्रीमती गांधी ने हमारी बातो मे पूरी दिलचस्पी ली और हमे पूरी तरह आश्वस्त किया।

हिंसा का दौर

चूरू के अतिरिक्त थली के अन्य ग्रामों मे भी झगडे चालू हो गये। सारा तेरापथ समाज सकट मे आ गया। कही-कही तो जमकर मुठभेड हुई। बीदासर मे सबसे बडा मोर्चा लगा। हमले के समय वहा तेरापथी लोगो ने सामाजिक सुरक्षा के ध्येय से बहुत ही हौसले व बहादुरी का परिचय दिया। चोटे दोनो ही तरफ के लोगो मे आईं। सरकारी कार्यवाही मे दोनो ही तरफ के लोगो को पकड लिया गया। जमानत भी नही हुई। बहुत दिनो तक बीकानेर जेल मे रहना पडा। श्री गणेशमलजी दूगड (सरदार शहर) ने मुक्त कराने की चेष्टा मे दिन-रात एक कर दिया। उनकी कार जयपुर, चूरू, बीदासर व बीकानेर के बीच ही दौड़ती रही। लाडनू मे भी ओसवालो पर हमला बोला गया। वहा भी तेरापथी लोगो ने सशक्त मुकाबला किया। सरदारशहर मे तेरापथी समाज की ओर से अहिंसात्मक प्रयोग हुआ। उसका परिणाम भी सुन्दर रहा। विरोधी लोगो ने सशक्त जुलूस निकाला। तेरापथ समाज भी मुठभेड की तैयारी करने लगा। युवक लोगो मे आक्रोश था। पर, सरदार शहर मे श्री रेडियोजी के कारण वह बात नही चली। परिणाम केवल इकतरफी नारेबाजी व गालियो तक ही सीमित रह गया। अन्य कोई दुर्घटना वहां नही हुई।

समस्त चूरू जिले में वातावरण विषाक्त हो गया था। साधु-सतियो को गांवो मे परेशान किया जाने लगा। ओसवाल बन्धु रेल मे, बस मे जहा भी मिलते, परेशान किये जाते। उधर मे आये दिन नये-नये सम्मेलन व जुलूस के कार्यक्रम हो ही रहे थे। विरोधी लोग भरपूर सख्या मे भाग लेने वहा जाते। आचार्यश्री जैसे तैसे शहर मे सुराणो के यहा पहुच गये थे। सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस का भी पूरा प्रबन्ध चल रहा था। वित्तमत्री श्री चन्दनमलजी बैद का दिल्ली अणुव्रत समिति मे एक दिन अचानक फोन आया। श्री सोहनलाल बाफणा से उन्होने कहा—मुनिश्री से अर्ज करे कि वे प्रधानमत्री श्रीमती गाधी से व राजस्थान के मुख्यमत्री श्री बरकत-उल्ला जी को भी यहां के सहयोग के लिए कहलवा दे, क्योकि उनका मनोभाव समझे बिना यहा पत्ता भी नही हिलता। श्री बरकतउल्ला जी अभी एक-दो दिन दिल्ली मे ही हैं। अस्तु, हम लोगो को तत्काल ही ऐसी व्यवस्था करवानी पडी। श्रीमती गांधी ने स्वयं मुख्यमन्त्री को कह दिया—"आचार्य तुलसी और जैन समाज

की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखें।" मुख्यमन्त्री से मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' भी मिल लिये, यह जानने के लिए कि प्रधानमन्त्री से उनकी बात हो गई है न। मुख्य-मन्त्री ने कहा—"मुझे प्रधानमन्त्री ने सब कुछ कह दिया है, फिर भी आप बीच-बीच मे हमें उनसे कहलाते रहे। हम बहुत काम करेंगे।"

पुस्तक वापस

'अग्नि-परीक्षा' पुस्तक वापिस ली जाये या नही, यह प्रश्न भी तेरापथ समाज मे ज्वार पर था। अधिकाश जनता उबल पडी थी कि आचार्यश्री को अपनी इस पुस्तक का क्या मोह है कि सारे समाज को ज्वालामुखी मे झोक रहे हैं। कुछ लोगो का यह भी मन्तव्य था कि पुस्तक को वापिस लेने से हमारी शान और प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा। अन्ततोगत्वा यह निर्णय रहा, श्री जयप्रकाश-नारायण को चूरू बुलाकर उनके सामने पुस्तक वापिस ले ली जाये। दिल्ली में श्री प्रभुदयालजी डाबडीवाल के पास यह सकेत भी आ गया। वे प्रारम्भ से इसी पक्ष मे थे। उन्होने बडी तत्परता से काम किया। दो-तीन दिन मे श्री जयप्रकाशनारायण, अन्य कुछ नेता व पत्रकार आदि करीब बीस आदमियो को साथ लेकर वे रेल से चूरू पहुच गये। अपेक्षित विचार-विनिमय के पश्चात् प्रशस्त भूमिका बनाकर आचार्यश्री ने पुस्तक को वापिस लेना घोषित कर दिया। समागत सभी नेताओ ने उसे एक अहिंसात्मक प्रयोग के रूप मे समर्थन दिया एव आचार्यश्री के क्षमाभाव की सराहना की। आम जनता मे तो सभी तरह की प्रति-क्रियाए हुआ ही करती हैं।

—०—

: ७ :

भगवान् महावीर की २५००वीं निर्वाण जयन्ती : परिकल्पना और परिणति

प्रथम आह्वान

सन् १९६३ की बात है, वर्षावास राजनगर मे होना था। वर्षावास से पूर्व हम लोग उदयपुर मे थे। 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' ग्रन्थ के लेखन का आरम्भ-काल था। काल-गणना-प्रसग चल रहा था। मेरे परम सहयोगी मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' से चर्चा चली—महावश की काल-गणना के अनुसार भगवान् बुद्ध की २५००वी निर्वाण जयन्ती मनाई जा चुकी है, हालाकि उक्त काल-गणना ऐतिहासिक दृष्टि से अप्रमाणिक है, फिर भी सारे बोध जगत् ने एकमत होकर इसे मनाया और सारे विश्व का ध्यान भगवान् बुद्ध की ओर आकृष्ट किया। भगवान् महावीर की काल-गणना सब तरह से निरापद है। श्वेताम्बर दिगम्बर आदि जैनो मे तथा इतिहासकारो मे कोई पारस्परिक मतभेद नही है। अबसे लगभग ग्यारह वर्ष बाद भगवान् महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती आती है, अभी तो काफी समय है। जैन समाज का ध्यान अभी से इस ओर आकृष्ट किया जाये तो यथासमय कोई अभूतपूर्व निष्पत्ति हो सकती है।

वार्तालाप के अगले ही दिन मैंने एक लेख लिखा, जिसमे भगवान् बुद्ध के के अनुरूप भगवान् महावीर की निर्वाण जयन्ती मनाने का आह्वान था। यह किस तरह फलित हो सकता है, उसका भी प्रारूप किया गया था। सयुक्त राष्ट्र सघ के आधार पर जैन समाज मे भी कोई अखिल भारतीय स्तर का सगठन हो। उसकी रूपरेखा भी लिखी गई थी। वह लेख तेरापथी महासभा, कलकत्ता से प्रकाशित 'जैन भारती' मे प्रकाशित हुआ। पच्चीस सौ वीं निर्वाण जयन्ती के सम्बन्ध मे यह प्रथम आह्वान था; अत अप्रत्याशित रूप से जैन समाज का ध्यान इस ओर

आकृष्ट हुआ। परिणामत जैन समाज की लगभग सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ ने जैन भारती से साभार उद्धृत कर यह लेख प्रकाशित किया।

सन् १९६४ का हमारा चातुर्मास आचार्यश्री तुलसी के साथ बीकानेर मे था। आचार्यश्री ने भी प्रस्तावित विषय को बल दिया। एक अपील आचार्यश्री के नाम से समस्त जैनाचार्यों, जैन सस्थाओ व जैन समाज के वरिष्ठ प्रतिनिधियो को भेजी गई। इससे वातावरण मे और सघनता आ गई, पर, समस्त जैन आचार्यों एव जैन समाज का सम्मेलन कहा हो, कौन बुलाये, यह एक अनुत्तरित प्रश्न था।

कार्यारम्भ

सर्वप्रथम दो स्थानो से सम्बन्धित कार्य उठाया गया। विश्व-धर्म-सम्मेलन के प्रेरक मान्यवर श्री सुशीलमुनिजी भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली मे थे। उन्होने प्रभावशाली ढग से काम को उठाया। तत्कालीन प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी को सहमत किया एव एक कमेटी गठित की, जिसमे प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी अध्यक्ष एव श्री सुशील मुनिजी निर्देशक थे। काम काफी द्रुत गति से आगे बढ़ने लगा। इधर भारत जैन महामण्डल की ओर से बम्बई मे चारो जैन समाजो की एक समिति गठित हुई, जिसके सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री कस्तूरभाई लालभाई अध्यक्ष, विख्यात सोलीसीटर श्री चिमनभाई चकूभाई शाह महामत्री तथा मह-मत्री श्री ऋषभदासजी राका थे। उस कमेटी मे साहित्य-प्रकाशन-सम्बन्धी कुछ योजनाए बनाई, पर, समारोह राष्ट्रीय स्तर पर भी मनाया जा सकता है, यह परिकल्पना उस समय वहा नही थी। राजधानी मे जब प्रधानमत्री एव श्री सुशील मुनिजी के सान्निध्य मे एक कार्यक्रम हुआ और देशभर के पत्रो मे उसकी चर्चाए आई, तब बम्बई कमेटी वालो का ध्यान इस ओर गया। सन् १९६९ का हमारा वह चतुर्मास बम्बई मे था। 'डी० लिट्०' की उपाधि के पश्चात् वहा जैन समाज के सभी अग्रणी लोगो से मेरा सीधा सम्बन्ध रहने लगा था। श्री कस्तूरभाई लालभाई भी बीच-बीच मे विचार-विनिमय हेतु आया करते थे। वहा उस समय जो घटित हो रहा था, मैं तटस्थ भाव से देख ही रहा था। बम्बई निर्वाण-जयन्ती समिति के सदस्यो मे चिन्ता उठी और उन्हे अपनी समस्या का समाधान पाने का एक रास्ता भी मिल गया। प्रधानमत्री श्रीमती गाधी का सहसा बम्बई व अहमदाबाद आगमन हुआ। श्रीकस्तूरभाई ने बात-चीत का समय मांगा और वह उन्हे तत्काल मिल गया। श्री कस्तूरभाई ने प्रधानमत्री को बताया कि दिल्ली मे जो समिति गठित हुई है, उसमे समस्त जैनो का प्रतिनिधित्व नही है। एक ही मुनिजी का सान्निध्य उसे मिला है। आचार्यों का तो उसमें स्थान है ही नही। आचार्यों का

सान्निध्य हुए बिना पूरे जैन समाज का प्रतिनिधित्व उसमे नही आयेगा।

श्रीमती गाधी ने कहा—"मैं जैन समाज की व्यवस्था से अधिक परिचित नही हू, समाज मे मुनियो का क्या स्थान है एव आचार्यों का क्या स्थान हैं।" कस्तूरभाई ने सारी व्यवस्था समझाई। इन्दिराजी सन्दिग्धता मे पड गई। हालाकि मेरे दृष्टिकोण से श्री कस्तूरभाई यह कहते तो अधिक सगत होता कि निर्वाण जयन्ती का काम दिल्ली और बम्बई दोनो ही स्थानो से आरम्भ हो गया है। उन दोनो मे तालमेल बैठाकर ही आगे बढें। पर, खैर, जो उन्हे उचित लगा, उन्होने कहा। दिल्ली मे चल रहा कार्य शिथिल पड़ गया। इन्दिराजी की सक्रियता नही के बराबर रह गई। एक भारी-भरकम गतिरोध आ गया। बम्बई कमेटी साहित्य-निर्माण की दिशा मे कुछ सगीतिया आयोजित करती रही। पर, इस सबका परिणाम कोई चन्द दिनो मे सामने आने वाला नही था।

दिल्ली की ओर

इसी बीच एक नया उन्मेष और आया। आचार्यश्री तुलसी उन दिनो दक्षिण भारत की यात्रा पर थे। मद्रास, बेंगलोर, हैदराबाद आदि मे विहार कर रहे थे। उनका आशीर्वाद बम्बई निर्वाण समिति को था, पर, उसमे व्यक्तिगत रूप से कुछ भी प्रभावी नही हो रहे थे। श्री सुशील मुनिजी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर काम को उठा लेने पर तेरापथ समाज मे भी एक चर्चा का विषय बन गया था। सभी लोगो मे चर्चा रही, हमारे आचार्यश्री व हमारा तेरापथ समाज इस कार्य मे पिछड रहा है। तेरापथ समाज मे भी यह चर्चा भरपूर रही, मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' इस अवधि मे दिल्ली मे नही रखे गये, इसी का यह परिणाम है। मुझे याद है, अनेकानेक समाज मे गणमान्य लोगो ने अपनी प्रतिक्रियाए आचार्यश्री तक पहुचाई। स्वय उनके लिए भी तो वह एक गहरा चिन्तनीय विषय बन रहा था। मर्यादा-महोत्सव हैदराबाद मे था। श्री शुभकरण जी दशानी कलकत्ता से जयपुर पहुचे। वहा मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' से आवश्यक विचार-विनिमय किया। वसन्त पचमी के दिन बम्बई मे मेरे से सम्बन्धित चर्चाए की। उसी दिन वे हैदराबाद चले गये। माघ शुक्ला सप्तमी के सायकाल ही तार व फोन पहुचे—मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी का आगामी चातुर्मास दिल्ली के लिए घोषित। दिल्ली के लिए यह निर्णय सबको अप्रत्याशित ही लगा, क्योकि उस वर्ष का दिल्ली के लिए मुनिश्री नथमलजी का चातुर्मास निश्चितप्राय हो चुका था।

सुन्दर, पर, शक्य नहीं

दिल्ली का निर्णय आते ही मेरे मन मे एक ओर उत्साह आया तो एक ओर भार भी आया। उत्साह इसलिए कि भगवान् महावीर की पच्चीससौवी निर्वाण जयन्ती के प्रसग से कुछ कार्य करने का मौका मिला। मन पर भार इसलिए आया कि इस सम्बन्ध मे दो सगठन तो पहले ही बन गये हैं। एक बम्बई समिति का तथा एक श्री सुशील मुनिजी के निर्देशन में। तीसरा कोई स्वतन्त्र उपक्रम मेरे द्वारा हो तो वह भी हास्यास्पद होगा। दोनो मे से किसी एक का साथ दिया जाये, यह भी सभव नही था, क्योकि दोनों ही ओर का प्रेम और सौहार्द मेरे लिए समान था। इसी आलोडन-विलोडन से निष्कर्ष निकला—दोनो के बीच की कडी बनाकर काम किया जाये। ऐसा होने से जैन समाज का सार्वभौम प्रतिनिधित्व बन जायेगा। बम्बई मे ही मैंने अपनी रूपरेखा बम्बई समिति के अग्रणी श्री कस्तूरभाई लालभाई, शाहू श्री श्रेयासप्रसादजी, श्री चिमनभाई चकूभाई शाह तथा श्री ऋषभदासजी राका आदि के सम्मुख रख दी। मैंने कहा—समुचित यह होगा, प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय समिति (National Committee) का गठन हो। उसमे चारों जैन समाजो के समान प्रतिनिधि हो तथा चारो परम्पराओ के प्रतीक स्वरूप चार आचार्यों एव चार मुनियो का एक पारमर्शक मण्डल बने। श्री कस्तूरभाई लालभाई ने कहा—योजना तो बहुत सुन्दर है, पर, इस रूप मे क्रियान्वित हो पाना असम्भव लगता है। मैंने कहा—आप अपने मूर्तिपूजक समाज के किसी एक आचार्य विशेष का नाम हमे सुझा दे, आगे जैसा होगा, मैं देखूगा। उन्होने कहा—मेरे पास कोई आचार्य व मुनि का नाम नही है। हमारे यहा जितने आचार्य व मुनि हैं, उनमे बहुत मतभेद है। मै किसी एक का नाम कैसे दे सकता हू ?

श्री कस्तूरभाई का जवाब सुनकर मेरे मन मे कोई निराशा नही हुई। हम चारो मुनियो ने बम्बई से गुजरात, राजस्थान होते हुए दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया। सयोग की बात थी, बडौदा मे जिस दिन हम पहुचे व जहा ठहरे, उसी दिन वहा हमारे स्थान के निकट ही आचार्यवर श्री समुद्रविजयसूरि का आगमन हुआ। वे विजयवल्लभसूरि के शिष्य हैं। जैन एकता व सार्वजनिक कार्यक्रमो मे रुचि रखने वाले हैं। वे अपने साधु-सघ के साथ सायकाल लगभग ३-४ बजे ही अपने उपाश्रय मे पहुचे। मैं अपने मुनियो सहित वहा पहुचा। हम लोग बम्बई से आ रहे थे, वे लोग अहमदाबाद से बम्बई जा रहे थे। शिष्टाचार मूलक बातो के पश्चात् मैंने अपनी योजना उनके समक्ष प्रस्तुत की एव मूर्तिपूजक समाज के प्रतिनिधि के रूप मे उनके नाम की स्वीकृति मागी। मैंने यह भी कहा—"जयन्ती वर्ष मे

चारो ही प्रतिनिधि आचार्यों का चातुर्मास दिल्ली हो, यह भी मेरी कल्पना है।" श्री समुद्रविजय सूरि ने सहर्ष अपने नाम की स्वीकृति दे दी। मैंने कहा—"तब तक आप दिल्ली पहुच जायेंगे?"

उन्होंने कहा—"मैं वयोवृद्ध हू, इतनी दूर पहुचना है तो कठिन ही, पर, मेरा भरसक प्रयत्न तो यही रहेगा। मैं नही पहुंच सका और बीच मे ही काल-कवलित हो गया तो समझूंगा, मेरी मृत्यु का इससे अधिक शुभ निमित्त हो भी क्या सकता था? भगवान् महावीर को श्रद्धाञ्जलि हेतु विहार करते-करते मैं चल बसा तो अपने आपको कृत-कृत्य मानूगा। वह मेरी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।"

मैंने उनसे यह भी स्पष्ट किया कि हम लोग आपका नाम सरकार के समक्ष प्रस्तुत कर दे, उस पर आपकी समाज मे विभिन्न प्रतिक्रियाए हो सकती है। उनसे प्रभावित होकर आप अपना नाम वापस ले, यह तो नही होगा न? उन्होने कहा—आप आश्वस्त रहिये। मैं तथारूप प्रतिक्रियाओ से प्रभावित होने वाला नही हू। अस्तु, उस दिन परम सन्तोष मिला कि मैंने अपनी मजिल का एक चौथाई भाग पार कर लिया है, जो सबसे अधिक कठिन था।

हम अहमदाबाद, उदयपुर, जयपुर होते हुए दिल्ली पहुच गये। मुनि महेन्द्र-कुमारजी 'प्रथम' अपने सहयोगी सन्तो सहित राजस्थान से विहार कर पहले ही दिल्ली पहुच गये थे। मेरे दिल्ली पहुचने तक श्री कस्तूरभाई से बराबर सम्पर्क चालू था। उनका परामर्श व सुझाव पत्रो के माध्यम से हमारे पास पहुच रहा था। कुछ ही दिनो मे हमारा मिलन प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के साथ हो गया। भारत सरकार की ओर से नये सिरे से राष्ट्रीय समिति के गठन की चर्चा चली। मैने अपनी योजना का प्रारूप उनके समक्ष रख दिया। प्रधानमत्री ने उत्तर मे इतना ही कहा—"भगवान् महावीर का २५००वा समारोह मनाकर मुझे प्रसन्नता होगी, पर, आप लोगो के अपने जैन समाज मे कोई 'कन्ट्रोवर्सी' (मतभेद) नही रहनी चाहिए। इस विषय को लेकर यदि जैनो मे ही कन्ट्रोवर्सी रही तो सरकार बीच मे नही आयेगी।"

मैने कहा—"मेरा भरसक प्रयत्न रहेगा कि जो कुछ हो, वह सर्वसम्मत हो।"

श्रीमती गाधी ने कहा—"मैं यशपाल कपूर को अपने प्रतिनिधि के रूप मे आपके यहा भेज दूगी। वे आपके और मेरे बीच मे माध्यम रहेगे। काम आगे बढाइये।"

जैन समाज में समन्वय-सृजन

उस वार्तालाप का संक्षिप्त विवरण हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स आदि दैनिक पत्रो मे अगले ही दिन प्रकाशित हो गया था। जैन समाज में निर्वाण जयन्ती कार्यक्रम के पुनर्जागरण की एक नई किरण उद्‌भासित हो गई। तदनन्तर मेरा पहला कार्य मान्यवर श्री सुशील मुनिजी से मिलकर भावी ताल-मेल के विषय मे चिन्तन करना था। हम लोग पुरानी दिल्ली के नया बाजार मे थे। वे नई दिल्ली स्थित जैन भवन मे थे। तीन-चार माईल का फासला था। मैं सोचता ही था, कब चलना है? श्री सुशील मुनिजी से मेरी चिरन्तन आत्मीयता थी। उनके पास जाने-आने का क्रम बना ही रहता था। इस बार उन्होने पहल की। नई दिल्ली से नया बाजार अपने सहयोगी मुनियो के साथ आकस्मिक रूप से ही आ गये। अपने स्थान मे उन्हे पाकर हमें हर्षानुभूति हुई। लगभग दो-तीन घण्टे उनका वहा रहना हुआ। एकान्त मे बैठकर प्रस्तुत विषय पर सुविस्तृत चिन्तन किया। मैं श्री सुशील मुनिजी की उदार मनीषा से बहुत प्रभावित हुआ। उन्होने कहा—रुका हुआ काम आगे बढाना चाहिए तथा जैन समाज की प्रभावना होनी चाहिए। मैं उस समिति मे रहू या न रहू, यह कोई महत्व की बात नहीं है। मैंने उनके समक्ष राष्ट्रीय समिति की रूपरेखा रख दी। चारो समाजो के समान प्रतिनिधि हो, प्रधानमत्री श्रीमती गाधी की अध्यक्षता हो, चार आचार्यों और चार मुनियो का एक परामर्शक मण्डल रहे। मैंने यह भी उन्हे बता दिया कि चार आचार्यों व चार मुनियो के परामर्शक मण्डल मे आ जाने से पूरे जैन समाज का केन्द्रीयकरण राष्ट्रीय समिति मे हो जायेगा। चारो श्रावक समाजे भी एकता की दिशा पकड लेंगी। उन्होने कहा— मैं सब तरह से सहमत हूँ, आप काम आगे बढाइये। मैंने कहा—चार मुनियो में आप तो एक होगे ही; क्योकि सर्व प्रथम आपने ही इस कार्य को उठाया है। अन्य तीन समाजो के तीन मुनि तो मुख्यत सतुलन की दृष्टि से ही होगे।

आगे जो काम रहा, वह यही था कि चार आचार्यों एवं चार मुनियो के नाम अपनी-अपनी समाज निश्चित कर दे तथा समान प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त चारो समाजे सहर्ष स्वीकार कर लें। आचार्यों एव मुनियो के नाम निश्चित होने मे विशेष कठिनाई नही हुई। स्थानकवासी समाज से आचार्यश्री आनन्द ऋषिजी का नाम सर्वसम्मत था। मूर्तिपूजक समाज से आचार्य समुद्रविजय सूरि का नाम मैंने बडौदा मे ले ही लिया था तथा मुनिश्री यशोविजयजी का नाम बम्बई कमेटी की ओर से सुझा दिया गया। दिगम्बर समाज के प्रतिनिधि के रूप मे आचार्यश्री देशभूषणजी दिल्ली मे ही थे। निर्वाण जयन्ती कार्य मे बराबर हमे प्रोत्साहित कर रहे थे, पर, दिगम्बर समाज की अपनी परम्परा विशेष के आधार पर आचार्यश्री

धर्मसागरजी का नाम देना आवश्यक समझा गया। श्री प्रसादीलालजी पाटनी आदि दिगम्बर बन्धुओ को मैंने सुझाया—आचार्यश्री धर्मसागरजी महाराज दिल्ली मे नहीं हैं। उस अवसर पर भी दिल्ली आयें या न आयें, अत इस प्रकार का ताल-मेल बैठायें, नाम आचार्यश्री धर्मसागरजी का रहे तथा दिल्ली मे उनका प्रतिनिधित्व आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज कर। श्री पाटनीजी ने दोनो आचार्यों से वार्तालाप करके तथा शाहू शान्तिप्रसादजी आदि अपने समाज के अग्रगण्य लोगो से सम्पर्क करके वह बात ज्यो-की-त्यो बिठा दी। मुनि के रूप मे मुनिश्री विद्यानन्दजी का नाम सर्व सम्मत रहा। तेरापथ समाज मे आचार्य के रूप मे आचार्य श्री तुलसी का नाम एकमात्र था ही। मुनि के रूप मे किसका नाम रहे, यह प्रश्न काफी जटिल बन गया। एक आचार्य, एक मुनि की बात पर आचार्यश्री की तरफ से बराबर यही आता रहा कि मुनियो के नाम चारो सम्प्रदायो के दो-दो कर दिये जाये। मैं आचार्यश्री की इस कठिनाई को समझ रहा था। उनके मन मे कोई एक अन्य नाम अनिवार्य बन रहा था। पर, मेरे यहा पर रहते मेरा नाम भी अनिवार्य ही था। इसीलिए दो-दो मुनियो के नाम का सुझाव पुन -पुन आता रहा। मै यह नही चाहता था कि तनिक-सी अपनी घरेलू समस्या के लिए योजना के प्रारूप को ही बदला जाये तथा अन्य जैन सम्प्रदायो से एक-एक मुनियो का नाम और मागा जाये। मै यह भी समझता था, दो-दो मुनियो का नाम होने से हमारे यहा तो समस्या का समाधान हो सकता है, पर, अन्य सम्प्रदायो मे इसी प्रश्न पर समस्याए खडी भी हो सकती हैं।

मुनि महेन्द्रकुमारजी का नाम

छोटा-सा विषय काफी दिनो तक अनिर्णीत स्थिति मे चलता रहा। वही बात पुन -पुन दोहराई जाती रही। रायपुर चातुर्मास के पश्चात् मर्यादा-महोत्सव बीदासर का रहा। कहना चाहिए, कन्याकुमारी तक की दक्षिण यात्रा के पश्चात् यह वृहत् मर्यादा-महोत्सव था। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' आदि कतिपय सन्त कार्य-शृ खला को बनाये रखने के लिए दिल्ली मे ही रहे। हम कतिपय मुनि मर्यादा-महोत्सव पर बीदासर आए। तेरापथ समाज के दस प्रतिनिधियो के नाम व एक मुनि का नाम मुझे यहा आचार्यश्री से निश्चित करना था। मुनियो के नाम के विषय मे मैने श्री दशाणीजी को सुझाया—वर्ष भर से यह छोटा-सा नाम क्यो लटकाये रखा जा रहा है ? सरकार व जैन समाज के बीच जब एक नाम की योजना रख दी गई है, तब केवल अपने तेरापथ समाज के हित-साधन के लिए योजना को परिवर्तित करना उचित नही रहेगा। सरकार भी शायद न माने। अपना एक नाम आजकल मे निश्चित हो जाना चाहिए। आचार्यश्री की अड़चन

को समझते हुए मैं एक नवीन विकल्प प्रस्तुत करता हूँ। नाम मेरा या मुनि श्री नथमलजी का न रखकर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का रख देना चाहिए। इस नाम से मुझे भी आपत्ति नहीं है तथा दूसरों को भी नही होनी चाहिए; क्योंकि यह नाम समकक्षता से परे का है। दशाणीजी को मेरा यह सुझाव पसन्द आ गया। अगले ही दिन आचार्यश्री, मै और दशाणीजी तीनों एकान्त मे बैठे। उसी दिन महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का तथा दस नाम तेरापंथी श्रावक प्रतिनिधियो के भी निश्चित कर लिये गये। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' आदि दिल्ली मे प्रस्तुत कार्य-क्रम को गति दे ही रहे थे। उनके सानिन्ध्य मे समायोजित सेमिनार मे प्रधानमत्री श्रीमती इन्द्रा गाधी ने भाग लिया। उस प्रसग पर सम्बन्धित कार्य की प्रगति मे उन्हे अवगत करा दिया गया। तदनन्तर बीदासर मर्यादा महोत्सव सम्पन्न कर हम लोग भी पुन दिल्ली आ गये।

अवरोध कुछ सामाजिक, कुछ सरकारी

चारो जैन समाजो के समान प्रतिनिधि हो, यह कार्य कुछ जटिल पड रहा था। जटिल पडने का कारण भी वास्तविक था। श्वेताम्बरो के तीन समाज दस-दस प्रतिनिधि भेजें तथा दिगम्बर केवल दस ' श्वेताम्बरो मे भी जन-सख्या के आधार पर बडा अन्तर था। मैंने श्री सुशील मुनिजी एव दिगम्बर समाज के अग्रणी शाहू श्री शान्तिप्रसाद जी से कहा—"प्रश्न आपका वास्तविक है, पर, कम-ज्यादा के झमेले मे अडचनें बहुत आयेंगी। अपनी-अपनी सही जन-सख्या किसी के पास है नही। हम इसी प्रश्न मे उलझे रह जायेंगे और समय हाथ से निकल जायेगा।"

श्री यशपाल कपूर ने मेरे से व प्रधानमत्री से बात कर शिक्षा मत्रालय को तथारूप राष्ट्रीय समिति गठित करने का सकेत दे दिया। शिक्षा मत्री उस समय श्री सिद्धार्थ शंकर राय थे। कार्य मे विलम्ब होते देख कर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' शिक्षा मत्री से मिले। उन्होने बताया—भगवान महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती विषयक कार्य उप शिक्षा मंत्री श्री डी० पी० यादव को दे दिया है। आप इस सम्बन्ध मे उनसे ही सम्पर्क बनाये रखे। श्री डी० पी० यादव दिलचस्पी से काम कर रहे थे। उन्होंने जैन समाज के विभिन्न घटको से भी सम्पर्क साधा था तथा अपनी-अपनी समाजो के नाम भी मांगे थे। इस प्रकार नामो की विभिन्न तालिकाए शिक्षा मत्रालय मे पहुंच गईं। हमारे यहा से भी चारो समाजो की एक सर्वांगीण तालिका वहां प्रस्तुत कर दी गई। इसी बीच एक दिन एक सरकारी आदमी हमारे यहा आया, इस सन्देश के साथ कि मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' को आवश्यक विचार विनिमय हेतु शिक्षा मत्रालय भिजवा दें। मुनि महेन्द्रकुमारजी यथासमय शिक्षा मंत्रलय पहुँच गये। वहां एक अलग कक्ष मे तीन व्यक्ति

सम्मिलित हुए —मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम', श्री डी० पी० यादव और श्री यशपाल कपूर। बात-चीत चली कि निर्वाण जयन्ती विषयक चिन्तन को आज प्राथमिक रूप देना है। जैन समाज तथा अन्य भारतीय विद्वानो एव साहित्यकारों में से किस-किस को लेना है ? तीनो सकल्प-बद्ध हुए कि आज का यह प्रारूप गोप्य होगा। तीनो के बीच मे जो भी चर्चाए हों तथा जो भी प्रारूप बने, वह सब बाहर व्यक्त नही होना चाहिए । इस प्रकार एक प्रारूप तैयार हुआ। बात रही, वह प्रारूप प्रधानमत्री के समक्ष रख दिया जायेगा तथा उनकी स्वीकृति के बाद विधिवत शिक्षा मत्रालय के द्वारा घोषित कर दिया जायेगा।

समय बीतता गया। शिक्षा मत्रालय से कोई घोषणा प्रसारित नही हुई। इसी बीच प्रारूप की अनुमानित झलक के आधार पर जैन समाज के कुछ घटको मे असन्तोष-सा फैल गया। शाहू शातिप्रसादजी आदि कतिपय लोगो ने अपनी-अपनी तालिकाए अलग से श्रीमती गाधीके पास भेज दी। किसी किसी ने शिक्षा मत्रालय मे भेज दी। वह सारी सामग्री श्री यशपाल कपूर के पास जमा होती गई, प्रधानमत्री के ध्यान मे ला देने के लिए।

युद्ध के क्षणों में

इसी बीच बगला देश और पाकिस्तान का युद्ध चालू हो गया। भारत उसमे बगलादेश का पक्षधर था। युद्ध की भयानकता बढ़ती गई। रूस और अमेरिका के युद्ध मे आ जाने की सभावनाए खडी हो गईं। श्रीमती इन्दिरा गाधी की व्यस्तता का तो कहना ही क्या ? इस स्थिति मे निर्वाण जयन्ती विषयक कार्य जहा का तहा ही रुका रहा। जयन्ती का समय निकट आ रहा था, अत जैन समाज मे व्याकुलता हो चली। श्री कस्तूरभाई लालभाई ने हमे कहलवाया—"स्थितियो को देखते हुए विश्व युद्ध की सम्भावनाए बढती जा रही है। कम-से-कम राष्ट्रीय समिति की घोषणा हो जाये, ऐसा प्रयत्न आप लोग कराय।" मेरे लिए समस्या थी, ऐसे समय मे प्रधानमत्री से कहा भी जाये तो क्या कहा जाये ? आखिर मैंने सोचा, प्रधानमत्री से मिला तो अवश्य जाये। अवसर हो तो यह विषय चलाया जाये, नही तो अन्य समसामयिक बाते ही सही।

मेरे परम सहयोगी मुनि मानमलजी प्रधानमत्री भवन गये। सम्बन्धित व्यक्तियो से कहा मुनिश्री को कल ही प्रधानमत्री से मिलना है, किसी विशेष प्रयोजन से। अगले दिन प्रात नौ बजे का समय निश्चित हो गया। उस दिन का मेरा व प्रधानमत्री का मिलन ऐतिहासिक था। ढाका युद्ध का केन्द्र बिन्दु बन रहा था। अमेरिकी बेडा बगलादेश के लिए रवाना हो चुका था। उधर रूस से युद्ध-

पोत भी भारत की मदद में चल पडने की खबरें थी। प्रधानमंत्री से पहला प्रश्न मैंने यही किया—"क्या सचमुच ही अमेरिका युद्ध में आ रहा है ?"

प्रधानमत्री रोषारुण थी। अमेरिका से पूरी तरह झल्लाई हुई थीं। बोलीं—"मुनिजी ! अमेरिका का रुख सदा ही भारत के खिलाफ रहा है। उसके विरोध मे वह कुछ भी कर सकता है। अमेरिका अर्थ के बल पर सारे देशो को अपना पिछलग्गू बनाना चाहता है, पर, उसे समझना चाहिए, वह समय अब लद चुका है।" प्रधानमंत्री की आवाज बुलन्द थी। आत्म-विश्वास प्रखर था। किसी भी खतरे का सामना करने की तैयारी उनमे लग रही थी। उन्होने कहा—"आप ही बताइए न, कि आपकी अन्तर्अनुभूति क्या कह रही है ?" मैंने कहा—"मुझे तो तनिक भी नही लगता कि अमेरिका युद्ध मे आयेगा। और जो साफ-साफ लग रहा है, वह यह है कि दो-तीन दिनो मे ही ढाका अपना शस्त्र डाल देगा और विजय श्री आपके पलडे मे आ बैठेगी।" अस्तु, अन्य समसामयिक बाते भी खूब चलीं। उनका रुख प्रसन्नता मे ढलने लगा।

मैने कहा—"आपके व भारत सरकार के तो बडे-बडे काम है। पर, इस बीच मे हमारे जैन समाज का जो एक पच्चीस सौ वर्षों से आने वाला प्रसग है, वह यो ही न रह जाये।"

प्रधानमत्री ने कहा—"इन दिनो यशपाल ने मुझे कुछ बताया ही नही। मैं अभी उन्हे बुला लेती हू।"

श्री यशपाल आये तो प्रधानमत्री ने कहा—'राष्ट्रीय समिति के कार्य को अन्तिम रूप क्यो नही दे दिया जाता ? कागजात पास मे हो तो अभी आ जाओ।"

श्री यशपाल कागजात लेकर आये। हम तीनो स्वस्थ चित्त से बैठ गये। श्री यशपाल ने निर्धारित प्रारूप तथा जैन समाज की ओर से आनेवाली आपत्तिया भी प्रधानमत्री के समक्ष रख दी। प्रधानमत्री ने कहा—"अलग-अलग लोगो की सुनने से कोई निर्णय नही होगा, मुनि जी जैसा सुझाते हैं, उसे अन्तिम रूप दे दिया जाये।" उसी समय चारो समाजो के दस-दस नाम व देश के अन्य विद्वानों व चिन्तको के कतिपय नाम, सरकारी पक्ष के नाम आदि सब कुछ सम्पन्न कर लिया गया। चार आचार्यों, चार मुनियो का परामर्शक मण्डल मनोनीत कर लिया गया। प्रधानमत्री ने श्री कपूर से कहा—"इसकी परिष्कृत कॉपी पर मेरे हस्ताक्षर कराकर शीघ्र शिक्षा मंत्रालय को प्रेषित कर देना।" यह सब हो जाने पर हम लोगो ने भी अपने आप को कृत कृत्य माना। जो एक काम उठाया, वह युद्ध की भयानक स्थितियो मे भी प्रधानमत्री ने साथ बैठकर सम्पन्न करवा दिया। इससे उनके प्रति हमारे मन मे गरिमा का भाव भी बना।

अप्रत्याशित विलम्ब

प्रारूप के आधार पर मुख्य-मुख्य व्यक्तियों एव सम्बन्धित सस्थाओ को सूचित भी कर दिया गया कि राष्ट्रीय समिति को अन्तिम रूप दे दिया जा चुका है। शीघ्र ही शिक्षा मंत्रालय द्वारा विधिवत घोषणा हो जायेगी। तब तक हमें यह पता नहीं था कि सरकारी फाइलें प्रधानमत्री की सचिव-शृंखला से होती हुई शिक्षा मत्रालय के सम्बन्धित सचिवो तक गुजरने मे महीनो-महीनो का समय ले सकती हैं। हमारी सूचनाए सम्बन्धित लोगो को व्यर्थ की ही लगने लगी तथा हमे भी बहुत निराशा हुई। सम्बन्धित फाईल को आगे से आगे खिसकवाने मे भी हमे बहुत श्रम उठाना पडा। एक सचिव कहता है, फाईल हमने आगे पहुचा दी, वहा पता कीजिये। दूसरा कहता है, हमारे यहा अभी तक नही पहुची है। अन्ततोगत्वा निष्कर्ष यह निकलता है कि जिस सचिव को पहुचा देने के लिए दी, उसी की टेबल पर महीनो से पडी थी। अस्तु, इस उलझन से निपटने मे मेरे परम सहयोगी मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' को सचिवालय का सचेतक ही हो जाना पडा, तब कही बात किनारे लगी। यह सन् १९७२ का क्रम है। सन् १९७४ तो निर्वाण शताब्दी वर्ष था ही। जैन समाज मे इस अप्रत्याशित विलम्ब के लिए व्यग्रता थी ही।

एक और विक्षेप

इसी बीच दिल्ली के वातावरण मे एक और विक्षेप आ गया। मुनि महेन्द्र-कुमारजी 'प्रथम' को इसी वर्ष गगाशहर मर्यादा-महोत्सव पर बुलाया गया तथा उनका आगामी चातुर्मास आचार्य श्री तुलसी ने कलकत्ता के लिए घोषित कर दिया। इस सवाद से दिल्ली के जैन समाज मे काफी हलचल रही। चारो जैन समाजो मे उस समय सामूहिक कार्यक्रमो का दौर चल रहा था। प्रत्येक कार्यक्रम मे चारो ही जैन समाजो के आचार्य व साधु-साध्विया भाग ले रहे थे। मुनि महेन्द्रकुमारजी गगाशहर जाकर वहा से विहार कर पुन दिल्ली आये। दिल्ली मे पन्द्रह-बीस दिन रुकना हुआ। तब तक उन्हे दिल्ली रोके रखने की चर्चा जोर पकड चुकी थी। सामूहिक कार्यक्रमो मे वक्ताओ के लिए यही विषय प्रमुख हो गया था। विभिन्न सस्थाओ, विभिन्न प्रतिनिधियो की ओर से तार व पत्र आचार्यश्री तुलसी तक पहुचाये गये। उन्हे दिल्ली रोके रखने का आग्रह किया गया। दिगम्बर आचार्य श्री देषभूषणजी महाराज प्रभृति ने भी अपने सकेत आचार्यश्री तक पहुचाये। सब को लग रहा था कि उनका नाम तेरापथ समाज की ओर से परामर्शक मण्डल के लिए भी दे दिया गया है और वे ही मुनिश्री नगराज जी के साथ इस काम को आगे बढ़ाने मे लगे हुए हैं। इस स्थिति में उन्हे हटाना

पूरे जैन समाज की भी क्षति है।

मुझे उन्हें दिल्ली से कलकत्ता के लिए विदाई देनी ही थी। प्रधानमंत्री भवन में ही विदाई कार्यक्रम रहा। प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने व मैंने विदाई-सम्भाषण किये। दिल्ली मे अणुव्रत के माध्यम से जो उन्होंने नैतिक जागरण का कार्य किया एवं जैन समाज की प्रभावना मे अनूठे कार्य किये, उसके अनुरूप ही दिल्ली से उनका वह विदाई कार्यक्रम हो गया। दिल्ली से उनका प्रस्थान २८ मार्च १९७२ को हुआ। राजधानी के हिन्दी, अंग्रेजी सभी दैनिक पत्रो ने सचित्र समाचार प्रकाशित किये।

पार्लियामेण्ट में प्रथम अधिवेशन

उक्त अवधि तक राष्ट्रीय समिति की विधिवत घोषणा हो गई एवं १२ अप्रैल १९७२ को राष्ट्रीय समिति का प्रथम अधिवेशन भी घोषित हो गया। चारो जैन समाजो मे दस-दस नाम ही उस समिति मे लिये गये थे। इसकी विभिन्न प्रतिक्रियाए तो रही, पर, सबने सोचा यही कि जो हो गया, वही ठीक। अब हमे आपत्ति उठाकर रोडा नही बनना चाहिए। अनेकानेक साधुवाद भी हमे प्राप्त होते रहे कि आखिर एक ऐतिहासिक महत्त्व का समायोजन आपने खडा कर बताया। दिगम्बर समाज एव श्वेताम्बर मूर्ति पूजक समाज की ओर से केवल एक-एक बात और रही—अहमदाबाद से श्री कस्तूरभाई लालभाई ने कहलवाया—अमुक-अमुक दो नाम हमारी समाज के और बढ़वा दे जो कि परम आवश्यक हैं। शाहू शान्तिप्रसादजी ने श्री प्रसादीलालजी पाटनी के माध्यम से कहलवाया—दिगम्बर समाज के इन्दौर वाले श्री राजेन्द्रकुमारजी का एव श्री चांदमलजी पाण्ड्या, ये दो नाम और बढवा दे तो हमारा समाज पूर्ण सन्तुष्ट है। इधर मध्यप्रदेश आदि विभिन्न प्रान्तो से केन्द्रीय मन्त्रियो एव मुख्य मन्त्रियो के कतिपय नामो की सिफारिश इन्दिराजी के पास आई। चारों समाजो की समानता बनी रहे, इसलिए उक्त चार नामो के साथ दो नाम स्थानकवासी समाज के दक्षिण के श्री सचालालजी, जिनका श्री सुशील मुनिजी आवश्यक समझ रहे थे तथा एक नाम जयपुर के श्री खेलशकर दुर्लभजी का मैंने अपनी ओर से दे दिया। तेरापथ समाज की ओर से दो नाम और बढ़ाये गये, एक श्रीमन्नालालजी सुराणा, जयपुर तथा दूसरे तेरापथी महासभा के तत्कालीन प्रधानमत्री श्री कन्हैयालालजी दूगड़ (रतनगढ़)। इतना समय नही था कि इन दो नामों की आचार्यश्री से अनुमति ली जा सके। कुल आठ नामो की सूची श्री यशपाल कपूर को फिर दी गई। श्री कपूर ने कहा—अब सम्भव नहीं लगता, फिर भी प्रयत्न करूंगा।

राष्ट्रीय समिति का १२ अप्रैल को होने वाले प्रथम अधिवेशन में केवल

तीन-चार दिन ही शेष रह गये थे। शिक्षामंत्रालय से प्रतिनिधि आये और कहा—"आप द्वारा प्रस्तावित आठो नाम प्रधानमन्त्रीजी ने स्वीकार कर लिये हैं। अधिवेशन का समय बहुत थोड़ा रह गया है, अब इन लोगों को सूचना आप ही पहुंचायें।"

मैंने कहा—सूचना तो शिक्षा मन्त्रालय की ही प्रामाणिक मानी जायेगी। आठों व्यक्तियो के पते-ठिकाने हम आपको दे देते हैं। अस्तु, शिक्षा मंत्रालय ने वैसा सब कुछ कर दिया। दुबारा नाम बढ़ाने की भी जैन समाज मे कुछ प्रतिक्रियाए हुईं। इतने ही नाम क्यों बढे, ये नाम क्यो बढे, तेरापथी मुनि ही सब कुछ कर रहे हैं, आदि-आदि। पर, यह सब स्वाभाविक ही था। हर क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती ही है।

राष्ट्रीय समिति के जैन सदस्यो की एक बैठक ११ अप्रैल की अलग से रख ली गई थी। वह बैठक भी काफी महत्त्वपूर्ण रही। सारे भारतवर्ष से कुल ४८ प्रतिनिधि यथासमय पहुच गये थे। शाहू शान्तिप्रसादजी जैन के यहा टाइम्स ऑफ इण्डिया की नव निर्मित बिल्डिग मे उसका समायोजन था। वही पर उनकी ओर से भोजन की व्यवस्था थी। दिल्ली मे उपस्थित आचार्यों व हम सब मुनियो को भी उसमे पहुचना था। मीटिंग से एक दिन पहले ही किसी गलतफहमी से स्थानकवासी समाज मे एक असन्तोष खडा हो गया। कहा गया, हमारे मुनि व हम कल की मीटिंग मे भाग नही लेगे।

कोई भी एक समाज कार्यक्रम का बहिष्कार करे तो सारा तालमेल ही बिगड जाता है। ११ अप्रैल के प्रात मैं और मुनि मानमलजी अणुव्रतविहार से प्रस्थान कर नई दिल्ली स्थित जैन भवन मे गये। वहा श्री सुशील मुनिजी व समाज के सभी वरिष्ठ लोग उपस्थित थे। नरम-गरम काफी चर्चाए चली। भ्रान्तियो का निवारण हुआ। मैं और सुशील मुनिजी दोनो साथ-साथ ही वहा से प्रस्थान कर 'टाइम्स ऑफ इण्डिया बिल्डिंग' पहुचे।

मीटिंग प्रारम्भ हुई। अध्यक्षता श्री कस्तूरभाई लालभाई कर रहे थे तथा सयोजन श्री चिमनभाई चक्कूभाई शाह कर रहे थे। चारो जैन समाजो का नवनीत वहा उपस्थित था। दिगम्बर आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज भी वहा पहुंच गये थे। मुख्यत विचार चला, कल १२ अप्रैल को होने वाले अधिवेशन मे शालीन व एकरूप रह सकें तथा जैन समाज की ओर से निर्वाण जयन्ती समारोह की एक ही सर्वसम्मत रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें। यह बैठक अपने आप मे काफी कारगर रही। तीन-चार घण्टो की दो बैठको मे सब का पारस्परिक परिचय, प्रस्तुत की जाने वाली रूपरेखा का आलोडन-विलोडन आदि सभी कार्य सानन्द सम्पन्न हुए।

एक और आकस्मिक बाधा

१२ अप्रैल के चार बजे प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में पार्लियामेण्ट भवन के विशेष कक्ष मे अधिवेशन होना था। परामर्शक मण्डल से सम्बन्धित आचार्य व मुनि पार्लियामेण्ट भवन के आस-पास प्रात.काल ही अपने स्थानों मे पहुच गये थे। हम अणुव्रत विहार मे थे। लगभग ११ बजे शिक्षा मत्रालय से एक महिला सचिव हमारे यहां आई। एकान्त मे उसने मुझ से पूछा—"क्या आप लोगो के साथ नग्न मुनि भी आने वाले हैं ?"

मैंने कहा—"अवश्य ! वे तो परामर्शक मण्डल मे हैं ही।"

महिला सचिव ने कहा—"आप उन्हे मना करवा दें, प्रधानमत्री भवन से हमे ऐसी ही सूचना मिली है कि उनका पार्लियामेण्ट मे आना अच्छा नही लगेगा।"

मैंने कहा—"यह तो बहुत ही गलत निर्णय आप लोग ले रहे हैं। आने वाले आचार्य दिगम्बर समाज के व समग्र जैन समाज के पूज्य हैं। उनका न आना तो चारो जैन समाजो के पूरे सगठन को प्रभावित करेगा।"

महिला सचिव ने कहा—"जो भी हो, हमे तो ऊपर का आदेश है। उनके न आने का सन्देश आप उन तक अवश्य पहुचा दे या आप ऐसा कोई नाम बता दे, जिनके माध्यम से हम उन तक सदेश पहुचा देगे।"

मैंने कहा—"शाहू शान्तिप्रसादजी देश के विख्यात उद्योगपति हैं, वे ही उक्त समाज के अग्रणी हैं। आप अपनी सूचना उन तक पहुचा दें।" महिला सचिव तत्काल वहा से चली गई।

इस वार्ता-प्रसग के लगभग घण्टाभर पश्चात् ही दिगम्बर समाज के कुछ अग्रणी श्रावक हमारे यहा पहुचे। उन्होने कहा—आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज ने आपको व श्री सुशील मुनिजी को जैन निशिया मन्दिर मे बुलाया है। उनका कहना है, सरकार की ओर से मुझे राष्ट्रीय समिति की बैठक मे न आने के लिए कहलवाया गया है। उस राष्ट्रीय समिति की आज की बैठक मे आप दोनो को भी नही जाना है। हमारे दिगम्बर प्रतिनिधि भी नही जायेगे।

मैंने सोचा, समस्या तो पूरी तरह उलझ गई है। आज पहले दिन ही दो-तीन वर्षों का काता-पीना कपास होने जा रहा था। मुझे दु ख भी हुआ, चिन्ता भी हुई। मैने आगन्तुक प्रतिनिधियो से कहा—"आहार आदि से निवृत्त होकर मैं निशिया मन्दिर आ रहा हूँ।"

आहार आदि से निवृत्त होकर मैं बैठा ही था, इतने मे अकस्मात् केन्द्रीय उप शिक्षामत्री श्री डी० पी० यादव आ गये। उन्होंने कहा—"संसद का सत्र चल

ही रहा हूँ, मेरे से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर भी हैं। दस मिनिट समय निकाल कर बीच मे ही आया हू। बताइये, राष्ट्रीय समिति के आज के अधिवेशन का कार्यक्रम क्या-क्या व कैसे रखना है ?"

मैंने उनके समक्ष वही समस्या रखी—"आपकी मीटिंग क्या होगी, हम तो आ ही नही सकते। दिगम्बर आचार्यों के लिए न आने का निर्देश आपके शिक्षा मत्रालय से आया है।" उन्होने भी वही बात दोहराई, जो महिला सचिव ने कही थी। मैंने कहा—"आप आचार्यश्री देशभूषणजी से अभी-अभी मिल ले और उन्हे किसी भी तरह आश्वस्त कर दें, ताकि उनकी समाज के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न न बने। हम सबको भी वे न रोकें।" उस समय श्री शुभकरणजी दशाणी व श्री कन्हैयालालजी दूगड, जो कि वहा उपस्थित थे तथा राष्ट्रीय समिति के सदस्य भी थे, उनसे मैंने कहा—"आप दोनो साथ रहे। इनको वहा आचार्य देशभूषणजी से बात करवा दे।" एक ओर लेकर मैंने उन्हे यह भी कहा—वहा कोई रास्ता न बैठे तो आप दोनो शिक्षा मत्रीजी के साथ ही ससद मे श्री यशपाल कपूर से सम्पर्क करना तथा मेरी ओर से कह देना—अपना दो-तीन वर्षो का किया कराया सब कुछ बटाधार ही करना है क्या आदि-आदि।

वे दोनो शिक्षामत्री के साथ चले गये। हम अणुव्रत विहार से आचार्यश्री देशभूषणजी की ओर चल पडे। वहा पहुचने के पूर्व ही हमे श्री दशाणीजी मिल गये। उन्होने बताया—उप शिक्षा मत्रीजी दिगम्बर समाज को सन्तुष्ट नही करवा सके। उनका कहना है—भगवान् महावीर अचेलक थे। हम उनके अलचेक प्रतिनिधि भी मीटिंग मे नही जा सकते तो यह कैसा निर्वाण-जयन्ती समारोह ? दशाणीजी ने बताया—तदनन्तर हम उप शिक्षामत्री के साथ ही ससद मे चले गये। वहा प्रधानमत्री के सचिवालय से सम्बन्धित कई सचिव मिले। उन्होने तो कहा—"यह असम्भव है। प्रधानमत्री महिला हैं और दिगम्बर मुनि नग्न है। उनका ससद भवन मे आना व मीटिंग मे बैठना शोभनीय नही लगता। सयोग से यशपाल कपूर भी उसी समय वहा पहुच गये। उन्होने भी आशक्यता तो बताई तथा कुछ जिज्ञासाएं भी हम लोगो से की। जैसे—क्या वे कोपीन नही लगा सकते हैं ? क्या विशेष प्रसग पर फूल-पत्ती से अपने कटि-भाग को नही ढाक सकते ? हम लोगो ने कहा—यह सब असम्भव है। तब श्री कपूर ने एक ओर जाकर फोन द्वारा प्रधानमत्री से बात की तथा तत्काल हमे कह दिया—दिगम्बर आचार्य आ सकते हैं। इतना-सा खयाल अवश्य रख ले कि वे सवस्त्र मुनियो के मध्य मे रहते हुए पार्लियामेण्ट भवन मे प्रवेश करे। क्योकि आप जानते हैं, यहां विपक्षी दलो के लोग, पत्रकार, फोटोग्राफर आदि रहते ही है सहज स्थिति का भी कोई व्यग्यात्मक रूप न

बना दें।

यह संवाद सुनते ही हम लोग भार-मुक्त हो गये और प्रसन्नचित्त आचार्यश्री देशभूषणजी महाराज के पास आये। दिगम्बर श्रावक-समाज वहा था ही। मान्यवर श्री सुशील मुनिजी भी वहीं थे। उक्त सवाद सुनकर सभी ने भगवान् महावीर की जय बोली और समवेत रूप से ससद की ओर चल पड़े।

प्रधानमत्री के आगमन से पूर्व ही सब लोग निर्धारित कक्ष मे पहुच गये। सभी कुर्सियो पर प्रतिनिधियो के नाम लगे हुए थे। मैं तो प्रतिनिधि था नही। मैं आचार्यश्री तुलसी के प्रतिनिधि के रूप मे उनकी नामांकित कुर्सी पर बैठा। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' की कुर्सी पर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' बैठ गये। लगभग राष्ट्रीय समिति के सभी सदस्य दिल्ली पहुचे हुए थे और सभी अपने-अपने स्थान पर आसीन हो गये। प्रधानमत्री श्रीमती गाधी ने कक्ष मे प्रवेश किया। मुनिजनो को वन्दन करती हुई तथा उपस्थित प्रतिनिधियो का अभिवादन स्वीकार करती हुई अपनी कुर्सी पर अवस्थित हो गई। मैंने सम्मुखीन श्री कस्तूरभाई लाल भाई, शाहू श्री शान्तिप्रसाद जी, श्री चिमन भाई चक्कूभाई शाह आदि वरिष्ठ जैन प्रतिनिधियो का श्रीमती गाधी से परिचय कराना प्रारम्भ किया तो श्रीमती गाधी ने कहा—परिचय तो एक ओर से सभी सदस्य अपना-अपना दे। तत्काल वैसे ही कार्यवाही चालू हो गई। मुनियो व आचार्यों का क्रम आने पर प्रधानमत्री ने कहा – आप लोग कष्ट न करे।

कार्यक्रम

उप शिक्षा मत्री श्री डी० पी० यादव ने कार्यक्रम का सयोजन किया। क्या व कैसे रखना है, यह सब उनको बता ही दिया गया था। तदनुसार चारो समाजो के चार श्रावक प्रतिनिधि तथा चारो समाजो के चार मुनि प्रतिनिधि बोले। भगवान् महावीर के गौरव के अनुरूप समारोह मनाने पर बल दिया गया। प्रधानमत्री ने भी अपना सार-गर्भित वक्तव्य दिया। भारत सरकार की ओर से प्रस्तुत समारोह के लिए ५० लाख रुपये व्यय करने की घोषणा की गई। जिसका सभी ने करतल-ध्वनि से स्वागत किया। तदनन्तर प्रधानमत्री की अध्यक्षता मे एक कार्य समिति गठित करने का निश्चय किया गया। सवा घण्टे का कार्यक्रम बहुत ही सरस एव उत्साह-वर्द्धक रहा। पत्रकारो, फोटोग्राफरो, आकाशवाणी एव दूरदर्शन के प्रतिनिधियो की भरमार थी। समस्त जैन प्रतिनिधि कार्यक्रम की सफलता पर हर्ष-विभोर हो रहे थे।

ज्यो ही सभा विसर्जित हुई, सफलता का श्रेय सभी एक-दूसरे को दे रहे थे।

श्री कस्तूर भाई ने निकट आकर मेरे कन्धे पर हाथ रखा और कहा—"मैं नही सोचता था, इतने लघुकाय मुनि इतना बडा काम कर सकेगे।" दिगम्बर समाज के श्री भागचन्दजी सोनी व श्री चान्दमलजी पाण्ड्या आदि ने कहा—"आज अभी-अभी तीन घण्टे पहले आचार्यश्री देशभूषणजी के आगमन को लेकर जो एक समस्या खडी हो गई थी, उसका भी समाधान आपके ही हाथो निकला। सारे जन समाज की शान रह गई, अपना सारा कार्यक्रम निर्धारित प्रकार से हो सका।" मैने भी सभी महानुभावो से कहा—"इतने महान् कार्य के लिए श्रेयोभाक् कोई भी अकेला व्यक्ति नही है। आचार्यों, मुनियो तथा आप समस्त महानुभावो का सहयोग ही हमे मजिल के सोपान तक पहुचा सका है।"

आकाशवाणी एव दूरदर्शन पर उसी दिन साय कार्यक्रम का समुचित प्रसारण हुआ। अगले दिन के हिन्दी, अग्रेजी दैनिक पत्रो मे सचित्र समाचार प्रकाशित हुए। प्रधानमत्री भवन से जो एक आशका-चर्चा उठी थी कि नग्न मुनियो का आना चर्चास्पद बन सकता है, वह भी यथार्थ निकली। राजधानी के अग्रेजी पत्रो ने मुख-पृष्ठ पर पृथक् कोष्ठक मे छापा—"नेकेट मुनि इन पार्लिमामेण्ट।" इस शीर्षक के नीचे जो सवाद दिया गया, वह भी कुछ उपहासात्मक बनाकर दिया गया। अस्तु, जो भी हुआ, भविष्य की दृष्टि से जैन समाज के लिए चिन्तन का विषय वह अवश्य बना। विशेषत इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय तो यह रहा कि प्रधानमत्री भवन से दिगम्बर मुनिवर्यों को निषिद्ध किया गया, उस समय दिगम्बर समाज मे यह प्रतिक्रिया जोरो से उठी थी कि यह सब श्वेताम्बर श्रावको का काम है। वे नही चाहते थे कि दिगम्बर मुनि प्रस्तुत कार्यक्रम मे आये। वास्तव मे यह धारणा निराधार थी। श्वेताम्बर समाज की ओर से निषेध विषयक कोई उपक्रम होने का प्रश्न ही नही था। सही तो यह था कि सहज रूप से ही वह प्रश्न खडा हुआ और सहज रूप से ही वह समाधान पा गया। फिर दिगम्बर समाज की वह भ्रान्ति भी सहज रूप से निर्मूल हो गई।

उपसंहार

१२ अप्रैल की इस मीटिंग के पश्चात् राष्ट्रीय समिति के जैन सदस्यो की मीटिंगे समय-समय पर होती रही। कार्यक्रमो का रूप क्रियान्वित किया जाने लगा। शिक्षा मन्त्रालय से अन्य सभी प्रान्तो मे तदनुरूप प्रान्तीय समितियां गठित किये जाने का आदेश प्रसारित हो गया। सन् १९७२ का यह चातुर्मास हमारा दिल्ली ही था तथा सन् १९७४ समारोह वर्ष था। सन् ७३ का वर्ष केवल कार्यक्रम को गति देने के लिए अवशेष था, इसी बीच हम चारो सन्तो का भी दिल्ली से राज-

स्थान आना हो गया। २५००वें निर्वाण समारोह से एवम् राष्ट्रीय समिति से वहां तक ही मेरा सीधा सम्बन्ध रहा। उसके पश्चात् जो कुछ भी, निर्धारित कार्यक्रम मे विकास होता गया एव समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ, अन्य अनेक लोग इसके श्रेयोभाक् थे। अस्तु, मैंने यह विवरण अजाने पृष्ठो का खोलने की दृष्टि से तथा भावी पीढ़ी के लिए एक प्रेरक स्थिति प्रस्तुत करने की दृष्टि से लिखा है। वही लिखा है, जो आखो से, हाथो से गुजरा है।

—०—

: ८ :

सुधार का आरम्भ कटुता से

(पर्दा-प्रथा-उन्मूलन का एक रोमांचक इतिहास)

सन् १६४८ का वर्षावास मेरी अपनी ही जन्म-भूमि सरदारशहर मे था। यह तब की बात है, जब मैं अपनी आयु के ३१ वर्ष पूरे कर रहा था। इससे पूर्व भी मैं वहा वर्षावास कर चुका था। मै चाहता था, विगत वर्षावास की तरह इसमे भी कुछ उल्लेखनीय व उपयोगी कार्य हो। सामाजिक रूढियो के उन्मूलन का कार्य मैंने चुना। मै जानता था, यह विषय तो विवादग्रस्त ही है, इसमे निकेवल लोक-प्रियता नही मिलती। लोक-प्रियता से भी अधिक आलोचना का पात्र बनना पडता है। फिर भी कुछ कर गुजरने की उमर थी, बिना किसी हिच-किचाहट के मैने अपना क्रम चालू कर दिया। सरदार शहर तेरापथ की राजधानी माना जाता है तथा ओसवाल समाज का भी वह बडा गढ़ है। प्रति रविवार को कोई नया विषय चुना जाता और सात दिनो तक उसी सम्बन्ध मे प्रेरणात्मक कार्य किया जाता। इसी क्रम मे वेश्या-नृत्य, शोक-प्रथा, मृतक-भोज आदि विषय एक के बाद एक आते गये। परिणाम भी सुन्दर आ रहा था। कुछ रूढिया तो समूल ही नष्ट हो रही थी युवा व वयोवृद्ध दोनो ही पीढी अग्रसर होकर कार्य को गति दे रही थी।

गधैया परिवार

चिन्तन कर रहा था, पर्दा-प्रथा को भी इसी क्रम मे ले लिया जाये। इसमे युवा-पीढ़ी तो कुछ-कुछ उत्साहित लग रही थी, पर, प्रौढ भाई-बहिनो का प्रबल विरोध होने की सम्भावनाए भी थी। सयोगवश यह विषय मेरे द्वारा लाया नही गया। श्री सम्पत कुमार गधैया का विवाह सम्पन्न हुआ ही था। वे दोनो कलकत्ता से पुन सरदारशहर आते पर्दा उठाकर ही शहर मे प्रवेश करना चाहते थे। श्री नेमीचन्दजी गधैया व उनकी धमपत्नी श्रीमती भवरीदेवी गधैया की भी उसमे

पूर्ण सहमति थी। वे दोनो सरदारशहर में ही थे। श्री नेमीचन्दजी ने इस बात की चर्चा मेरे सामने की तथा यह भी जानना चाहा कि आप इस विषय मे कहा तक व किस प्रकार सहयोगी हो सकते हैं ? मैंने सोचा, उपयुक्त अवसर आ गया है। एक ओर श्री श्रीचन्दजी गधैया के प्रपौत्र है तथा दूसरी ओर गगाशहर के श्री ईश्वरचन्दजी चोपडा की पौत्री हैं। दोनों ही परिवार समाज के अग्रगण्य हैं। मैने श्री नेमीचन्दजी से कहा—पर्दा-प्रथा-उन्मूलन के समर्थन मे मै कुछ कहूँ, यह तो समाज को सह्य नही होगा, पर, सम्पतकुमार व सुन्दर देवी स्टेशन से आकर व्याख्यान मे दर्शन करेंगे तब मै उनके इस नये अध्याय के आरम्भ मे उन्हें सयम व सादगी विषयक उपदेश सहर्ष दे सकूगा। श्री नेमीचन्दजी का भी यही चिन्तन था।

शहर मे यह चर्चा जोरो पर थी कि अमुक दिन श्रीमती सुन्दर देवी गधैया सरदारशहर आयेगी व पर्दा उठाकर आयेगी। इसके साथ-साथ यह बात भी चर्चा मे आ गई थी कि स्टेशन से आते ही पति-पत्नी दोनो मुनिश्री के दर्शन करेंगे व मुनिश्री उन्हे शिक्षाए देगे। पर्दा-उन्मूलन की बात आज तो बहुत सहज बात बन गई है, पर, उस समय वह भयकर विवाद एव कौतूहल का विषय था। उस समय तक कलकत्ता मे कुछ महिलाए बिना पर्दा व साडी मे रहने लगी थी। राजस्थान मे साडी पहनकर आने का विशेषत कोई साहस नही कर पा रही थी। सरदार शहर मे तो यह पहला ही प्रसग था। वह भी गधैया घराने का। सैकडो-सैकडो लोग उस दिन स्टेशन पहुचे गये, यह देखने के लिए कि पर्दा उठाकर वह कैसे प्रवेश करती हैं। उधर ठिकाने मे उस दिन प्रात काल के व्याख्यान मे इतनी भीड एकत्रित हो गई थी, जितना कि सवत्सरी के दिन हुआ करती है। यथासमय व्याख्यान मे श्री सम्पतकुमार व श्रीमती सुन्दरदेवी ने दर्शन किये। श्री नेमीचन्दजी गधैया ने खडे होकर निवेदन किया—"मुनिश्री ! हमारे परिवार मे इस नये अध्याय का आरम्भ हो रहा है, कृपया आप इन दोनो के लिए व समाज के लिए उपयुक्त शिक्षा फरमाए।"

मुझे अपनी बात आरम्भ करनी ही थी कि इतने मे एक दम्पत्ती अप्रत्याशित रूप से पर्दा-प्रथा का बहिष्कार कर मेरे सम्मुख और आ बैठे। वे थे—श्री सूरजमलजी गोठी एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सोहनी देवी गोठी, जो कि श्री नेमीचन्दजी गधैया की पुत्री थी। श्री सूरजमलजी गोठी, श्री वृद्धिचन्दजी गोठी के पौत्र एव श्री जयचन्दलालजी गोठी के पुत्र थे। वे इस प्रकार आज आयेगे, ऐसी मुझे कोई सूचना नही थी। उनके आकस्मिक रूप से पर्दा उठाकर आ जाने से उपस्थित जन-समुदाय मे आक्रोश एव कौतुक का भाव और द्विगुणित हो गया। लोगो को लगा, मुनिश्री नगराजजी की यह कोई प्रच्छन्न योजना है। और भी कितने दम्पत्ती आज

इस प्रकार आयेगे। कोई भी कार ठिकाने के द्वार पर पहुचती तो भीड उठकर उधर ही दौड पडती, यह जानने के लिए कि अब कौन-सा जोडा आया है। इस प्रकार जनता ने कई बार धोखा खाया। क्योकि कार से आनेवाली कोई वृद्ध व अशक्त महिलाएं ही निकलती।

कार्यक्रम आगे चला। मैने पर्दा-प्रथा-उन्मूलन के सीधे समर्थन से बच-बचकर कुछ प्रासगिक बाते कही तथा उपस्थित दोनो दम्पत्तियो को सादगी व संयम की दृष्टि से कुछ सकल्प लेने की प्रेरणा दी। उन्होने खडे होकर वेश-भूषा व सिनेमा आदि से सम्बन्धित सादगी व सयम-मूलक कुछ प्रत्याख्यान किये। मेरे भाषण के पश्चात् श्री जयचन्दलालजी दफ्तरी ने खडे होकर पर्दा-प्रथा को उन्मूलित करने वालो का अभिवादन किया तथा कहा—सम्बन्धित तीनो ही परिवार सरदारशहर के ही नही, समूचे तेरापथ समाज के अग्रणी है। आशा है, समाज इस रूढि-उन्मूलन का अनुसरण करेगा। ऊपरी तौर पर सारा कार्यक्रम सानन्द हो गया।

आक्रोश की पराकाष्ठा

इस अप्रत्याशित घटनाक्रम को देखते-देखते जनता का कौतूहल भी आक्रोश मे बदल गया था। इसका पता तब चला, जब कार्यक्रम के अनन्तर ही झुण्ड की झुण्ड महिलाए इन दोनो युवतियो के निकट आकर अशिष्ट व अमगल शब्द बोलने लगी, सम्बन्धित पारिवारिको को भी गालिया बोलने लगी। इधर भाइयो मे भी तुमुल-सा मच गया था। बाजार मे पहुचते-पहुचते तो भाइयो ने जैसे अपना धैर्य ही खो दिया हो। खासकर मेरे ही ऊपर खुले आक्षेप उछालने लगे। तीव्र आलोचनाओ से सारा बाजार ही सरगर्म हो उठा था। इधर गोठी परिवार मे विकट स्थिति हो रही थी। श्रीमती सोहनीदेवी की सास श्री जयचन्दलालजी गोठी की धर्मपत्नी उस समय ठिकाने मे मामायक कर रही थी। अपने पुत्र व पुत्र-वधू को ऐसे आया देखकर वह व्याकुल हो उठी। जैसे-जैसे सामायक पूरी कर घर पहुची व बेहोश हो गई। गधैया परिवार मे श्री गणेशदास जी गधैया की धर्मपत्नी वर्तमान थी, उनका भी हाल बेहाल हो रहा था। इन सारी प्रतिक्रियाओं से एक बार के लिए मैं सन्न रह गया। सोचा ही नही था कि इस घटना पर इतना बडा बवडर खडा हो जायेगा। फिर भी साहस करके गोठीजी के यहां दर्शन देने गया, स्थिति भयावह थी। जानकारी मिली कि एक-दो दिन पूर्व दोनों ने पर्दा-प्रथा उन्मूलन के लिए आग्रह लिया था, पर, सभी पारिवारिको ने सख्त मनाही कर दी थी, तिस पर भी यह घटना घटित हो गई, इसका सबके मन मे रोष था। गधैया

जी की हवेली मे भी मैं उसी दिन गया । वृद्ध माताजी को कुछ-कुछ समझाया । अधिक समझाने की तो स्थिति भी नही थी । गोचरी जाकर आने वाले सन्तो ने ठिकाने आकर बताया, बाजार मे ही नहीं, पूरे शहर मे ही भयकर प्रतिक्रिया हो रही है तथा सारा दोष आप पर ही मढा जा रहा है । अस्तु, इस स्थिति मे मेरा भी कुछ अन्यमनस्क होना स्वाभाविक था ही । आचार्यश्री का चातुर्मास छापर मे था , वे इस घटना-प्रसग को कैसे क्या लेगे, यह भी महत्ती चिन्ता थी । मैंने निश्चय किया, अब सात दिनो तक मुझे इस विषय मे यहां कुछ नहीं बोलना है । जो कुछ कहूगा, सात दिनो के बाद ही कहूगा ।

विरोधी पक्ष ने बडे-बडे पत्र व तार आचार्यश्री तक भेजे । गधैयाजी की ओर से मास्टर श्री रामचन्द्रजी जैन छापर गये । उन्होने सही ढग से सारी बातें प्रस्तुत कर दी । दोनो ओर की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् आचार्यश्री ने कहा—"सतो ने अपनी सीमा मे रहकर ही सब कुछ किया है । साधारण-सी बातो पर जनता का ऐसा रुख बनता रहा तो उन्हे सन्त-सन्तियो के चातुर्मास मिलने भी कठिन हो जायेगे ।" आचार्यश्री स्वय सुधारवादी दृष्टिकोण रखते थे, अत समग्र स्थिति मे मेरे कार्य के प्रति उनका रुख समर्थनात्मक ही रहा ।

उक्त दो दम्पत्तियो के सामने आ जाने से युवा पीढी मे उत्साह बना । जो लोग पर्दा-प्रथा-उन्मूलन तो चाहते थे, पर, पहल करने मे हिचक रहे थे, उन्हें एक सबल भूमिका मिल गई । अगले ही दिन श्री चन्दमलजी बैद व उनकी धर्मपत्नी ने पर्दा उठाया और ठिकाने मे दर्शन किये । इनके दो-तीन दिन बाद श्री मगतमलजी सचेती व श्री मोहनलालजी दशाणी ने पर्दा हटाकर सपत्नीक दर्शन किये । मैं केवल सयम व सादगी का उपदेश देकर उनका मूक समर्थन कर रहा था । इधर समाज मे 'हडबडी' बढ ही रही थी । लोगो की धारणा पुष्ट हो रही थी कि मुनिश्री नगराजजी ने इस प्रकार सौ जोडे तैयार कर रखे हैं । एक-एक करके सामने आ रहे हैं । पर, वैसी कोई योजना मेरी ओर से क्रियान्वित नही हो रही थी । जो युवक और युवतिया सुधारवादी दृष्टिकोण के थे और अवसर की ताक मे थे, उनमे से कुछ लोग स्वत सामने आ गये । कुल मिलाकर तो मानना होगा कि सरदारशहर समाज मे पर्दा-प्रथा के उन्मूलन का वह आदि इतिहास तो उन दम्पत्तियो ने बना ही दिया । उस दिन वे पाच प्रतिशत भी नही थे और आज की नई पीढी लगभग शत प्रतिशत ही उसी मार्ग पर आ गई है । सुधार का आरम्भ हमेशा ही कटु प्रतीत होता है, पर, यदि वह सही दिशा का सुधार होता है तो उत्तरोत्तर समाज मे क्रियान्वित होता ही जाता है ।

कर्तवा नदी का झौंका ही था

प्रथम दिन की घटना के एक सप्ताह पश्चात् मैंने अपना विशेष प्रवचन उसी सन्दर्भ मे रखा। इस बात की घोषणा पहले ही की जा चुकी थी, अत उपस्थिति भरपूर थी। मास्टर श्री रामचन्द्रजी जैन ने खडे होकर आचार्यश्री का दृष्टिकोण भी सभा मे प्रस्तुत कर दिया। मैंने अपने प्रवचन मे भाई-बहिनो को लतेड न देकर जो कुछ भी कहा, मार्मिक रूप से कहा। मैंने कहा—"मैं कल्पना भी नही कर सकता कि सरदारशहर के लोग मेरे विरुद्ध इतने उग्र हो सकते है। मैंने यही जन्म लिया, यही का अन्न खाया व यही का पानी पीया। इससे पूर्व भी ऐतिहासिक महत्त्व के प्रवास मैंने यहा किये हैं। सर्वसाधारण ने मुझे प्रेम दिया है, भक्ति दी है। वे ही लोग एक तनिक-सी बात पर इतने बौखला गये कि बाजारो और घरो मे मेरे पर अनर्गल बोलने लगे। पर्दा-प्रथा के सम्बन्ध मे मेरे विचार कुछ भी रहे होगे, पर, मैंने जो कुछ कहा, निरपेक्ष भाव से कहा। न उसमे सीधा समर्थन था, न उसमे सीधा विरोध। उसका अभिप्राय केवल इतना ही था कि यदि युवतिया इस नये मार्ग को चुनती हैं तो उस मार्ग मे आनेवाली बुराइयो के प्रति भी सजगता बरतें। इस सुधार को भी वे फैशन-परस्ती का रूप न दे दे। अस्तु, इसमे अधिक और मैंने उस दिन कुछ भी कहा हो तो आप खडे होकर दोहरा सकते हैं। यदि मैंने नही कहा और केवल पर्दा-बहिष्कार के दृश्य को देखकर ही आप बोखला गये तो आपको आज आत्म-चिन्तन करना चाहिए। आपके मन मे स्वत ग्लानि होगी, उस दिन व्यर्थ ही हम लोगो ने मुनिश्री के प्रति आक्रोश व्यक्त किया। मै चाहता हू, जो-जो लोग उस दिन असयमित बोले हैं, वे आज ही और अब ही अपना आत्म-निरीक्षण करके अपनी-अपनी ओर से खमत-खामणा करें।

मैंने यह भी कहा—"मेरे प्रति आप बदल गये, उसमे आपका कोई दोष नही। हो सकता है, वह क्षण ही ऐसा था तथा कोई विषैली हवा का झौका ही आप मे मति-विभ्रम कर गया। ऐसा कभी-कभी और कही-कही हो भी जाता है। पाच पाण्डव जगल पार कर रहे थे। प्यास से तिलमिला रहे थे। सभी लोगो को एक वृक्ष की छाया मे बैठ जाना पडा। नकुल और सहदेव पानी की तलाश मे निकले। वे कर्तवा नदी के उस पार चले गये। वहा उन दोनो मे मति-विभ्रम पैदा हो गया। युधिष्ठिर, भीम आदि के लिए अनुचित बोलने लगे। बहुत देर तक जब नही आये तो अर्जुन और भीम उनकी तलाश मे निकले। नदी के उस पार गये तो उनका भी वही हाल। वैसे ही बोलने लगे। चारो ही जब बहुत देर तक नही आये तो युधिष्ठिर खोजने निकले। वे नदी के इस तट पर खडे थे। उन्हे देखकर चारो पाण्डव बोलने लगे—"यह आया धर्मात्मा कहलाने वाला पापात्मा। इससे कुछ

करते-धरते बनता नही, हम सबको आदेश देता है, यह करो, वह करो। हम अब इसके कहने से कुछ नही करेगे।" युधिष्ठर ने ये सब बातें सुनी तो सोचा, मेरे चारो भाई मेरे प्रति ऐसे हो नही सकते। हो न हो इस कर्तवा नदी का दूषित झोंका ही इनको पागल कर रहा है। मैं उधर चला गया तो हो सकता है, मेरी भी यही गति हो। युधिष्ठर ने वही खडे-खडे ललकारा—अरे, भीम! वहा खडा-खडा क्या बकवास करता है? तेरी बाजुओ मे दम है तो इधर आ, मेरे से युद्ध कर। युद्ध की बात पर आवेश मे आकर भीम उधर ही चल पडा। इस तट पर आते ही उसका दिमाग एकदम बदल गया। चरणो मे गिर पडा। अपनी भूल के लिए क्षमा मागने लगा। युधिष्ठर ने कहा—तुम्हारा कोई दोष नही, यह तो कर्तवा नदी के हवा का ही दोष था। अस्तु, इसी प्रकार आह्वान करके क्रमश तीनो पाण्डवो को भी इधर बुला लिया। आते ही सब कुछ ठीक-ठाक। मैं भी अनुभव कर रहा हू कि मेरे प्रति सरदारशहर के लोग ऐसे नही हो सकते। उस समय अवश्य कोई कर्तवा नदी का भोका ही आया है। पर, अब सात दिनो के पश्चात् आप अपनी-अपनी अनुभूति यदि अभी कहना चाहे तो कह सकते हैं। जो सबके सामने नही कहना चाहते, वे फिर एकान्त मे कह सकते हैं।"

इस भाषण के पश्चात् सचमुच ही मैंने लोगो को बदला हुआ पाया। लगभग सभी की आखे भर आई थी। बहुत सारे लोग खडे हुए और क्रमश. बोले—हमने उस दिन आपके विषय मे बहुत भला-बुरा बोला, पर, हम आज आपसे खमत-खामणा करते हैं। इस प्रकार आसुओ की झडी बरसाते अनेक लोग निकट आकर चर्ण स्पर्श कर मुझे भी द्रवित करने लगे। एक अप्रत्याशित वातावरण बन गया।

भावनापरक प्रशान्ति

उस दिन मध्याह्न से सायकाल तक तथा अगले दिन तक लोगो के आने का व तथारूप खमत-खामणा करने का क्रम चलता ही रहा। वातावरण पुन सरस बन गया तथा कार्यक्रम यथारूप चलने लगे। प्रतिक्रिया प्रशान्ति मे बदल गई। पर, प्रतिक्रिया की तरह प्रशान्ति भावनापरक थी, अत तात्कालिक ही रही। जिन लोगो के मन मे पर्दा-प्रथा व अन्य सुधार-मूलक बातो का विरोध था, वे धीरे-धीरे अपने विरोध को समाज मे विकसित करने लगे चातुर्मास के पश्चात् हम लोगो ने विहार किया और थली मे कही आचार्यश्री के दर्शन किये। वहा सरदारशहर के भाई-बहिने मुझे नई-नई चर्चाए आकर सुनाते, उनमे मुख्य बात थी कि मुनिश्री नगराजजी को आचार्यश्री ने दो महीने का 'पानी-रोटीका दण्ड' एव खद्दर ही पहनने की सजा दी है। मैं विनोद-भाव से हस कर रह जाता। मेरे मन पर उन निराधार

प्रतिक्रियाओं का कोई असर नही होता। अणुव्रतो की रूपरेखा निर्धारण का भी वही वर्ष था। मैं उसमे सलग्न था एवं आचार्यश्री की मानसिकता भी पूर्ण अनुकूल थी। प्रतिक्रिया धीरे-धीरे बढ़ ही रही थी। राजलदेसर मर्यादा-महोत्सव कर आचार्यश्री को सरदारशहर पधारना था। विहार चालू था। रतनगढ़ के पश्चात् सरदारशहर के लोगो का भरपूर आवागमन हो रहा था। सब लोग मुझे खादी पहने देखते। हकीकत यह थी कि सरदारशहर से विहार होने के साथ-साथ ही मैंने खादी पहनना आरम्भ किया था। श्री चन्दनमलजी बैद के यहा से ही खादी-वस्त्र ग्रहण किये थे। अस्तु, खादी पहनने की सजा की तुक लोगो ने इसी सन्दर्भ से लगा ली थी। पर, दो माम पानी-रोटी के दण्ड का तो कोई तुक ही नही था। फिर भी चर्चा इतनी जोर पकड चुकी थी कि सुनते-सुनते मैं भी तिलमिला गया। अन्य तुच्छ बाते भी निराधार रूप से बहुत फैलाई जा रही थी। एक दिन मध्याह्न मे पहली बार मैं इस विषय को लेकर आचार्यश्री के पास गया। सारी अफवाहो से उन्हे अवगत कराया और उनका निराकरण करने की अपेक्षा प्रस्तुत की। आचार्यश्री ने स्मित भाव से कहा—निराकरण क्या करना है, निराधार बाते हैं, स्वत ही समाप्त हो जायेगी। सरदारशहर चल ही रहे हैं, तुम ही तो अभी यहा का दायित्वपूर्ण कार्य कर रहे हो, लोग अपने-आप स्थिति समझ लेगे।

आज भी सिहरन

सरदारशहर पहुचे तो सारी अफवाहे निरस्त होने लगी। जो-जो सुधार-मूलक कार्य मैंने उठाये थे, आचार्यश्री भी प्रसगोपात उन सबका समर्थन कर रहे थे। मैं ही अणुव्रत आन्दोलन के शुभारम्भ की सारी प्रक्रिया मे सलग्न था। अस्तु, पर्दा-प्रथा या अवगुठन-प्रथा आज अस्तित्व-शून्य-सी हो चुकी है। पर, सरदार-शहर का वह आदि-प्रसग आज भी मेरे मन मे सिहरन-सी पैदा करता है।

—०—

: ९ :

राजर्षि टण्डन : रूखे आवरण में छिपी मधुरता

सन् १९५३ की घटना है। मैं अपने छत्तीसवे वयोमान मे चल रहा था। इससे पूर्व भी मैं एक बार दिल्ली आया था। उस समय महात्मा गाधी से एक सम्पर्क प्रथम और अन्तिम हुआ था।[1] पर, चातुर्मास के रूप मे मेरा यह पहला प्रवास था। अणुव्रत आन्दोलन के नूतन आयाम खोले जा रहे थे। दैनिक पत्रो का सहयोग भरपूर था। जन-सम्पर्क का कार्य भी सुचारु रूप से चल रहा था। देश के वरिष्ठ लोगो का अपने मच पर उपयोग हो, इस दृष्टि से 'अणुव्रत विचार परिषद्' का एक नया आयाम खोला गया था। उसमे साहित्यकार, शिक्षाविद् एव राजनेता समय-समय पर मुख्य वक्ता के रूप मे भाग ले रहे थे।

क्या मुनिजी नहीं आ सकते ?

इसी सन्दर्भ मे अणुव्रत प्रतिनिधि श्री मूलचन्दजी सेठिया राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन से मिले व उनसे अणुव्रत विचार परिषद् मे भाग लेने के लिए अनुरोध किया। प्रसगत मेरा नाम भी वहा चर्चित हुआ। राजर्षि ने अन्यमनस्कता दिखलाई तथा कहा—"मेरा वहा चलना ही क्यो जरूरी है, क्या मुनिजी यहा नही आ सकते ? श्री सेठियाजी उनके इस रूखे व्यवहार से सकपका गये। वहा से लौटकर उन्होने मुझे कहा—"राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन बडे रूखे प्रतीत होते है। दुबारा उनसे इस सम्बन्ध मे सम्पर्क न किया जाए, यही अच्छा है।" मै उनसे सम्पर्क के लिए उत्साही था। देश के जाने-माने नेता है, आदर्शवादी एव सिद्धान्तवादी हैं; इन्हे तो निकट से देखना ही चाहिए। समयान्तर से एक अवसर बना। दिल्ली के कॉन्स्टीच्यूशन क्लब मे मेरा प्रवचन रखा गया था। तत्कालीन लोक सभा के

---

१. पूरा विवरण देखें, लेखक की 'यथार्थ के परिपार्श्व मे' पुस्तक मे।

अध्यक्ष श्री अनन्त शयनम् आयगर उस सभा के अध्यक्ष थे । वह सभा मुख्यत: ससद-सदस्यो के लिए ही आयोजित थी। काफी सदस्य आये थे। कार्यक्रम का कार्ड राजर्षि टण्डन के पास भी गया था। वे भी उस समय ससद सदस्य थे, पर, वे नही आये थे । कार्यक्रम के पश्चात् हम लोग नई दिल्ली मे अवस्थित थे। मध्याह्न मे सहवर्ती कार्यकर्त्ताओ से मैने कहा—राजर्षि ट डन अपने आवास पर हो तो मैं अभी वहा चलना चाहूगा । कार्यकर्त्ता ने फोन पर ही टण्डनजी को सूचित किया कि मुनिश्री नगराजजी आपके यहा आ रहे हैं। उन्होने कहा—"मुनिश्री क्यो कष्ट करते हैं, मै ही कभी आ जाता। हा, तो उनके साथ कितने लोग होगे?" बता दिया गया, कुछ मुनि व हम कुछ कार्यकर्त्ता—कुल दस एक व्यक्ति।

कुर्सियों की उधेड़-बुन मे

हम उनके आवास पर शीघ्र ही पहुच गये । देखा, वे एक कमरे मे कुर्सिया जमा करने मे लगे हैं । हमे देखते ही उन्होने पुलकित भाव से अभिवादन किया। बोले —"दस एक आदमियो के आने की बात थी, अत मैंने आस पास के कमरो से उठाकर एक ही कमरे मे कुर्सिया रख दी हैं ।" यह सुनकर मैं कुछ खिन्न-सा हुआ, क्योकि तब तक काष्ट की कुर्सियो पर बैठने की परम्परा भी तेरापथ मे चालू नही हुई थी । कमरा बात करने के लिए उन्होने वही निश्चित कर रखा था। मैंने सुन रखा ही था कि टण्डनजी रूखे स्वभाव के हैं । फिर भी मुझे कहना तो पडा ही—"टण्डनजी! आपने तो अनावश्यक ही कष्ट उठा लिया। हमारी चर्या तो बिना कुर्सी भूमि पर बैठने की ही है।" मेरा इतना कहना था कि वे अच्छा, कह कर कुर्सिया हटाने लगे। मैने सहवर्ती कार्यकर्त्ताओ की ओर झाका। वे सब लगे और कुर्सिया वहा से हटाकर यथास्थान पहुचा दी। टण्डनजी के चेहरे पर कोई रूखेपन का भाव नही उभरा। प्रत्युत् वे इसी चिन्ता मे कुछ देर सलग्न रहे कि अतिथि मुनिजनो को कोई असुविधा न हो जाये । मेरी आधी धारणा तो इतने मात्र मे ही समाप्त हो गई कि वे रूखे होगे। प्रश्न केवल पहल करने का ही था ।

लाख, ऊन, चमडा

वार्तालाप का क्रम चला। जैन साधुओ की चर्या, अणुव्रत आन्दोलन, तेरा-पथ की हस्त-कलाए आदि मुख्य विषय थे। नारियल का प्याला जब उन्हे दिखाया गया, वे तो चौक पडे । बोले—"इसका लाल रग तो 'लाख' का है। आप लोग इसका कैसे प्रयोग कर सकते हैं। लाख तो नितान्त जीवो का रस ही होती है। अहिंसको के लिए सर्वथा वर्जनीय है।" मैंने कहा—"यह लाल रग लाख का नही,

हिंगलू का है।" उन्होंने कहा—"नहीं, नहीं, यह तो बिलकुल लाख ही है।" मुझे अधिक वितर्क मे जाना नही था तथा लाख व हिंगलू आदि की प्रक्रिया के बारे मे विशेष जानकारी भी नही थी। बात अहिंसात्मक प्रयोगो के ही सन्दर्भ मे आगे चल पडी। उन्होने रजोहरण की ओर अगुली-निर्देश करते हुए कहा—"आप लोग ऊन का भी प्रयोग करते हैं? हमारे यहा तो यह एक चिन्तन का पहलू है कि अहिंसक व्यक्ति ऊन का प्रयोग कर सकता है या नही? इन्हीं दिनो इग्लंड से मेरी एक शिष्या का पत्र आया है, जिसमे उसने यही जिज्ञासा मेरे से की हैं। मैंने अब तक उसका कोई उत्तर नहीं दिया है। आप इस सन्दर्भ मे क्या सोचते है?" मैंने कहा—"ऊन तो भेडो को मारकर प्राप्त नही की जाती, अतः इसका सीधा सम्बन्ध हम लोग हिंसा से नही मानते।" टण्डनजी ने कहा—"यह तो मैं भी जानता हू, पर, भेडो को मुण्डित करने से पहले उनके चारो पैर पकडकर ऊन की सफाई के लिए पानी में झकोला जाता है, यह तो कष्ट-दायक काम है ही।" मैंने कहा—वैसे तो व्यक्ति अहिसा की सीमा को चाहे जहा तक आगे बढा सकता है तथा जीवन मे सयम का विकास कर सकता है, वह अच्छा ही है। पर, रेशम, इरण्डी, मोती आदि की तरह ऊन सीधी हिसा-जन्य नही है।

इसी सन्दर्भ मे बात चमडे के प्रयोग पर चल पडी। राजर्षि टण्डन ने इस पर अपने जीवन के प्रेरक प्रसग सुनाये। उन प्रसगो से यह भी स्पष्ट होता था कि कथनी-करनी मे समानता लाने का एव जीवन मे अहिंसा का अधिकतम विकास का उनका अपना कितना आग्रह है। उन्होने बताया—"बहुत पहले जब गो-वध-निषेध का आन्दोलन देश मे शुरू हुआ, तब मैं युवा था और उस आन्दोलन मे भी अगुआ था। अचानक एक दिन मेरे अपने ही आवास मे चमडे की रखी सन्दूको पर मेरी दृष्टि गई। मेरे मन मे आया, अरे! गो-वध तो हम स्वय ही करवा रहे हैं। चमडे का प्रयोग करते हैं तो गो-वध मे भागीदार होते ही हैं। उसी दिन, उसी समय चमडे की वे सारी सन्दूके मैंने बाहर डलवा दी तथा भविष्य मे चमड़े की चीजो का प्रयोग न करने की प्रतीज्ञा कर ली। इस प्रक्रिया मे मुझे क्रिकेट खेलना भी छोड देना पडा, क्योकि उसकी गेंद भी चमड़े से मढ़ी होती है।"

यह विशेषत उल्लेखनीय है कि राजर्षि टण्डन क्रिकेट के जाने-माने खिलाड़ी रहे है पर, अपने गो-वध-निषेध के आदर्श पर उन्होने अपने प्रिय खेल को तिला-जलि दे दी। आदर्श के ऐसे उदाहरण बिरले ही लोग उपस्थित कर सकते हैं।

हिन्दी व अंग्रेजी भाषाएं

हिन्दी भाषा का भी प्रसंग चला। मैंने कहा—"आप अग्रेजी का इतना

विरोध क्यों कर रहे हैं ? इससे तो देश कूप-मण्डूक रह जायेगा, अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में इसका चरण-विन्यास भी कैसे सम्भव होगा ? विज्ञान व पाश्चात्य दर्शनों को पढ़ने को मैं स्वयं भी अपना अंग्रेजी का अभ्यास बढा रहा हू, क्या आप इसे अनुचित मानेंगे ?"

राजर्षि ने कहा—"आप जिस ध्येय से कर रहे हैं, मैं उसे अनुचित नही मानता। मेरा विरोध अंग्रेजी का नही है, मेरा विरोध इस बात से है कि लोग अपनी मातृ-भाषा व राष्ट्र-भाषा को सर्वथा गौण करके चल रहे है। इससे हमारी सभ्यता व सस्कृति की हानि होगी। हम अपनी मातृ-भाषा के गौरव को अक्षुण्ण रखते हुए कितनी ही भाषाए पढ़ें, मैं उपयुक्त ही मानता हू।"

हिन्दी-काव्य का भी प्रसग चला। मैंने अपनी सद्य रचित कुछ कविताए उन्हे सुनाई। मेरी कविता 'दान या शोषण' उन्हें बहुत पसन्द आई। उन्होने कार्यकर्त्ताओ से कहा—इस कविता की एक प्रतिलिपि बनाकर मुझे द। मैं इसका उपयोग कुछ विशेष पत्रिकाओ मे करूंगा। लगभग दो घण्टे का यह प्रथम वार्तालाप अप्रत्याशित रूप से ही सरस व सुखद रहा। आगामी अणुव्रत विचार परिषद् मे भाग लेने के लिए भी उन्होने हा भर ली तथा उन्होने नया बाजार के निर्धारित कार्यक्रमो मे सोत्साह भाग लिया। हम सभी की यह धारणा बनी कि रूखे आवरण मे कितनी मधुरता छिपी रह सकती है।

एक बड़ा गुड़

तदनन्तर हमारा उनसे सम्पर्क चलता ही रहा। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' जब भी नई दिल्ली जाते, उनके वहा अक्सर जाते ही। जैन साधुओ की भिक्षा-विधि को भी उन्होने समझा और मुनि महेन्द्रकुमारजी को यथाविधि आहार आदि प्रदान कर उन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती। प्रायः उनका यही आग्रह रहता, मेरे यही बैठकर आप भोजन कर लें। इसी बीच मुनिश्री बुद्धमलजी ठाणा चार का दिल्ली पर्दापण हुआ। मुझे दिल्ली से प्रस्थान करना था तथा उन्हे वहा आगामी चातुर्मास करना था। दिल्ली के व्यापक सम्पर्क का यह प्रथम वर्ष ही था। एक बार हम आठों मुनि राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के यहा गये। मुनिश्री बुद्धमलजी व अन्य सहवर्ती सन्तो का परिचय कराया गया। साहित्यिक व समसामयिक अनेक चर्चाए हुई। उस दिन उनके दो आग्रह रहे—पहला यह कि मेरे यहां से आप शरबत ग्रहण करें। हम लोगो ने सोचा, बोतल मे कोई बना-बनाया शरबत होगा। उनकी आग्रह परक भावना को देखते हुए हम लोगों ने कहा—"शरबत लेने मे हमे कोई सैद्धान्तिक आपत्ति नहीं है।" उन्होंने पूछा—पानी व बर्फ की व्यवस्था मै

कर सकता हूँ या आप लोग अपनी करेंगे ? हमने कहा—पानी हमारे पास है, बर्फ की कोई अपेक्षा ही नही है। मुनिश्री बुद्धमलजी आदि हम सब शरबत बहरने अन्दर गये तो उन्होने गुड के बड़े बडे कई बट्टे उठाये और सारा गुड लेने के लिए आग्रह करने लगे। हम लोगो ने कहा--आप तो शर्बत की बात कह रहे थे न ? उन्होने हस कर कहा—मेरा शर्बत तो यही है। पानी मे गुड़ घोलो और पीओ। उन्होने कहा—गुड हमारे उत्तर प्रदेश का है, ताजा है। गर्मी के मौसम मे यह शीतल पेय के रूप मे बहुत गुण-कारक है। हम लोगो ने कहा—टण्डनजी ! इतना गुड यदि हम लोग पी लेंगे तो जुलाब का काम कर देगा। उन्होंने पुनः बल दिया कि गुड कभी हानि नही करता। वह तो शक्ति देता है। इतना सब तो लेना ही पडेगा। आखिर उनकी भावना को देखते हुए एक बट्टा जो कि लगभग एक किलो का तो होगा ही, हमे लेना ही पड़ा।

एक-एक चद्दर

उसी दिन उनका दूसरा आग्रह रहा कि मेरी एक तमन्ना है, आप आठ साधु हैं, खद्दर की आठ चादरे आपको प्रदान करू। यह इतनी खद्दर मेरे यहां आपके निमित्त से भी नही आई है। खादी की प्रदर्शनी लगी थी, उसमे गया था। तो हाथ की कताई-बुनाई को बल देने हेतु मैंने इतनी सारी चद्दर एक साथ खरीद ली। आप जानते हैं, मैं तो अपने लिए बहुत ही सीमित वस्त्र एक साथ रखता हू। सयोगवश यह खादी अनायास ही आ गई है और आप लोग भी अनायास ही आ गये हैं। इस खादी का इससे अधिक कोई सुन्दर उपयोग नही कि यह आप सबके काम आये।

श्री टण्डनजी के इस प्रस्ताव पर हम स्वय भौंचक्के-से रह गये। पहली समस्या तो यह थी कि उस समय तक हम लोगो मे खद्दर पहनने का एक भी मुनि आदी नही था। सभी पतली और विलायती मखमल की 'पछेवड़ी' (चद्दर) रखने वाले थे। वस्त्र धोने का भी तब तक प्रचलन नही था। उनके यहां खद्दर भी मोटी थी। मौसम भी गर्मी का था। इन सारी स्थितियो को देखते हुए इतनी खादी ग्रहण करने की बात सम्भव ही नही थी। पर, उनके सहज उत्साह को तोड़ने मे भी हिचक हो रही थी। विनोदपूर्ण और भक्ति-पूर्ण आग्रह पर तब आखिर एक चद्दर ले लेने मे मे हमने सौदा पटा लिया। अस्तु, अन्य भी अनेक समसामयिक विषय चले और तदनन्तर हम आठो साधु हर्ष-विभोर होकर अपने स्थान पर लौटे। मुनिश्री बुद्धमलजी की कविताए सुनकर भी राजर्षि बहुत प्रभावित हुए।

सादगी व संयम

उस दिन के वार्तालाप मे उन्होने अपने जीवन के कतिपय सस्मरण भी सुनाये थे। उन्होंने बताया—खाना पकाने मे इतना समय जाता है और हमारी इन्द्रियो की आसक्ति बढ़ती है, इसे कैसे कम किया जाये, इस दिशा मे एक प्रयोग यह किया कि केवल धान को भिगोकर खा लेना। महीनो तक केवल कच्चे धान पर मैं रहा, पर, परिणाम सुन्दर नही आया। पेचिश की बीमारी खडी हो गई। लाचार होकर मुझे वह बन्द ही कर देना पडा। वस्त्र धोने के विषय मे भी मैं प्राचीन पद्धतियो का अन्वेषण कर रहा हूँ। जब सोडा या साबुन नही थी, तब लोग कैसे वस्त्र धोया करते थे। आप लोग भी जो-जो वस्त्र धो सकते हैं, वे कैसे धोते हैं?" मैंने कहा—हमारे यहा तो रजोहरण आदि धोने मे अरेठे का उपयोग कदाचित् होता है। विशेष जानकारी मुझे इस विषय मे नही है। इस प्रकार अनेक स्फुट बाते चली। उनके चिन्तन का लक्ष्य मुख्य रूप से सादगी और सयम की दिशा मे ही चलता है, ऐसा हमे अनुभव हुआ।

विदाई कार्यक्रम मे

कुछ ही दिनो पश्चात् हम चारो सन्तो के विहार का कार्यक्रम बना। जयपुर जाना था। मुनिश्री बुद्धमलजी के सान्निध्य से विदाई कार्यक्रम समायोजित हुआ। अध्यक्षता राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन ने की। केन्द्रीय मत्री श्री लालबहादुरशास्त्री, ससद सदस्य सेठ गोविन्ददास, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आदि अनेक गण्यमान्य वक्ता थे उस दिन।

राजर्षि टण्डन के भाषण का साराश यह था कि जैन साधुओ के सम्पर्क मे आकर मै बहुत प्रभावित हो रहा हू। इनमे तपस्या भी है और विद्वत्ता भी। दिल्ली की गर्म सडको पर ये नगे पैर घूमते हैं। भिक्षा के भी इनके कठोर नियम हैं। इधर मैं अपने सनातनी महन्तो, मठाधीशो को जब देखता हू, तो मुझे स्पष्ट लगता है, ये वैभव का त्याग कर रहे हैं, वे वैभव का का भोग कर रहे हैं। आप सब लोग जानते ही हैं कि अभी कुछ दिनो पूर्व कुम्भ के मेले मे नगे साधुओं ने भाले चला दिये। हिंसा का ताण्डव-दृश्य खडा कर दिया। इसे मैं साधुता नही मानता। साधुता का अर्थ ही है, त्याग और सयम।

मेरे वश की बात नहीं

राजर्षि टण्डन जब तक जीवित रहे, तेरापथ साधु-सघ का सम्पर्क उनसे

चलता ही रहा। आचार्य श्री तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ में भी उन्होंने अपने कवितामय उद्‌गार लिखे। आचार्यश्री स्वय भी उनके वहा कई बार पधारे। उन्होंने बहुत आत्मीयता एव सत्कार का परिचय दिया। उनके जीवन मे सिद्धांत प्रमुख था, अन्य सब बाते गौण। एक बार के वार्ता-प्रसग में उन्होंने बताया—"पार्टी के अध्यक्ष पद से हट जाने के पश्चात् प० नेहरू का एक पत्र मुझे मिला, जिसमे लिखा था, मैं चाहता हूं, आप उडीसा का राज्यपाल बनना स्वीकार करें। मैंने उन्हें वापिस लिख दिया—"मुख्यमत्री सही व गलत सब करता रहे और मैं उस पर हस्ताक्षर करता रहू, यह मेरे वश की बात नही है।"

—०—

: १० :

मैं धर्म को मानता हूं पर, अर्थहीन क्रियाकाण्डों को नहीं

(पं० नेहरू के साथ रोचक सस्मरण व सरस वार्ता-प्रसग)

सन् १९५६ की बात है। दिल्ली वर्षावास के लिए दो ही वर्ष पश्चात् पुन आगमन हुआ था। इस बार मुनि महेन्द्रकुमारजी का भी सिंघाडा हो चुका था। हम सात सत थे। विभिन्न धाराओ के शीर्षस्थ लोगो से मिलना व उनकी विरल विशेषताओ का अध्ययन करना मेरी रुचि का विषय था ही। राष्ट्रपति, प्रधान-मत्री, न्यायाधीश, प्रधान सेनापति व उस समय के शीर्षस्थ साहित्यकारो, शिक्षा-शास्त्रियो से सम्पर्क हो जाने के पश्चात् भी प्रधानमत्री प० जवाहरलाल नेहरू मेरे इस चालू क्रम मे बच रहे थे।

भूमिका प्रथम सम्पर्क की

उनसे पहला सम्पर्क हमने श्री श्रीमन्ननारायण अग्रवाल के माध्यम से किया। वे उस समय काग्रेस के महामत्री व प० नेहरू अध्यक्ष थे। श्री श्रीमन्ना-रायण हम मुनिजनो के प्रति व अणुव्रत के प्रति अनुरक्त हो चुके थे। वे भी चाहते थे, प० नेहरू अणुव्रत से सम्पृक्त हो। बात चलने पर उन्होने कहा था, प० नेहरू से आपकी मुलाकात हो, मैं प्रयत्न करूगा। उन्होने पडित नेहरू को एक पत्र लिखा, जिसमे अणुव्रत की गतिविधियो का सजीव परिचय दे दिया था। पत्र लिखने की सूचना वे हमे नही दे पाए थे।

हम लोग नया बाजार, पुरानी दिल्ली मे अपना वर्षावास सम्पन्न कर रहे थे। अकस्मात् साय आठ-नौ बजे नया बाजार पुलिस थाना के आदमी आए और उन्होने कहा—प्रधानमंत्री भवन से फोन आया है, मुनिश्री नगराजजी को अमुक

दिन प्रात. प्रधानमंत्री भवन मे उनसे मिलना है। मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' से कहा—एक बार कोई पहले प्रधानमंत्री भवन हो आओ तो अच्छा रहे; क्योंकि जिस दिन हम वहा जायेंगे, यही विषय मुख्य हो जायेगा कि हम कहां बैठें, कैसे बैठें; आदि-आदि। अगले ही दिन मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' कार्यकर्त्ताओं के साथ वहां पहुंचे। सम्बन्धित सचिव से मिलना हुआ। उनसे जब पूछा गया कि मुनिश्री के बैठने की व्यवस्था कहा रहेगी व कैसे रहेगी तो सचिव ने कहा—यह प्रधानमंत्री भवन है। यहा अन्य देशो के प्रधानमंत्री आदि भी आते ही रहते हैं, तो व्यवस्था होती ही है। मुनिश्री के लिए भी समुचित व्यवस्था रहेगी। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने जब उन्हे बताया—हम लोग कालीन पर नही चलते, सोफासेट पर नहीं बैठते, पखा चलता हो तो वहा नहीं बैठते, अत अच्छा होगा, मुनिश्री व प्रधानमंत्री के वार्तालाप का कार्यक्रम बरामदे मे ही रखा जाये। सचिव महोदय आई० सी० एस० अधिकारी थे, यह सब सुनते ही तमक गये। बोले—मुनिजी ! यह सब नही हो सकता। हम प्रधानमंत्री को कैसे कह सकते हैं कि बरामदे मे बैठकर आप किसी से मिलिये। आप चाहें तो मैं वार्तालाप का समय केंसिल कर सकता हू। संयोगत प्रधानमंत्री भवन की एक महिला उक्त वार्तालाप सुन रही थी। मुनि महेन्द्रकुमारजी को हताश-सा देखकर उसने कहा—मुनिजी ! बाहर आइये, मैं आपसे बात करूगी। बाहर आकर उसने कहा—घरेलू ढग की व्यवस्था हम घरेलू लोग ही करते हैं। आप मुझे समझा दीजिये, वैसी ही व्यवस्था मुनिश्री व प्रधानमंत्री के लिए हो जायेगी। व्यवस्था उन्हे समझा दी गई। अगले दिन जब हम लोग गये तो बरामदे मे एक ही सुन्दर-सा कालीन बिछा मिला एव दो मखमली मसड बीचो-बीच आमने-सामने लगाए पड़े थे। पूछने पर कहा, एक मुनिश्री के लिए व एक प्रधानमंत्री के लिए। खैर, हमने अपने आसन कालीन से पृथक् एक ओर लगा दिये। प्रधानमंत्री के लिए भी कालीन के किनारे पर एक ओर बैठने की व्यवस्था हो गई। अस्तु, पहले दिन ही ६ मील जाने व ६ मील आने का कष्ट नही उठाया जाता व पहले से स्थिति को नही भाप लिया गया होता तो अगले दिन कितनी असुविधाए हो सकती थी, यह सहज ही समझा जा सकता है। उस समय उन रूढ़ नियमो के कारण वार्तालाप हो पाता या नहीं, यह भी सन्दिग्ध ही होता।

मैं भारत में जन्मा हूं

वार्तालाप के दिन हम मुनिजन व चार-पांच प्रतिनिधि हमारे साथ थे। दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री गोपीनाथ 'अमन', श्री नेमीचन्दजी

गधैया, श्री मोहनलालजी कठोतिया, श्री मगतराय जैन, श्री मोहनलाल बाफणा आदि। यथासमय प्रधानमत्री आये। हम मुनिजनो का अभिवादन किया। हम सभी लोग बैठने लगे। प० नेहरू चूडीदार पायजामा पहने हुए थे। वे कुछ कठिनता से बैठ पा रहे थे। मैंने कहा—बिना कुर्सी के बैठने से आपको असुविधा लगती होगी। नेहरूजी हसे और बोले—"नही, मैं भारतवर्ष में जन्मा हूं। मुझे धरती पर बैठना भी आता है।" यह कहने के साथ-साथ व विशेष स्फूर्ति से बैठ ही गये।

सजगता व तल्लीनता

मैंने तेरापथ साधु-सघ, आचार्यश्री तुलसी, अणुव्रत आन्दोलन आदि का परिचय देना आरम्भ किया। प० नेहरू बहुत ही सजगता से सब कुछ सुन रहे थे। बीच-बीच मे प्रश्न और जिज्ञासाए भी प्रस्तुत कर रहे थे। विश्व विद्यालय स्तर पर दिल्ली मे चलाये जा रहे विद्यार्थी कार्यक्रम मे उन्होने विशेष रुचि ली। पूछा—"कॉलेज के विद्यार्थी आप से किस तरह पेश आते हैं तथा विद्यार्थियो से आप क्या आशा रखते हैं?" अस्तु, प० नेहरू उन दिनो विद्यार्थी-समस्या से परेशान भी थे। मैंने कहा—"विद्यार्थी मुझे अच्छे लगते हैं। बौद्धिक एव युगीन ढग से उन्हे समझाया जाये तो वे तोड-फोड के बदले अहिंसा की बात भी स्वीकार कर लेते हैं। हम लोगो के साथ पहले तो वे अजनबी की तरह पेश आते हैं। जयपुर के किसी बड़े कॉलेज मे एक बार हम प्रवचन करने गये। लॉन मे खडे विद्यार्थियो के झुण्ड नारे लगाने लगे—'ऐ सफेदपोश मक्कारो, चले जाओ।' हम लोग उन नारो की उपेक्षा करते हुए प्रवचन हॉल मे पहुच गये। कौतुकवश विद्यार्थियो की भीड हॉल मे भी जमा हो गई। ऐसे अवसरो पर हम भारतीय धर्म और दर्शन से प्रवचन की पहल नही करते। पहल करते हैं—डार्विन के विकासवाद से या मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से। ताकि विद्यार्थी समझ सकें, जो बात हम जानते हैं, ये लोग उससे आगे तक भी जानते हैं। फिर हम लोग भारतीय धर्म, दर्शन और सस्कृति पर आ जाते हैं एव युगीन भाव-भाषा मे उनकी श्रेष्ठता उन्हें बताते है। चरित्र और अनुशासन को भी हम लोग तर्क-गम्य शैली से ही आवश्यक बताते हैं। अस्तु, जयपुर के उस कॉलेज मे पूरा प्रवचन सबने दत्तचित होकर सुना। शिष्टता-पूर्वक प्रश्न भी पूछे एव आते समय सबने खडे होकर हमारा अभिवादन किया।"

प० नेहरू ने कहा—"आपने अच्छा किया कि लडको की गुस्ताखी से घबराकर आप वापिस नही मुडे।" जाट कॉलेज, रोहतक के भी कतिपय रोचक संस्मरण उन्होने दिलचस्पी से सुने। बीच-बीच मे हम उन्हें सम्बन्धित साहित्य और पत्र-पत्रिकाए भी दिखाते जा रहे थे। हिन्दुस्तान टाइम्स के मुख-पृष्ठ पर विद्यार्थी

कार्यक्रम विषयक मेरा एक इटरव्यू छपा था। वह जब उन्हें बताया गया तो उन्होंने कहा—यह तो मैंने उसी दिन पढ़ लिया था, जिस दिन यह प्रकाशित हुआ था।

मैं भी देखना चाहूंगा

अवधान-प्रयोग से सम्बन्धित टाइम्स ऑफ इन्डिया जब उनके सामने रखा तो कहा—"यह भी मैंने पढ़ा है।" हमें लगा, अंग्रेजी के पत्रो मे प्रकाशित सवाद तो सीधे इनकी जानकारी मे आ जाते हैं, हिन्दी के पत्रो मे प्रकाशित समाचार इनके ध्यान मे नहीं आते; क्योकि हिन्दी समाचार पत्रो के दिखाने पर उन्होंने एक बार भी नही कहा कि यह मैंने पढा है। अस्तु, उन्होने आगे कहा—"यह प्रयोग कभी मैं भी देखना चाहूगा।" मैंने कहा—"दिल्ली मे अब तक दो कार्यक्रम मुनि महेन्द्र-कुमारजी 'प्रथम' कर चुके हैं—एक टाऊन हॉल मे तथा दूसरा कॉन्स्टीच्यूसन क्लब मे। अब भी चारो ओर से बहुत माग आ रही हैं। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति भवन मे भी एक प्रयोग रखना चाहते हैं। अच्छा होगा, आप उसी मे भाग लें।"

जागरूकता व स्मरण-शक्ति

वार्तालाप का क्रम बहुत ही सरसता से चल रहा था। बीच-बीच मे उनके सहायक आ रहे थे और हमारे बाद आने वाले अतिथियो की लिखित जानकारी उन्हे दे रहे थे। पर प० नेहरू वार्तालाप मे मग्न थे। वे मिलने वाली पर्चियो को देख-देख कर अपने पास रखे जा रहे थे। उनके यहा मिलने के लिए अधिकतम समय पन्द्रह मिनट का रखा जाता था। हम लोग वार्तालाप करते-करते पैंतालीस मिनट तक पहुच गये थे। फिर मैंने स्वय ही वार्तालाप का उपसंहार चालू किया। मैंने कहा—"पण्डितजी! आपके दायें-बायें बैठने वाले लगभग सभी लोग अणुव्रत सभाओ मे भाग ले चुके हैं एव अणुव्रतो पर अपने उद्‌गार व्यक्त कर चुके हैं, केवल आप ही शेष रह रहे हैं। मे चाहता हू, इस वर्ष आप भी किसी अणुव्रत सभा मे भाग ले।" इस पर उन्होने कहा—"अणुव्रत सभा मे भाग लेकर मुझे प्रसन्नता ही होगी। पर, सभा कहा होगी, किस विषय पर होगी।" श्री मोहनलालजी कठोतिया ने कहा—"यह कार्यक्रम हम बहुत ही बडे पैमाने पर रखना चाहते हैं। हम विदेशी राजदूतो को भी उसमे आमन्त्रित करेंगे।" बीच मे ही बात काटते हुए प० नेहरू बोले—"यह तो आप उल्टी वकालत करने लगे। राष्ट्रदूतो को बुलायेंगे तो मैं नही आ सकूगा। यह सभा तो अपने देश की बात करने के लिए होनी चाहिए न कि अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा के लिए।" मैंने बात सम्भालते हुए

कहा—"कार्यक्रम की निश्चित रूपरेखा बन थोड़े ही गई है। आप भाग लेना निश्चित कर लेंगे तो तदनुकूल ही सभा आयोजित की जायेगी। मैं चाहता हू, आप ऐसा समय दें, जब हम आचार्यश्री तुलसी को भी दिल्ली आमन्त्रित कर सकें। मैं चाहता हू, जिस सभा मे आप भाग ले, वह, मेरे सान्निध्य मे न होकर आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे ही हो।" प्रधानमत्री ने कहा—'हा, आप उन्हे बुला लीजिये।" मैंने कहा—"मैं तो तभी आमन्त्रित कर सकता हू, जब आप भाग लेने की बात निश्चित करले तथा हमे सभावित समय बता दे।"

यह लगभग अक्टूबर माह की बात है। प० नेहरू ने अगुलियो पर ही अपना अगला कार्यक्रम बनाना प्रारम्भ किया, नवम्बर मे अमुक-अमुक देशो के प्रतिनिधि यहा आने वाले हैं, दिसम्बर मे अमुक-अमुक देशो के राष्ट्रपति, प्रधानमत्री पहुचने वाले है, आदि-आदि। हिसाब लगाते-लगाते उन्होने कहा—दस दिसम्बर के आस-पास मे अणुव्रत सभा मे भाग ले सकूगा, आप कहे तो मै अभी तारीख भी निश्चित कर सकता हू। मैने कहा—तारीख निश्चित कराना तो अभी हम भी नही चाहते। आचार्यश्री आयेगे तब दुबारा आपसे बात करके ही दिन निश्चित करना बेहतर होगा।

इस घटना प्रसग पर मै उनकी स्मरण-शक्ति व जागरूकता देखकर प्रभावित हुआ। इससे पूर्व मुझे ऐसे केन्द्रीय मत्री अधिकाश मिले थे, जिनको अपने कल के कार्यक्रम को बता देने मे भी डायरी की या निजी सचिव की सहायता लेनी पड़ती थी।

वार्तालाप के अन्त मे उन्हे तेरापथ की हस्त-कलाए, लिपि-कलाए भी दिखलाई गई। लगभग पचास मिनट का प्रथम वार्तालाप बहुत ही आह्लादपूर्ण रहा।

दिन भर गुस्सा ही थोड़े करता हू

उठते-उठते मैने कहा—"पण्डितजी! मैने सुन रखा था कि प० नेहरू बहुत ही तेज मिजाज के व्यक्ति हैं। मैने सोचा था, न जाने किस तरह पेश आयेगे। पर, आज तो पचास मिनट से मै आपको प्रसन्न मुद्रा मे ही देख रहा हू।" यह सुनकर प्रधानमत्री अट्टहास पूर्वक हसे और मेरे पास ही खडे श्री गोपीनाथ 'अमन' की पीठ थपथपाई व बोले—"मुनिश्री! मेरे इन दोस्तो ने मुझे बदनाम कर रखा है। मै क्या दिनभर गुस्सा ही करता रहता हू।" मैंने भी अमन साहब पर कसे गये व्यग का उत्तर देते हुए कहा—"पण्डितजी! निठल्ले बैठे आपके दोस्त करें भी तो क्या? आपने ही तो इन्हे बेकार बिठाए रखा है।" अस्तु, बहुत ही हास्य और विनोद के साथ वार्तालाप सम्पन्न हुआ। हम कोठी से बाहर आये तो श्री गोपीनाथ अमन ने कहा—स्वामीजी! पण्डित नेहरू को इतने लम्बे समय तक इतनी एका-

ग्रता और तन्मयता से बात करते मैंने तो पहले कभी नही देखा। श्री गोपीनाथ अमन कांग्रेस के पुराने महारथी थे। दिल्ली प्रादेशिक मन्त्रिमण्डल मे वे मन्त्री भी रह चुके थे। पर, केन्द्र द्वारा प्रादेशिक व्यवस्था भंग कर दिये जाने पर उन दिनो वे खाली ही बैठे थे। सयोग की ही बात होगी, एक-आध सप्ताह के पश्चात् ही दिल्ली प्रशासन के सलाहकार के रूप मे मंत्रिस्तरीय उनकी नियुक्ति केन्द्र से हो गई। यह सब उस दिन के मधुर सहज सकेत का ही परिणाम अमनजी ने व अन्य सब ने माना।

अणुव्रत सभा में

चातुर्मास के पश्चात् ही मेरे निवेदन पर ग्यारह दिनों की पद-यात्रा कर आचार्यश्री तुलसी सरदारशहर से दिल्ली आये। महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हम लोगो ने समायोजित कर ही रखे थे। राष्ट्रपति भवन के कार्यक्रम के पश्चात् ही अशोका हॉल मे आचार्यश्री नेहरूजी व दलाई लामा आदि हम सबका मिलन हुआ। मैंने प्रधानमत्री को याद दिलाया, अब निर्धारित समय निकट आ गया है। अब तिथि निश्चित करने की अपेक्षा है। प० नेहरू ने कहा—"मै भूला नही हू।" अगले ही दिन प्रधानमत्री भवन मे आचार्यश्री के साथ उनका वार्तालाप हुआ और वही तिथि, समय आदि सब निश्चित करा लिये। 'सप्रू हाऊस' मे कार्यक्रम रखा गया। तीन ही भाषण मुख्यत हुए, आचार्यश्री, प० नेहरू व मेरा। प्रधान मत्री ने कहा—"उपस्थित महानुभाव आश्चर्य करते होगे कि धर्म-कर्म को नही मानने वाला जवाहरलाल नेहरू वृहत् साधु-मण्डली के साथ कैसे आ बैठा। पर, आप लोग समझें, हमे अपने देश का नव-निर्माण करना है। चारित्रिक निर्माण, उसमे विशेष महत्व रखता है। इस दुरूह कार्य मे आचार्यश्री तुलसी के नेतृत्व मे साधु-समुदाय जुटा है, इसका मै अभिवादन करता हू। कुछ दिनो पूर्व मैंने मुनिश्री से अणुव्रत आन्दोलन के विषय मे जो जाना, वह वास्तव मे ही महत्वपूर्ण था। तभी मैंने अणुव्रत सभा मे भाग लेने का निश्चय किया था।" अस्तु, उक्त कार्यक्रम से अणुव्रत आन्दोलन की वर्चस्वशीलता बनी ही, साथ-साथ प० नेहरू के तथारूप धर्मसभा में भाग लेने का भी तब तक वह विरल ही प्रसग था।

तदनन्तर प० नेहरू के साथ हमारा सम्पर्क बढ़ता ही गया। जब भी दिल्ली रहना होता, यथाप्रसग व्यवस्थित वार्तालाप होता ही। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' और मुनि मानमलजी आदि का मिलन बीच-बीच मे होता ही रहता। अणुव्रतो के लिए सदैव उनका सहयोगात्मक रुख रहा। मुनि मानमलजी जब से कार्य-क्षेत्र मे आये, वर्षीय कार्यक्रम का प्रकार उन्होने खोला। इसी सन्दर्भ में

उन्होंने दिल्ली प्रशासन में श्री गोपीनाथ अमन एवं मुख्य सचिव श्री एल० ओ० जोशी के माध्यम से भ्रष्टाचार निरोधक अणुव्रत सप्ताह की व्यवस्था की। यही सन्दर्भ प्रधानमंत्री नेहरू को बताया तो उन्होने कहा—केन्द्रीय सचिवालय के कर्मचारियो में भी ऐसे सप्ताह आप लोग चलाये, मै उसमे दिलचस्पी ले सकता हू।

यदा-कदा उनसे समसामयिक व दार्शनिक विषयो पर भी चर्चा हो जाती। एक बार मैने उनसे कहा—"भारत के बाहर इन दिनो सैनिक क्रान्तियो की बाढ-सी आ रही है। भारत मे ऐसा न हो, इस दिशा मे आपने क्या प्रबन्ध किया है?" उन्होने कहा—"हमारे यहां भी अब तक एक ही सेनाध्यक्ष होता था। अब जल, थल और नभ, इन तीनो के पृथक्-पृथक् सेनाध्यक्ष कर दिये हैं। वे सब अपने आप मे पूर्ण होते हैं।"

एक बार 'जैन फिलोसोफी एण्ड मोडर्न साइन्स' पुस्तक सस्था की ओर से उन्हे भेट की गई। वे गौर से मुख-पृष्ठ पढ़ रहे थे कि मैने पूछा—"साहित्य पढने के लिए आपको समय मिल जाता है?" उन्होने कहा—"बहुत पुस्तके तो नही पढ पाता, पर, यह पुस्तक तो अवश्य पढूगा, क्योकि इसका सम्बन्ध दर्शन और विज्ञान दोनो से है।" मैने हसते हुए कहा—"धर्म के विषय मे आपका किनना क्या विश्वास है, आप लोग तो इस विषय में कुछ अन्यथा ही सोचते हैं।"

प्रधानमत्री प० नेहरू ने कहा—"अहिसा, सत्य आदि धर्मों मे तो मेरा विश्वास है, पर, धर्म के नाम पर चलने वाले अन्ध-विश्वासो, रूढियो व अर्थ-हीन क्रिया-काण्डो मे मेरा विश्वास नही हैं।" यह विशेषत उल्लेखनीय है कि देश मे प० नेहरू नास्तिक ही समझे जाते थे, पर, उनके उक्त उत्तर से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति कुछ भिन्न थी।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के अवधान-प्रयोगो को उन्होने जिस उत्कट रुचि से देखा, इससे भी फलित होता है कि वे आत्मिक ऊर्जा के विकास मे ही स्पृहाशील थे।[1]

आपको तो नहीं भूला हूं

प्रत्येक बार के मिलन मे उनकी स्मरण-शक्ति व जागरूकता की प्रखरता तो परिलक्षित हो ही जाती थी। एक बार बहुत अन्तराल के मिलन पर मैने पूछ लिया—"आपसे तो प्रतिदिन नये-नये लोग मिलते हैं, उनमे से बहुतो को तो आप भूल ही जाते होगे?" उत्तर मिला—"आपको तो नही भूला हू।"

—०—

१ विशेष विवरण के लिए देखें, इसी पुस्तक का अवधान-प्रयोग प्रकरण।

: ११ :

लक्ष्मी के ही नहीं, सरस्वती व कला के भी उपासक

(श्री घनश्यामदासजी बिड़ला के साथ संस्मरणात्मक प्रसग)

दिल्ली मे जन-सम्पर्क का क्रम चल रहा था। देश की विशिष्ट प्रतिभाओ से विचार-विनियम करने मे आनन्द की अनुभूति के साथ-साथ उनकी विरल विशेषताओ को समझने का भी अवसर बनता था। मैं चाहता था, देश के शीर्षस्थ उद्योगपति श्री घनश्यामनासजी बिडला से कभी विचार-विनिमय हो। मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' अनेक बार बिडला भवन भी गये, पर, कोई सम्पर्क-सूत्र नही बना। श्री घनश्यामदास जी के बन्धुवर श्री जुगलकिशोर जी बिडला अनेक बार हम लोगो के सम्पर्क मे आया-जाया करते थे। हम लोगों ने उनसे कहा—कभी घनश्यामदास जी से विचार-विनिमय कराइये। उन्होने कहा—स्वामीजी! आपके काम का आदमी तो मैं ही हू, वह तो दूसरे ही क्षेत्र का व्यक्ति है। इतर कार्यों मे उसकी कोई अभिरुचि नही रहती। अस्तु, स्थिति समझ कर हम लोगो ने भी उनसे सम्पर्क करने का प्रयत्न छोड दिया।

आपात-सम्पर्क

वर्षो पश्चात् एक दिन आकस्मिक रूप से स्वतः ही उनसे सम्पर्क हो गया। हमे राष्ट्रपति भवन जाना था। राष्ट्रपति से बातचीत का समय सुनिश्चित था। पुरानी दिल्ली से प्रात.काल ही चल पडे थे। कुछ समय हाथ मे बच रहा था। सोचा माननीय मोरारजी भाई की कोठी बीच मे ही आती है, उनसे मिल भी ले तथा कुछ देर विचार-चर्चा भी कर ले। उनकी कोठी मे गये तो बरामदे मे हमारे से पाच कदम आगे पहुचने वाले किसी महानुभाव का अभिवादन वे कर रहे थे। हम

पहुंचे तो हमारा भी अभिवादन उन्होंने किया व हम लोगो की ओर संकेत करके बोले—आप लोग इन्हे जानते हैं ? मैंने कहा—नही। उन्होंने कहा—ये घनश्याम-दास बिडला हैं। बिडलाजी ने भी तत्क्षण स्मित मुद्रा मे हमारा अभिवादन किया। मैंने कहा—बिड़लाजी ! आप से तो हमारी बड़ी शिकायत है। वह यह कि आप राजस्थान के हैं और हमारा अणुव्रत-आन्दोलन भी राजस्थान से चला है। देश के कोने-कोने से उसे समर्थन मिल रहा है। आपने अभी तक उस सन्दर्भ में न तो कोई जानकारी ही प्राप्त की है, न अब तक कोई उद्‌गार ही व्यक्त किये हैं। श्री बिड़लाजी ने कहा— अब समय दीजिये, मैं जानकारी करूगा। आप कहा है ? मैं परसो आपके पास आना चाहता हू। मैंने सोचा, इनका आना किसी प्रयोजन-विशेष से टल गया तो फिर इन्हे पकड पाना आसान न होगा। वार्तालाप की बात अधर मे ही रह सकती है। मैंने कहा—परसों हम ही लोग आपके बिडला भवन आ जायेगे। उन्होने कहा—बडी कृपा होगी।

मोरारजी भाई—"मुनिश्री ! घनश्यामदास जी से मुझे दस ही मिनट बात करनी है, अत पहले मैं इनसे बात कर लू। आपके साथ फिर घण्टा भर बैठ सकूगा।"

मैं—"आज तो हमे दस-पन्द्रह मिनट का ही समय है, क्योंकि निर्धारित समय में ही राष्ट्रपति भवन पहुचना है।"

मोरारजी भाई—"तब फिर पहले आपके साथ बैठ जाता हू।"

हम बिल्डिंग के दूसरी ओर के बरामदे की ओर चल पडे, क्योंकि अक्सर हम वही बैठकर उनसे बाते किया करते थे। श्री बिड़लाजी एक अन्य कमरे मे जाकर बैठ गये। मैंने अपने सहवर्ती मुनियो से कहा—तुम लोग श्री बिडला जी के खाली समय का उपयोग करो। मोरारजी भाई से हम कुछ लोग वार्तालाप कर ही लेगे। अस्तु, दस-पन्द्रह मिनट के समय का दोनो ओर का उपयोग हो गया। हम सब कोठी से बाहर निकले तब उन मुनियो ने बताया कि श्री बिडलाजी ने बडी प्रसन्नता से बाते की। उन्होने जिज्ञासाए की कि आपके गुरु आचार्य श्री तुलसी वे ही तो हैं, जो कुछ वर्षों पूर्व कलकत्ता आये थे। वहा उनका विरोध भी चला था। मूत्र प्रकरण भी चला था, आदि-आदि। हम लोगो ने पर्याप्त विस्तार से उन्हे यथार्थता की जानकारी दी। अब तक वे किन्ही तेरापथी साधुओ के सम्पर्क मे नही आये थे। अस्तु, तदनन्तर हम लोग राष्ट्रपति भवन पहुच गये। यथोचित विचार-विनिमय हो गया।

दिल्ली के बिड़ला भवन में

तीसरे दिन यथासमय हम लोग पुरानी दिल्ली से नई दिल्ली बिडला भवन पहुच गये। श्री घनश्यामदासजी व उनके अनेको पारिवारिक वहा उपस्थित थे। गाधीवादी विचारक श्री वियोगी हरि जी को भी विचार-विनिमय में भाग लेने हेतु बुला रखा था। हमारे साथ श्री नेमचन्दजी गधैया आदि दो-तीन समाज के अग्रणी थे। कमरे मे एक चौकी लगा रखी थी। एक सामने दरी बिछी थी। सभी लोग यथोचित ढग से बैठ गये। वार्तालाप का प्रथम विषय था—अणुव्रत। विस्तार से उन्हे उद्गम से अब तक की जानकारी दी गई। वे प्रभावित भी लगे।

दो को छोड़िए—दो को अपनाइए

अपने उद्गार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा—"स्वामीजी! इस सन्दर्भ मे मेरी राय तो यह है कि आप अपने कार्य मे दो को छोड दे तथा दो को अपना ले तो अणुव्रत आन्दोलन बहुत आगे बढ जायेगा। छोड दीजिये आप इन नेताओ को और हम व्यापारियो को। इनमे कोई परिवर्तन आनेवाला नही है। आपके उपदेश व्यर्थ जायेंगे। अपना लीजिये आप विद्यार्थियो को और मजदूरो को। इन दोनो मे सस्कार परिवर्तन की गुजाइश है। विद्यार्थी नई पौध है, अत उन्हे अच्छे सस्कारो मे ढाला जा सकता है। मजदूरो मे मद्यपान आदि बुराइया प्रचुर मात्रा मे है। इन बुराइयो से इनका पारिवारिक जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। वे अपढ़ होते है, पर धर्म और धर्म-गुरुओ मे उनकी कुछ श्रद्धा होती है, अत वहा आपका अणुव्रत अच्छा चल सकता है।

मुझे उनकी वे दोनो ही बाते बहुत ही यथार्थ लगी। उनकी इस अनुभूत धारणा से मै प्रभावित हुआ। थोडे शब्दो मे बहुत गहरी बात कह दी गई थी।

साहित्य प्रेम

वार्तालाप का दूसरा पहलू था—साहित्य। समाज की ओर से पुस्तको का एक बडा सैट उन्हे भेंट किया गया। एक-एक पुस्तक को वे ध्यान से देखने लगे। मैंने कहा—"क्या आपको साहित्य पढने का भी समय मिलता है?" उत्तर मिला—"ऐसा दिन कोई नही जाता कि मैं घण्टा-दो घण्टा साहित्य नही पढ़ लेता हू।" मैंने कहा—आप द्वारा लिखित पुस्तको को भी मैंने पढ़ी है। सचमुच ही उनमे गम्भीर दोहन है। मेरे 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' ग्रन्थ उन दिनो मुद्रित हो रहा था। कुछ फर्मे हमारे पास थे। उन्हे देखने मे उन्होंने विशेष दिल-

चस्पी ली। कहा—"महावीर और बुद्ध को तो मैं तुलनात्मक रूप से पढ़ना ही चाहता हू। फर्मे ज्यो-ज्यों छपकर आयें, मुझे मिलते रहें तो भी मैं पढ़ता रहूगा। यह मेरी उत्सुकता का विषय है।

वार्तालाप का तीसरा पहलू था—तेरापंथ की कलात्मक वस्तुओ का दिग्दर्शन। सूक्ष्म लिपि, नारियल से बने प्याले, चित्र सामग्री आदि सभी चीजें उन्होने देखी और मुग्ध हुए।

औपचारिकताएं सम्भव नहीं

वार्तालाप के अन्त मे उनसे मैंने कहा—"हमारे आचार्यश्री तुलसी शीघ्र ही दिल्ली आ रहे हैं। हम चाहते है, आपका उनसे मिलन हो।" श्री बिडलाजी ने कहा—"स्वामीजी ! यह सम्भव नहीं होगा। अणुव्रत—आन्दोलन के सम्बन्ध मे और आपके धर्म-सघ के विषय मे जानकारी तो आपसे मिल गई। केवल औपचारिकता के लिए मिल पाना मेरे बस की बात नही है। मैं व्यस्त रहता हूं। आचार्य बिनोवा भावे से मैने कहा था, मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप सूचित करवा द। मैं उसे सहर्ष करना चाहूँगा, पर, आप चाहें कि घनश्यामदास मेरे साथ पदयात्राओ मे चले, यह नामुमकिन है। आप लोगो से भी कहता हू, आप व आचार्यश्री मेरे योग्य कुछ भी सूचित करायेगे, यथासम्भव मैं सहर्ष करना चाहूगा।" उनकी इस सहज स्पष्टवादिता ने भी मुझे प्रभावित किया।

थोथे आश्वासन नहीं

मैंने कहा —"अच्छा तो मैं आपसे होने योग्य एक कार्य अभी आपको बता देता हू। आचार्यश्री तुलसी दिल्ली आ रहे हैं, हम नई दिल्ली मे वही उन्हे ठहराना चाहते है। आप अपने मकानो मे से किसी एक मकान मे उक्त व्यवस्था करवा दे।"

बिडलाजी—"मुझे अभी तो यह मालूम ही नही है कि हमारा कौन-सा मकान खाली है और वह आपके काम आ सकता है।"

मैंने कहा—"एक मकान हमने देख रखा है। हिन्दुस्तान टाइम्स की ओर से तीस लाख रुपये मे अभी-अभी एक बडी बिल्डिंग कर्जन रोड पर खरीदी गई है। वह टूटकर हिन्दुस्तान टाइम्स की बाइस मजिली बिल्डिंग बननी है। अब तक वह विशालकाय कोठी पूरी खाली है। वह हमे एक महीने के लिए चाहिए।"

श्री बिडलाजी—"आपकी सस्था की ओर से कृष्णकुमार के नाम एक पत्र डलवा दीजिये। यथासम्भव हो ही जायेगा।"

मैंने कहा—"हम अभी तक कृष्णकुमारजी को नही जानते, वे हमे नही

जानते। पत्र हमारी सस्था का चला जायेगा, पर, स्वीकृति कराने का दायित्व तो आपका ही रहेगा।"

बिड़लाजी—"यह मैं स्वय समझता हू।"

अस्तु, जो उन्होंने कहा, यथासमय सम्पन्न कराया। बड़े लोगो के थोथे आश्वासन वाली बात नही निकली।

सादा जीवन, उच्च विचार

वार्तालाप के अनन्तर श्री बिड़लाजी ने भिक्षा ग्रहण करने की बात कही। जैन साधु की भिक्षाचरी के नियम उन्हे बताये गये व भिक्षाचारी की गई। उस समय का भोजन भी हमने बिडला भवन के विजय कक्ष मे बैठ कर किया। यह अनुभूति हुई—इतने बडे लोग हैं, कितना सादा है इनका रहन-सहन। न तो कोठी में ही आरामतलब्बी की कोई विशेष साज-सज्जा है और न ही भोजन मे ही कोई विशेष नवाबीपन। बस, औसतन आदमियो का रोजमर्रा का-सा भोजन। मुझे लगा—यही है, सादा जीवन, उच्च विचार का आदर्श।

पिलानी विद्यापीठ

उसी वर्ष हम लोग राजस्थान से पिलानी होकर दिल्ली आये थे। विद्यापीठ मे ही ठहरना हुआ। बिडला भवन से चलते-चलते जब यह जानकारी दी गई तो उन्हे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा—"आप लोग एक चातुर्मास पिलानी मे ही करे। विद्यार्थी सस्कारित होगे। हम लोगो ने यह सस्थान पढे-लिखे बाबू लोग निकालने के लिए ही खडा नही किया है, हम चाहते हैं, इसमे भारतीय सस्कृति से सस्कारित होकर ही विद्यार्थी निकले। आप लोग चातुर्मास करेंगे तो व्यवस्था सब हमारी रहेगी। मैं स्वय भी बीच-बीच मे आ सकूगा।"

मैंने कहा—"आपका प्रयोजन बहुत मनोज्ञ है। सभव है, कभी वह पूरा भी हो सके।"

कला-प्रेम भी

प्रस्तुत लेख के उपसहार में मैं एक सस्मरण भी लिख देना चाहूगा। अगले ही वर्ष श्री मोरारजी भाई ने अकस्मात् हमे पूछा—"आप लोगो ने घनश्यामदास जी बिडला को कुछ कलात्मक चीजें भी दिखलाई थी ?" मैंने आशकित मन से कहा—"दिखलाई तो थी। आप क्यो जानकारी माग रहे हैं ?" श्री मोरारजी भाई ने हसते हुए कहा—"वे नारियल की बनी हुई चीजें उन्हे बहुत पसन्द आई। उन्होंने

मुझे कहा—कुछ चीजें देखकर तो मन में आया, कि मुनिजी से ये चीजें मांग ही लूं। पर उनके नियमों का मुझे पता नहीं, अत मांगी नहीं। मैंने कहा—उनकी इस बात पर आपने क्या कहा। मोरारजी भाई हंसकर बोले—मैंने कहा, घनश्याम दास! इतना संग्रह तो तुम्हारे पास है, फिर भी और माग लेने की बात ही तुम्हारे मन मे आई। मुनियों से तो कोई त्याग की प्रेरणा लेनी चाहिए थी।"

श्री मोरारजी भाई के इस मधुर सस्मरण को सुनकर हमने जाना—श्री बिड़लाजी लक्ष्मी के ही नहीं, सरस्वती व कला के भी उपासक हैं।[1]

—०—

१ प्रस्तुत लेख श्री घनश्यामदासजी बिड़ला के दिवगत होने के पश्चात् दैनिक हिन्दुस्तान ने अपने प्रथम रविवारीय विशेषांक में प्रमुखता से प्रकाशित किया।

: १२ :

जब राष्ट्रपतिजी की आंखें डबडबा गईं

(डा० राजेन्द्रप्रसाद के साथ दो हृदयस्पर्शी संस्मरण)

देश के शीर्षस्थ नेताओ मे डा० राजेन्द्रप्रसाद ही प्रथम व्यक्ति माने जा सकते है, जिन्होने तेरापथ को व अणुव्रत को परखने मे पहल की तथा जीवन भर श्रद्धासिक्त व सहयोगी बने ही रहे। उनके आदि सम्पर्क के श्रेयोभाक् निर्विवाद रूप से श्री कन्हैयालालजी दूगड (रतनगढ) ही रहे हैं।

सन् १९४९ की बात है। आचार्यश्री का चातुर्मास जयपुर मे था। बाल-दीक्षा-प्रसग के नाम पर विरोध अपने ज्वार पर था। राजस्थान के प्रथम मुख्यमत्री श्री हीरालालजी शास्त्री व उनका सारा सरकारी तत्र विरोध-पक्ष मे खडा था। अन्य धर्माचार्य व समाज-सुधारक विरोधी अभियान के प्रेरक थे ही। तेरापथी समाज के अग्रणी-अग्रणी महानुभाव जयपुर मे ही केन्द्रित हो रहे थे। पक्ष व विपक्ष, दोनो ही शक्ति-प्रदर्शन मे तीव्रता से चल रहे थे। तेरापथी समाज के अग्रणी लोगो की मीटिंग मे प्रश्न उठा—कोई राष्ट्रीय स्तर का नेता अपने यहा आमत्रित होकर आये व अपनी स्थिति को समर्थन दे तो विरोधी हतप्रभ होगे और अपने समाज का वर्चस्व बढेगा। तब तक तेरापथ के सम्पर्क सीमित थे। केन्द्रीय नेताओं तक पहुच भी नही थी। श्री कन्हैयालालजी दूगड़ उस समय तेरापथ के उदीयमान नेताओं मे एक थे। आगे चलकर जो तेरापथी महासभा के प्रधानमत्री व भगवान् महावीर के २५००वे निर्वाण जयन्ती महोत्सव की राष्ट्रीय समिति के सदस्य आदि महत्वपूर्ण पदो पर रहे है। उनकी आयु भी उस समय २५ वर्ष थी। उन्होने कहा, बुजुर्ग लोग आज्ञा करे तो मै डा० राजेन्द्र प्रसाद को आचार्यश्री के दर्शन यही जयपुर मे कराने की चेष्टा करू। समाज के अग्रणी लोगो ने तो इसे छोटे मुंह बड़ी बात माना, पर, परोक्ष रूप से आचार्यश्री ने व मैंने उनको यह कार्य कर बताने के लिए प्रोत्साहित ही किया। हमे इस बात की पूर्ण अवगति थी कि व्यवसायार्थ पटना रहने के कारण

बिहार के ससद सदस्यो व नेताओं से इनका पूरा तालमेल है और राजेन्द्र बाबू बिहार के ही हैं। राजेन्द्र बाबू उस समय कोस्टीट्यूशन असेम्बली के अध्यक्ष थे।

समाज के वरिष्ठ प्रतिनिधियो का मण्डल दिल्ली पहुचा। ये भी अपने व्यक्तिगत स्तर से दिल्ली गये। राजेन्द्र बाबू तक सम्पर्क जोडने मे इनको पहले सफलता मिली, अत. समस्त प्रतिनिधि मण्डल मे ये ही अगुआ हो गये। स्वय राजेन्द्र बाबू ने भी अपने पत्र मे लिखा—

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथ समाज की ओर से श्री कन्हैयालाल दूगड के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मण्डल मुझसे मिला और आगामी १६ अक्टूबर को होने वाले दीक्षा समारोह पर चलने का आग्रह किया, लेकिन अवकाशाऽभाव से मैं नही आ सका।

इस समाज के सिद्धान्त सर्वोदय समाज की विचार-धारा के अनुरूप होने के नाते मै इसकी सफलता चाहता हू। नव दीक्षित साधु एव आचार्यश्री तुलसी जी के सफल जीवन की कामना करता हू।

राजेन्द्र प्रसाद

८-१०-४६

कुछ ही समय पश्चात् इसी ध्येय से राजेन्द्र बाबू जयपुर आये भी। आचार्यश्री के दर्शन किये। तेरापथ की विशेषताओ से प्रभावित हुए। उनका भाषण भी समर्थनात्मक व भावपूर्ण था। राजेन्द्र बाबू का उन परिस्थितियो मे जयपुर आना सचमुच ही उफनते दूध मे पानी के छीटो जैसा प्रमाणित हुआ।

मेरा प्रथम सम्पर्क

मेरा पहला सम्पर्क उनसे सन् १९५३ मे राष्ट्रपति भवन मे हुआ। उक्त समायोजन के श्रेयोभाक् स्वनाम विश्रुत नेमीचन्दजी गधैया एव श्री नेमीचन्दजी पीचा (लल्लूजी) थे। उन दिनो उक्त दोनो महानुभावो का भी राज-परिवारो मे एवं दिल्ली मे व्यापक सम्पर्क था। अणुव्रत आन्दोलन उन दिनो दैनिक पत्रो की सुर्खियो मे आ ही रहा था। हम चाहते थे, राजेन्द्र बाबू का झुकाव भी इस ओर बने। लगभग घण्टा भर के वार्तालाप मे मैंने उन्हे बताया—हम लोग किस प्रकार विद्यार्थियो- व्यापारियो एवं राजकर्मचारियो मे नैतिक प्रतिज्ञाओ का अभियान चला रहे हैं। दैनिक हिन्दुस्तान व दैनिक नवभारत टाइम्स की सम्बन्धित कतरने भी उन्हे दिखाई। राष्ट्रपतिजी ने एक-एक कतरन को उलट-पलट कर देखा व बोले—बहुत प्रसन्नता की बात है कि पत्रकार लोग भी अणुव्रत आन्दोलन को महत्त्व देने लगे हैं।

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू स्वभाव से ही धर्म-परायण व श्रद्धा-परायण व्यक्ति थे। साधुओं द्वारा प्रेरित अणुव्रत आन्दोलन उन्हें विशेष रुचा। उनका मानना था—उपदेश करने के अधिकारी साधु ही होते हैं; क्योकि उनकी कथनी व करनी मे द्वैध नही होता। नेता लोग अच्छी बात भी कहेंगे तो भी जनता उसे कोई राजनीति ही समझेगी।

इस प्रथम सम्पर्क के पश्चात् राजेन्द्र बाबू से हमारी घनिष्ठता बढ़ती ही गई। समय-समय पर उनसे मिलना होता। अणुव्रतो की प्रगति का ब्योरा बताया जाता। उन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' द्वारा सम्पादित हस्तलिखित पत्रिका मे उन्होने अणुव्रतो पर अपना प्रथम लेख दिया। राष्ट्रपतिजी से उनका व्यक्तिगत सम्पर्क भी सुन्दर रूप से सध गया। अनिर्धारित रूप से भी वे राष्ट्रपति भवन पहुच जाते तो भी आवश्यक विचार-विनिमय स्वय राष्ट्रपति उनसे कर लेते। सम्बन्धित सचिव भी सदा सहयोगी ही रहते। राष्ट्रपतिजी की निजी सचिव ज्ञानवती दरबार ने उनके दिवगत हो जाने के पश्चात् उनके जीवन पर जो पुस्तक लिखी है, उसमे उन्होने लिखा है—**राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जिन धर्म-गुरुओ से प्रभावित थे, उनमे एक मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम' थे।** अस्तु, यह तो सुविदित ही है कि राष्ट्रपतिजी ने अपनी ओर से ही मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के अवधान-प्रयोग राष्ट्रपति भवन के अशोका हॉल मे करवाये और उस कार्यक्रम मे प० नेहरू, डा० राधाकृष्णन् और शीर्षस्थ लोगो ने भी भाग लिया था।

विश्व-मैत्री-दिवस

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू से हमारे सम्पर्क का इतिहास बहुत लम्बा है, पर, यहां मैं एक-दो उनसे सम्बन्धित हृदयस्पर्शी सस्मरण ही प्रस्तुत कर देना चाहता हू। हमारे यहा एक विराट स्तर पर विश्व-मैत्री-दिवस मनाने की योजना बनी। दिल्ली अणुव्रत समिति के साथ यूनेस्को आदि दिल्ली स्थित अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ को लिया गया। राजदूतो से भी सम्पर्क साधा गया। उक्त आयोजन मे राजेन्द्र बाबू ने भाग लेने का आश्वासन दे दिया था। केवल तिथि निश्चित होना ही शेष था।

समय बीतता गया, राष्ट्रपति भवन से तिथि निश्चित होकर नही आई। पता लगाया गया तो सचिवो ने बताया—राष्ट्रपतिजी दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं। कहते हैं—सुशील मुनिजी के व मुनि नगराजजी के आयोजनो की प्रतिस्पर्धा-सी चल रही है। दोनो ही पुन पुन राष्ट्रपति भवन का उपयोग करना चाहते हैं। इस स्थिति मे मेरा दोनो ओर ही जाना अच्छा नही। यह विशेषत. उल्लेखनीय है कि

उन्हीं दिनों राष्ट्रपतिजी दोनों ओर के एक-एक कार्यक्रम मे भाग ले चुके थे—विश्व-धर्म-सम्मेलन में एव राष्ट्रपति भवन मे आयोजित अवधान प्रयोग मे। अब हमारे यहां मैत्री दिवस मे भाग लेने की बात थी। उक्त तीनो आयोजन सहज समायोजित थे। प्रतिस्पर्धा का कोई आधार नही था, पर, राष्ट्रपतिजी को वैसा लग जाना अस्वाभाविक भी नही था, क्योंकि लगभग दो-तीन महीनों की अवधि मे ही तीनो कार्यक्रम सम्पन्न हो रहे थे। हो सकता है, कुछ लोगो ने उन्हें ऐसा बताकर भ्रमित भी किया हो। प्रतिस्पर्धा का भाव होता भी कैसे, मैंने स्वय विश्व-धर्म सम्मेलन मे भाग लिया था तथा इस मैत्री दिवस मे मान्य सुशील मुनिजी भाग लेने वाले थे।

हमारे यहा गाधी ग्राउण्ड के विशाल प्रांगण मे समारोह करने की तैयारिया हो चुकी थी, पर, राष्ट्रपति भाग न लें तो लोगो को इतना हगामा बेकार का लगता। मेरे लिए यह कुछ चिन्ता का विषय बना। राष्ट्रपति भवन मे वार्तालाप का कार्यक्रम निश्चित किया। एकान्त वार्तालाप था। मैंने साफ-साफ कहा—राष्ट्रपतिजी ! आप धर्म व सस्कृति मे रुचि रखते है, इसीलिए हम आपका पुन -पुन उपयोग करना चाहते हैं। आपको यह लगता हो कि ये लोग किसी स्पर्धात्मक भाव से या अपने नाम की वाहवाही के लिए ही मेरा उपयोग कर रहे हैं तो आप समझिए, राह चलते भी हम राष्ट्रपति भवन की ओर झाकना पसन्द नही करेंगे। अस्तु, यह सब सुनते ही राष्ट्रपतिजी तिलमिला से गये। बोले, नही-नही, ऐसी कोई बात नही है। मै मैत्री-दिवस मे अवश्य भाग लूगा। पास ही खड़े अपने निजी सचिव विश्वनाथ शर्मा से बोले—अपना कार्यक्रम देखकर आज ही मैत्री दिवस के लिए कोई तिथि निश्चित करवा दो।

उस दिन राजेन्द्रबाबू की सज्जनता व सहिष्णुता का जो प्रभाव मेरे मानस पर पडा, वह आज भी ज्यो का-त्यो अकित है। मैंने जाना, राजेन्द्र बाबू हृदय के इतने कोमल हैं, वे किसी को नाराज देख ही नही पाते, फिर साधु-सन्तो की तो बात ही क्या ? अस्तु, विश्व-मैत्री-दिवस निर्धारित प्रकार से सानन्द सम्पन्न हुआ।[1]

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और प० नेहरू के मतभेद की चर्चाए समाचार पत्रो मे आने लगी थी। मैं अन्तरग रूप से भी कुछ परिचित था। उन्ही दिनों एक बार हमारा मिलन राष्ट्रपतिजी से हुआ। आवश्यक बातो के अनन्तर मैंने सहवर्ती सन्तो व कार्यकर्त्ताओ को विलग कर दिया। राष्ट्रपतिजी ने भी अपने अगरक्षक आदि को वहा से हटा दिया। प० नेहरू से चल रहे मतभेद की चर्चा मैंने प्रारम्भ की। वे

---

१ विशेष विवरण के लिए देखें, 'मैत्री दिवस' पुस्तिका।

भी खुल गये। सारा हार्द समझाया। अपने आत्म-सम्मान पर पड़ने वाली चोटों से वे मर्माहत थे। आखें डबडबा गईं। यहा तक उनके मुह से निकला—**लोग समझते हैं, राजेन्द्र प्रसाद जैसा सुखी व्यक्ति आज देश में कौन होगा, पर, मैं समझता हू, अभी मेरे जैसा दु खी व्यक्ति ही देश में कोई नहीं होगा।** उनके इन उद्‌गारों से मेरी भी आत्मा द्रवित-सी हो उठी। लगा, ऊपर से हमेशा ही हसमुख रहने वाला व्यक्ति अन्तःकरण मे कितनी वेदनाएं संजोए बैठा है। नियति का खेल अद्‌भुत है। किसी को हसा देना या रुला देना उसके बायें हाथ का खेल है। अस्तु, मुझे तो इसी बात मे सन्तोष है कि राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने अपनी बाते कहकर मन हल्का करने का उपयुक्त साधन मुझे समझा। उन दो के बीच मे मैं कर भी क्या सकता था। मन मे धारणाएं आज भी बनी हैं, राजेन्द्र बाबू जैसा सात्विक, शालीन व निश्छल व्यक्तित्व विरल ही पैदा होता है।

—०—

: १३ :

परिस्थितियां भी व्यक्ति का बदलती हैं

(आचार्य कृपलानी के साथ दो संस्मरण)

अणुव्रत आन्दोलन जब चला नही था । तेरापथ भी जब प्रगति की धारा मे अग्रसर नही हुआ था। तब भी समाज मे एक क्रम चलता था, शीर्षस्थ लोगो को मुनिजनो व आचार्यों के सम्पर्क मे लाना । इस कार्य मे श्रावकजन ही तत्पर रहते। आचार्यश्री तुलसी एक बार रतनगढ मे थे । आचार्य कृपलानी किसी विशेष कार्य से फतेहपुर आये थे । उस समय वे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सर्वोच्च पद पर थे । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के कुछ ही पूर्व की बात है। उस समय देश मे सर्वाधिक गरिमापूर्ण राष्ट्रीय पद वही था। श्री छोगमलजी चोपडा व श्री नेमीचन्दजी पीचा (लल्लूजी) आदि समाज के प्रतिनिधियों ने आचार्य कृपलानी को रतनगढ लाना चाहा । सम्पर्क का पुराना तौर-तरीका चलता था। पार्टी के लिए थैली भेंट करने का आश्वासन भी उन्हे दिया गया। रतनगढ वे आये, पर, उनका मिजाज कुछ अजीब ही निकला । आचार्यश्री के सन्मुख उन्हे बिठाया गया । वे उनकी ओर पीठ करके तथा जनता की ओर मुह करके बैठे। आचार्यश्री ने वार्तालाप प्रारम्भ किया तो हर बात का जवाब वे बेरुखी से देने लगे । सब बातो का साराश यह रहा कि उन्होने साफ-साफ कह दिया—"मैं यहा सुनने नही आया हू, जनता को सुनाने के लिए आया हू ।" अस्तु, उनकी बेरुखी का कारण यह भी हो सकता था कि तब तक अपने यहां किसी विशेष आगन्तुक को मंच पर जनता के समक्ष बिठाने का तथा सभा मे उनका भाषण करवाने का क्रम भी विकसित नही हुआ था । उस दिन भी जनता महस्रो की सख्या मे वहा अवस्थित थी। पर, कार्यक्रम सिर्फ आचार्यश्री से वार्तालाप तक ही घोषित था। उनकी बेरुखी का एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि राजस्थान के काग्रेसी नेता उस समय तेरापथ के प्रति बाल-दीक्षा आदि कारणो से सहानुभूति नही रखते थे। खैर, कुछ भी हो, श्रावक

समाज मे वह काफी असन्तोष का कारण बन गया। अलग से उन्हें इक्कीस हजार की थैली भी दे देनी पडी। क्योकि सबके मन में भय था कि आश्वासन पूरा नही किया गया तो न जाने ये समाज के लिए क्या-क्या गजब ढा सकते हैं।

रूक्षता मधुरता में बदल गई

उक्त घटना-प्रसग के लगभग ६-७ वर्ष पश्चात् की बात होगी। भारत की राजधानी दिल्ली मे हम लोगो का कार्य गति पकड़ गया था। अणुव्रत विचार परिषद् में शीर्षस्थ लोग भाग लेने लगे थे। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का वैयक्तिक सम्पर्क जोरो पर था। मैंने उनसे कह दिया था, शीर्षस्थ लोगो मे आचार्य कृपलानी से सम्पर्क करने की हमे पहल नही करनी है। उपयुक्त अवमर से ही उन्हे सम्पर्क मे लाना है। समयान्तर से वह चिन्तन भी ठीक बैठ गया। विद्यार्थी कार्यक्रम जोरो से चल पडा था। स्कूलो, कालेजो के इतने आमन्त्रण आने लगे थे, हम सबको स्वीकार नही कर पाते थे। इसका एक कारण यह भी था कि हम जहा प्रवचन के लिए जाते, वह शिक्षा केन्द्र सम्बन्धित सवाद प्रकाशित हो जाने के कारण ख्यापित हो जाता।

डाबडीवाल परिवार तेरापथ का जाना-माना व प्रभावशाली परिवार रहा है। उस परिवार का श्री जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपालानी, डा० राममनोहर लोहिया आदि समाजवादी नेताओ से घनिष्ठ सम्पर्क रहता था। स्वाधीनता से पूर्व भी डाबडीवाल परिवार उनके योग-क्षेम को अपना दायित्व समझता था। उसी परिवार के ही कोई बन्धु एक बार दिल्ली मे आचार्य कृपलानी से मिले। श्रीमती सुचेता कृपलानी भी वही थी। सहज ही उन लोगो ने पूछ लिया—"अरे भैया! दिल्ली मे आजकल मुनि नगराजजी कौन आये हुए हैं? अच्छा कार्य कर रहे है। पत्रो मे प्रतिदिन चर्चा रहती है।" डाबडीवाल बन्धु ने सहज ही कहा—"हमारे तेरापथ समाज के ही मुनि हैं।"

उन्होने कहा—"हम दोनो तो सोच ही रहे थे कि डाबडीवाल बन्धुओ मे से किसी से इस सम्बन्ध मे कोई जानकारी लें तथा मुनिश्री से मिले भी। श्रीमती सुचेताजी ने कहा—"मैं अपने सम्बन्धित विद्यालयो मे भी उनका प्रवचन करवाना चाहती हू।"

अस्तु, कृपलानी दम्पती के मनोभाव मेरे तक पहुचे और मुलाकात का समय निश्चित कर दिया गया। हम लोग उस समय नया बाजार स्थित श्री वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन मे रह रहे थे। सायकाल तीन-चार बजे का उनके आगमन का समय था। पति-पत्नी दोनो व कतिपय लोग उनके साथ आये। आचार्य कृप-

लानी एवं श्रीमती कृपलानी दोनो के हाथों मे सेव, नारगी आदि फल थे। वे आगे बढ़कर भेंट करने लगे। मैंने नही-नही कहके तत्काल रोका तो वे कुछ असमज-सता में पडे। पास बैठे समाज के लोगो ने उनसे निवेदन किया—कृपया आप ये फल यही भूमि पर रख दें। उन्होने वैसा ही कर दिया। तब मैंने स्थिरता से उन्हे बताया कि हम जैन मुनि फल आदि की भेंट नही लेते। आचार्य कृपलानी ने कहा—"हम तो फल लेकर इसलिए आये थे कि भारतीय सस्कृति का आदर्श है

"रिक्त पाणिर्नपश्येत राजम देवत गुरुम्।"

अर्थात् "राजा, देवता और गुरु के खाली हाथो दर्शन नही करने चाहिए।" मैंने कहा—"यह उक्ति हमारे पर लागू नही होती।"

डाबडीवाल बन्धु उस दिन उनके साथ नही आ पाये। उन्हे किसी आवश्यक कार्य-वश पहले दिन दिल्ली से कही जाना था। वार्तालाप के प्रारम्भ मे तो मैं आशकित रहा कि न जाने फिर ये कैसे पेश आयेंगे। पर, थोडी ही देर मे वह भ्रम निकल गया। सारा ही वार्तालाप आमोद-प्रमोद के वातावरण मे चला। अणुव्रत आन्दोलन व तेरापथ का समग्र परिचय उन्हे नये सिरे से कराया गया। कलात्मक वस्तुए दिखाई गईं। अणुव्रत नियमावली से भी अवगत कराया गया।

विनोदचेता श्री कृपलानी ने कहा—"मुनिश्री! आपके चार अणुव्रत तो मै स्वीकार कर लेता हू, पर, चोरी न करने का अणुव्रत मै नही लूगा, क्योकि आपकी ये कलात्मक वस्तुए चुरा कर चलता बनू, ऐसा मेरा मन कर रहा है।" कृपलानीजी की इस व्यग्योऽक्ति से सभी लोग हास्यमग्न हो गये।

विनोद की मुद्रा मे ही मैंने उनसे पूछ लिया—"कृपलानीजी! आपको याद तो होगा न, आप रतनगढ मे आचार्यश्री तुलसी से भी मिले थे?" वे तुरन्त अट्टहास मे बोले—"अरे, वो तो जमाना ही दूसरा था, और बात भी दूसरी थी।" अस्तु, हमे भी यह एक अनुभव मिला कि किसी दिन की रूक्षता किसी दिन स्वत सरसता मे भी परिणत हो जाती है, परिस्थितियो के उलट-फेर के साथ-साथ।

उक्त वार्तालाप के पश्चात् श्री कृपलानीजी का सदा-सदा के लिए अणुव्रतो के साथ तादात्म्य हो गया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' जब भी उनकी कोठी पर पहुच जाते, पति-पत्नी दोनो उनकी नियमोचित आव-भगत मे लग जाते। फिर तो इतनी आत्मीयता हो गई कि कभी-कभी हम सब मुनिजन उनके यहा चले जाते और घण्टो समसामयिक चर्चाओ का आनन्द लेते। श्रीमती सुचेता कृपलानी आगे चलकर उत्तर प्रदेश की मुख्यमत्री बन गईं, तब भी हम उन्हे कभी-कभी रसोई घर मे नाश्ता आदि तैयार करते देखते। पूछा, तो उत्तर मिला—प्रशासन का दायित्व

मेरे ऊपर है, पर, घर का दायित्व भी मेरे ही ऊपर है। उसे मैं सर्वथा कैसे छोड सकती हू। पति-सेवा का तो अपने यहा प्रथम स्थान है।

आचार्यश्री तुलसी जब-जब भी दिल्ली आते, तब-तब वे अणुव्रत सभाओ मे भाग लेते। यूनेस्को कान्फ्रेन्स के अवसर पर समायोजित त्रिदिवसीय अणुव्रत सेमीनार मे आचार्यश्री के समक्ष उन्होने पहली बार भाग लिया था। अणुव्रतो पर इतने सरस व्यग्योक्तियो मे बोले कि सारी सभा हास्य-मग्न हो गई।

आचार्य कृपलानी दिवगत हो गये, पर, उनका रूखा और मधुर; ये दोनो सस्मरण तेरापथ व अणुव्रत के इतिहास मे सदैव तरोताजा रहेगे। व्यक्ति परिस्थितियो को बदलता है, यह एक सत्य है, पर, यह भी एक सत्य है कि बहुत बार परिस्थितिया भी व्यक्ति को घर बैठे बदल देती हैं। आचार्य कृपलानी के ये सस्मरण उसका उदाहरण बन सकते हैं।

—०—

: १४ :

सत्य व न्याय के लिए बलिदान !

(रोचक व प्रेरक संस्मरण—श्री मोरारजी देसाई के साथ)

ऊपर से रुखे व अन्त करण से स्निग्ध व्यक्तियो मे भारत के भू० पू० प्रधान-मन्त्री श्री मोरारजी देसाई का नाम निर्विवाद रूप से लिया जा सकता है। मेरा पहला सम्पर्क जो कि परिचय मात्र था, उनसे सन् १९५५ मे बम्बई मे हुआ। वह मेरे जीवन का ३८वा वर्ष था। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', मुनि मानमलजी एव मुनि हर्षचन्द्रजी उस वर्ष मेरे सहवर्ती थे। इससे पहला चातुर्मास वहा आचार्यश्री तुलसी का हो चुका था। मर्यादा महोत्सव भी वही होना था। हम जयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर मर्यादा-महोत्सव पर बम्बई पहुच गये थे एव तभी हमारा आगामी चातुर्मास बम्बई के लिए घोषित कर दिया गया था।

प्रथम परिचय

आचार्यश्री का बम्बई से विहार होना था। चौपाटी पर विदाई कार्यक्रम था। उसी दिन प्रात आचार्यश्री का तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी भाई की कोठी पर पधारने का कार्यक्रम बना। वह कार्यक्रम भी एक विशेष घटना-प्रसग पर आधारित था जो कि सचमुच ही मोरारजी भाई की अपनी धारणाओ का परिचायक था। बात यह थी कि विगत चातुर्मास मे आचार्यश्री के सान्निध्य मे समायोजित किसी कार्यक्रम मे मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी भाई ने भाग लिया था। कार्यक्रम के अनन्तर अपने आवास पर जाते समय सहवर्ती अणुव्रत कार्यकर्त्ता श्री रमणीक भाई सुन्दर भाई जवेरी के समक्ष उन्होने प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा, आचार्य तुलसी अहवादी हैं। आनेवाले अतिथि को अपने से नीचे बिठाते है। समारोह मे आचार्यश्री के पट्टासन से मोरारजी भाई का मच थोडा-सा नीचा था। श्री रमणीक भाई आदि ने श्री मोरारजी भाई की धारणा को मिटाने का प्रयत्न

किया, पर, मिटा नही सके । इसी सन्दर्भ मे वे मोरारजी भाई से मिलते भी रहते । आचार्यश्री के विहार से पहले दिन श्री मोरारजी भाई ने रमणीक भाई आदि से कहा—आचार्यजी मे अहम् नहीं है, तो क्या वे मेरे यहा आ सकते हैं ? रमणीक भाई ने कहा— क्यों नही, अवश्य आ सकते हैं। अस्तु, इसी सन्दर्भ में आचार्यश्री का श्री मोरारजी भाई के यहां जाने का तात्कालिक कार्यक्रम बना था । हम तीन-चार साधु व तीन-चार कार्यकर्त्ता ही आचार्यश्री के साथ गये थे। वार्तालाप बहुत ही सौम्य रहा । एक-दूसरे को समझने-समझाने का ही प्रयोग मात्र था। आचार्यश्री ने वार्तालाप के उपसहार मे कहा—मोरारजी भाई ! हमारे पश्चात् ये मुनि नगराज जी, महेन्द्रकुमारजी यहा रहेगे, आपसे सम्पर्क रखेंगे । अस्तु, यह था, मेरा व श्री मोरारजी भाई का प्रथम परिचय ।

प्रथम सम्पर्क

आचार्यश्री का बम्बई से विहार हो गया । हम चारो सन्त भी पूना तक साथ गये । वापिस आते पर्वतीय स्थल 'माथेरान्' पर पाक्षिक प्रवास किया । वहा मैंने 'माथेरान् सुषमा' नाम से सस्कृत कृति की रचना की । बम्बई आये । मुख्यमत्री श्री मोरारजी भाई से मिलने का कार्यक्रम बनाया । चारो सन्त मुख्यमत्री भवन पहुँचे । मन मे ऊहापोह तो था ही कि न जाने यह प्रथम वार्तालाप कैसा रहेगा । पहले के सस्मरण मन मे ताजा थे ही । अस्तु, साक्षात्कार मे ही एक घटना घट गई । वे बरामदे मे सोफे पर बैठे थे । हम सामने तक चले गये । बैठे बैठे ही उन्होंने हाथ जोडकर थोडा-सा अभिवादन किया। पूछा—कहा बैठेगे ? मैने कहा—फर्श पर बैठ जायेंगे । मैने सन्तो को आसन लगाने के लिए भी कह दिया । वे आसन लगाने भी लगे, तब मोरारजी भाई खडे हुए और बोले—तब तो इधर आइये खाली स्थान है। मै अपनी चटाई मगा लेता हूँ, आप लोग तो अपने आसन पर बैठते ही है । तत्काल तद्रूप व्यवस्था हो गई । वार्तालाप आरम्भ हो गया । रह-रह कर मेरे मन मे आ रहा था, अभी जो घटित हुआ वह क्या था ? उनकी अहम्-तुष्टि का प्रश्न ही था या मेरी साधकता परखने का ?

लगभग घण्टाभर विचार-चर्चा चली । नाना समसामयिक व आध्यात्मिक पहलू छू लिये गये । हम दोनो ने एक-दूसरे को बहुत कुछ जाना परखा । आध्यात्मिक चर्चाओ मे उन्होने गहरी रुचि व्यक्त की तथा कहा—इस क्रम को साप्ताहिक रूप से चालू भी रखा जाये तो मुझे प्रसन्नता ही होगी । मैने कहा—क्या महाराष्ट्र व गुजरात जैसे विशाल प्रान्तो के मुख्यमत्री को नियमित रूप से आध्यात्मिक चर्चाओ का समय मिल जायेगा ? मोरारजी भाई ने कहा, जिस बात मे मनुष्य

की हार्दिक रुचि होती है, उस बात के लिए उसे समय मिल ही जाता है, चाहे वह कितना ही व्यस्त क्यों न हो ।

पूरे चातुर्मास प्रति सोमवार को विचार-चर्चा का क्रम चालू रहा। दोनों के हृदय परस्पर खुल गये। विधान सभा का सत्र पूना मे चलते रहने का प्रसग भी आया। प्रति रविवार को श्री मोरारजी भाई बम्बई में होते। बहुत व्यस्त होते, पर, विचार-चर्चा का क्रम उस रविवार को भी निश्चित रूप से चलता। वार्तालाप से पाया, मोरारजी भाई ३२ वर्ष की आयु से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते है। गीता समग्र कण्ठस्थ है। प्रतिदिन आवृत्ति करते हैं। सूत नियमित रूप से कातते हैं। जीवन में सयम व अहिंसा का चिन्तन और विकास चलता ही रहता है। जैसा कि उन्होने बताया—"मुझे हाथ मे छडी रखने की शौक थी। मित्र लोग सुन्दर से सुन्दर छडिया भेट करने लगे। मेरे पास सुन्दर छडियो का खासा अच्छा सग्रह-सा हो गया। एक दिन विचार आया, यह भी कितनी आसक्ति का विषय बन गया है। तनिक-सी शौक के लिए इतना सग्रह ? मन मे सकल्प किया, आज के पश्चात् हाथ मे छडी नही रखूगा। छडियो के उस सुन्दर सग्रह को बाट-बूट कर नक्की किया।"

हमारे इसी प्रवास मे बाल-दीक्षा-निषेधक प्रस्ताव विधान सभा मे आया। तूफानी वातावरण बना। श्री मोरारजी भाई ने उस तूफानी वातावरण को कैसे सम्भाला, वह भी एक अद्भुत सस्मरण है।[1]

दिल्ली मे भी

समयान्तर से बम्बई से प्रस्थान कर हम लोग दिल्ली आ गये। सयोगवशात श्री मोरारजी भाई भी केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे आ गये। दिल्ली मे पुन हमारा वही विचार-चर्चा का क्रम चालू रहता। श्री मोरारजी भाई का मनोभाव रहता कि आप लोग बीच-बीच मे मेरी कोठी पर रात्रि-प्रवास करते रहे तो विचार-चर्चा का मुक्त समय मिलता रहेगा। हम लोग पुरानी दिल्ली मे रहते थे, अत वैसा हो पाना सम्भव नही रहा। तब तक मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का 'सिंघाडा' भी हो चुका था। हम दोनो ही सिंघाडे दिल्ली प्रवास किया करते थे। कभी-कभी मर्यादा-महोत्सव पर हम लोग राजस्थान चले जाया करते थे, पीछे मुनि महेन्द्रकुमारजी के साथ आध्यात्मिक चर्चाओ का क्रम इसी तरह चालू रहता। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कई बार मोरारजी भाई की कोठी पर भी रात्रि-प्रवास किया।

---

१ देखें, प्रकरण। इसी पुस्तक का 'प्रशासन और धर्म-सघो का सम्बन्ध।'

मुनि महेन्द्रकुमारजी से भी मोरारजी भाई बहुत प्रभावित रहे। मेरे विषय मे उनकी धारणाए कुछ अतिरजित-सी बन गई। मुनि महेन्द्रकुमारजी के समक्ष उन्होने एक बार कहा—"मुनि नगराजजी की साधना को मैं वीतरागी साधना मानता हूँ।" अस्तु, दिल्ली मे श्री मोरारजी भाई का अणुव्रत के लिए भी बहुत योग-दान रहा। अणुव्रत के साथ स्थायी सम्बन्ध जैसा हो गया। आचार्यश्री, साधु-साध्विया कोई भी दिल्ली मे रहे, समय-समय पर वे अणुव्रत कार्यक्रमो मे भाग लेते ही रहे है। मुनि महेन्द्रकुमारजी की 'जैन कहानिया भा० १ से १० तक का विमोचन भी उन्होने ही किया।

गलत समझौता नहीं कर सकता

एक बार हम लोग सुजानगढ से जयपुर की ओर विहार करके जा रहे थे। सीकर पहुचे, उसी दिन वहा श्री मोरारजी भाई का आगमन हुआ था। कार्यकर्त्ताओ के माध्यम से जब हमे सूचना मिली तो उस एक दिन के प्रवास मे भी उन्होने वार्तालाप का समय रख लिया। उस समय वे मत्री नही थे। समसामयिक विषयों पर बाते चली। मैंने कहा—"आप शायद इसीलिए प्रधानमंत्री का चुनाव नही जीत सके कि आपने कुछ बडे नेताओ को अपने साथ जोडकर नही रखा।" मोरारजी भाई ने कहा—"प्रधानमत्री बनने के लिए मैं कोई गलत समझौता नहीं कर सकता। वह पाप होता है।" मैंने कहा—"प्रधानमत्री पद के लिए चुनाव लडना भी तो पाप ही है।" मोरारजी भाई ने कहा—"पाप तो है ही।" मैंने स्मित भाव से कह दिया—"यह पाप स्वीकार करता है, उसे वह पाप भी अक्सर स्वीकार करना पड जाता है।" मोरारजी भाई ने कहा—"यह बात मेरे लिए लागू नही पडती।" अस्तु, अगले दिन प्रात हम लोग सीकर से जयपुर की ओर विहार कर रहे थे। अचानक से ही पीछे मोरारजी भाई और उनके साथ कारों का बडा काफिला उस मार्ग से गुजरा। श्री मोरारजी भाई ने हमे देखते ही अपनी कार रुकवाई और सारा काफिला रुक गया। सभी लोग सडक पर आ गये। जैन साधु की विहार-चर्या विषयक सक्षिप्त बाते हुई और मोरारजी भाई प्रसन्नमना अपने काफिले को लेकर आगे बढ गये। हम लोगो को लगा, यह उनका आत्मिक अनुराग है। प्रथम सम्पर्कों मे जो रूखे प्रतीत हो रहे थे, वे अब कितने स्निग्ध प्रतीत हो रहे हैं।

मुख्यमत्री भवन पर

हमारे सन् १९६६ के जयपुर चातुर्मास मे भी इसी प्रकार का घटना-प्रसग

बना। वित्तमंत्री की हैसियत से वे जयपुर आये। मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़ियाजी की कोठी पर उनका रात्रि-प्रवास था। श्री सुखाडियाजी को दिल्ली मे सम्पर्क कर उनका कार्यक्रम निश्चित करना था। हम लोगों के विषय मे श्री सुखाडियाजी ने पूछा तो श्री मोरारजी भाई ने फोन पर ही कहा—मुनिश्री का रात्रि-प्रवास मुख्य-मन्त्री भवन में ही रख सको तो अच्छा रहेगा। अस्तु, वैसा ही हुआ। उस रात्रि-प्रवास मे भी दो-तीन बार मे लगभग तीन घण्टे वे हमारे साथ बैठे। ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चाएं हुईं।[1]

श्री मोरारजी भाई का अपना स्वतन्त्र चिन्तन व जीवन-दर्शन है। राजर्षि जनक को वे अपना आदर्श मानते हैं। गीता के अनेक स्थलों की उनकी अपनी व्याख्या है। साधु को वे साधनाशील देखना पसद करते हैं। किसकी साधना कैसी है, इस विषय मे उनकी स्वतन्त्र कसौटी व स्वतन्त्र अनुभूति है। वे प्रसगोपात्त कहा करते हैं—मैं बहुत पहले महर्षि अरविन्द व महर्षि रमण के सम्पर्क मे आया। महर्षि रमण से विशेष प्रभावित हुआ इसलिए कि उन्होने मेरे आने को भी निष्पृह भाव से लिया। उनके चेहरे पर आत्म-शान्ति की विशेष झलक थी जो मुझे आकृष्ट कर रही थी। महर्षि अरविन्द ने मेरे आने को कोई विशेष बात माना तथा मेरी आव-भगत की, चिन्ता भी उन्होने की। अस्तु, साधु के लिए मेरी कसौटी तो यही होती है कि वह कितना निष्पृह, निष्काम व सयत है।

मुनि मानमलजी : रेखाज्ञान

श्री मोरारजी भाई व हमारे सम्पर्क मे मुनि मानमलजी का रेखाविज्ञान भी एक दिलचस्प विषय रहा। श्री मोरारजी भाई ज्योतिष के लिए आतुर भी नही रहते तथा ज्योतिष मे अविश्वास भी नही था। मुनि मानमलजी को अपना अनुभव बढ़ाने की दृष्टि से विशेष लोगो के हाथ का अध्ययन करने मे रुचि रही है। मोरार-जी भाई की रेखाओ पर उनकी धारणा बनी, कि उन्हे अपने जीवन मे प्रधानमत्री पद तक तो पहुचना ही है। यह बात इन्होने दसो वर्ष पूर्व ही कह दी थी। पर, मोरारजी भाई का राजनैतिक घटना-क्रम ज्वार-भाटे का सा चलता रहा। उप-प्रधानमत्री पद तक पहुच कर भी पुन सामान्य धरातल पर आ गये। आगे के आसार भी आशाजनक नही रहे। हम लोगो ने अभिनिष्क्रमण किया, उससे कुछ ही दिनो पूर्व सरदारशहर मे आचार्यश्री तुलसी ने कहा—मानू! मोरारजी भाई के विषय मे की गई भविष्यवाणी तो तुम्हारी व्यर्थ ही गई। मुनि मानमलजी के पास उस समय तक इतना-सा ही उत्तर था कि उप प्रधानमत्री तक तो पहुच ही

---

१. विशेष विवरण देखें, इसी पुस्तक का श्री सुखाडिया विषयक प्रकरण।

गये। थोड़ा फर्क है, वह भी किसी घटना-क्रम के उलट-फेर में निकल आयेगा, यह मेरा विश्वास है। अस्तु, इस वार्तालाप के कुछ ही दिनो पश्चात् इमरजेन्सी टूटी व नये चुनाव हुये और श्री मोरारजी भाई प्रधानमत्री बन ही गये।

प्रलम्ब अन्तराल के पश्चात्

हमारे चालू सम्पर्क मे लम्बा अन्तराल तब पड़ा, जब मोरारजी भाई 'इमरजेन्सी' मे आबद्ध हो गये। इधर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' कलकत्ता मे थे। वहा सामाजिक विवाद खडा हो चुका था। अस्तु, इस स्थिति मे मोरारजी भाई और हमारा सम्पर्क ४-५ वर्षों के लिए टूट-सा गया। पर, सयोग विचित्र होता है। इधर से देश मे इमरजेन्सी समाप्त हुई, उधर हम लोगो ने अभिनिष्क्रमण कर दिया। मोरारजी भाई से प्रधानमत्री-काल मे कलकत्ता मे मुनि महेन्द्रकुमारजी का प्रथम मिलन हुआ। वह भी एक ऐतिहासिक घटना हो गई। दिल्ली स्थित प्रधानमत्री ने कलकत्ता मे मुनि महेन्द्रकुमारजी के सान्निध्य मे समायोजित कार्यक्रम मे भी भाग लेना स्वीकार कर लिया। कलकत्ता के सरकारी कार्यालय मे भी इसकी सूचना आ चुकी थी। पुलिस के अधिकारी प्रतिदिन पोलक स्ट्रीट स्थित गुजराती जैन उपाश्रय मे व्यवस्था निरीक्षणार्थ आने लगे। इधर जैन समाज मे प्रधानमत्री के आने का पूरा आकर्षण था ही। कार्यक्रम के समय लगभग दस हजार व्यक्ति ऊपर-नीचे बरामदो व सडक पर उपस्थित हो गये थे, पर, निर्धारित समय से कुछ पूर्व ही मोरारजी भाई को असमजसता मे डाल दिया गया। भ्रान्त सूचनाए उन्हे दी गई। परिणामतः हवाई अड्डे पर इधर के प्रतिनिधि श्री बी० आर० भण्डारी को उन्होने कहा—"मै कार्यक्रम मे नही आ सकूगा।" बडी समस्या खडी हो गई। सहस्रो व्यक्ति प्रतीक्षा मे बैठे हैं। पुलिस का सारा रक्षा-प्रबध तैनात है, पर, क्या हो, अन्तिम क्षण मे विरोधियो का तीर लग गया सो लग ही गया। न आने की घोषणा जनता मे ज्यो ही की गई, जनता अवाक् रह गई। जाते-जाते सबके मुह पर यही बात थी, विरोधियों ने कोई हरकत की है। ऐसा करके तो उन्होने समग्र जैन समाज का ही नुकसान किया है।

मुझे कहलवाया क्यो नहीं ?

प्रधानमत्री ने एक बात तो चतुरतावाली की। राजभवन पहुचते ही उन्होने पुलिस के वरिष्ठ अधिकारियो को उपाश्रय भेजा व कहलवाया—"मुनि महेन्द्रकुमारजी यहा आ सके तो मैं हकीकत जानना चाहूगा।" मुनि महेन्द्रकुमारजी अपने सहवर्ती मुनि मणिकुमारजी व कतिपय कार्यकर्त्ताओ के साथ प्रधानमत्री के यहा पहुचे। काफी देर तक बाते हुई। सब कुछ

जानकर प्रधानमंत्री ने कहा—"आपके व मुनि नगराजजी के साथ यह सब घटित होता गया और आपने मेरे तक बात ही नही पहुचाई ?" मुनि महेन्द्र-कुमारजी ने कहा—"आप भी तो हमारी तरह इमरजेन्सी मे थे, हम कहां बात पहुचाते। अब आप और हम मुक्त हुए हैं, अत सब कुछ कर ही सकते हैं।" अस्तु, प्रधानमंत्री ने यह भी बताया कि—"फिर कभी मैं आयोजन मे भाग लेने का ध्यान रखूगा। मुनि नगराजजी भी तो यहा आ ही रहे हैं ?" मै व मुनि मान-मलजी दिल्ली से विहार करते तब तक बगाल मे प्रवेश कर चुके थे।

आपने सत्य का साथ दिया

हम लोग कलकत्ता पहुच गये। उसके पश्चात् एक बार प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई कलकत्ता आये। कार्यकर्त्ताओ ने सम्पर्क किया तो उन्होने कहा—अभी तो केवल एक ही दिन के लिए ही आया हूँ, अगली बार समय रखकर आऊगा तब मिलूगा। पर, प्रधानमंत्री पद पर रहते, वे पुन कलकत्ता आये ही नही। पद-मुक्त होने के पश्चात वे चुनाव के सिलसिले मे एक दिन के लिए कलकत्ता आये। उन्होने स्वत श्री विजयसिहजी नाहर के साथ कहलवाया—मुनि नगराजजी आदि ससद सदस्य श्री अशोक कृष्ण दत्त के यहा या उनके आस-पास ही कही दिन भर का आवास कर ले तो हमारी पारस्परिक कई बार बातें हो सकेंगी। हम लोग निकटस्थ ही श्री कानमलजी सेठिया के आवास पर पहुच गये। प्रात व मध्याह्न दो बार मे दो घण्टे से भी अधिक समय तक चर्चाएं हुई। बहुत समय के पश्चात् मिलन हुआ था। इस बीच मे मेरे व उनके जीवन मे नाना घटना-चक्र घूम चुके थे। नाना सस्मरण सुने सुनाये। नाना सामयिक चर्चाएं चली। मुख्य बात यही थी, उन्होने कहा—"आप लोगो के साथ जो कुछ घटित हुआ, उसे मै आपके द्वारा ही सुनना चाहता हूँ।" मैंने सविस्तार सारा घटना-क्रम प्रस्तुत कर दिया। अपने अभिनिष्क्रमण का कारण भी बताया।

श्री मोरारजी भाई ने कहा—आपने सत्य व न्याय के लिए बलिदान किया, इसे तो मैं भी उचित ही मानता हूँ। सत्य व न्याय के लिए बलिदान करने की क्षमता सब मे नही होती। आपने न्याय के पक्ष मे सुख-सुविधा व सम्मान को ठुकराया तो कुदरत ने यहा भी आपके लिए सुख सुविधा व सम्मान अर्जित कर दिए है।

—०—

: १५ :

प्राक्तन से नूतन की ओर

(डा० राधाकृष्णन् आदि लोगों से प्रथम सम्पर्क)

दिल्ली जाना हमारा सर्व प्रथम १९४७ मे हुआ था। वह मेरा तीसवां वर्ष था। उस वर्ष का चातुर्मासिक प्रवास वहा नही हो सका था। साम्प्रदायिक दगो के कारण पजाब व दिल्ली आदि के सभी साधु-साध्वियो को राजस्थान वापिस बुला लिया गया था। उस वर्ष दिल्ली मे दो-तीन मास रहना भी हुआ, पर, उस समय अणुव्रत आन्दोलन जैसी वहा काम करने की कोई भूमिका नही थी। परम्परागत बाधाए भी बहुत अधिक थी। जैसे, उसी प्रवास मे समाजभूषण श्री छोगमलजी चोपडा ने दिल्ली विश्वविद्यालय मे एक प्रवचन का कार्यक्रम रखवाया। वहां बैठने वालो के लिए कुर्सियो की व्यवस्था थी, बोलने वालो के लिए टेबल की। आज जो व्यवस्था सामान्य बन गई है, उस समय वह भी एक समस्या थी। कुर्सियो पर बैठे-बैठे व्याख्यान सुनना व उस स्थिति मे व्याख्यान देना, दोनो ही बडे अपराध हो सकते थे। मेरे पहुचने के पश्चात् श्री चोपडाजी ने व्यवस्था बदलवाई और श्रोताओ के लिए दरी लगवाई, हम सन्तो के अपने-अपने आसन थे ही। व्यवस्था की यह भाज-घड होते ही उपस्थित श्रोताओ मे से दो तिहाई तो उसी समय वापिस चलते बने। जो बचे, उनमे कार्यक्रम चला। मेरा अपना हिन्दी मे भाषण देने का भी प्रथम ही दिन था। मुझे भी बहुत हिचक ही थी। धारा प्रवाह हिन्दी बोल सकूगा या नही। शुद्ध हिन्दी बोल पाने का विकास भी तब तेरापथ मे नही था। वह आधुनिकता के विकास की पहली वेला थी। हिन्दी साहित्य पढ़ते रहने का आदी था, अत भाषण देते समय कोई कठिनाई का अनुभव नही हुआ। भविष्य के लिए भी कुछ आत्म-विश्वास बन गया। विश्व विद्यालय-स्तर पर किसी तेरापथ मुनि का भाषण भी वह प्रथम ही था।

जन-सम्पर्क का माध्यम भी उस दिल्ली प्रवास मे प्राचीन ढर्रे का ही था।

श्रावक लोग पहले सम्पर्क करें। कोई व्यक्ति प्रभावित हो तो वह फिर 'ठिकाने' मे दर्शन करे। यह प्रकार अच्छा था, पर, जितना समय व शक्ति लगती, उतना परिणाम नही आता। उदाहरणार्थ—पूज्य कालुगणी के जमाने मे बीकानेर महाराजा श्री गगासिहजी को सम्पर्क मे लाने हेतु वर्षों-वर्षों तक समाज प्रयत्नशील रहा, पर, एक बार के लिए भी सफलता नही मिली। जबकि पूज्य कालुगणी के युग मे तेरापथ मे वर्चस्वशील श्रावको का जमघट था। महात्मा गाधी का पूज्य कालुगणी से कभी मिलन हो और वे तेरापथ की गतिविधियो को जाने, ऐसे प्रयत्न वर्षों-वर्षों तक चलते रहे, पर, कोई परिणाम नही आया। डा० राधाकृष्णन् देश के विश्रुत विद्वान् थे, इस दृष्टि से समाज के अग्रणी चाहते थे, उन्हें आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्क मे लाया जाये। अनेको प्रतिनिधि समय-समय पर उनसे मिलते भी रहे, पर, आचार्यश्री के समक्ष उन्हें नही ला सके।

नूतन आयाम

सन् ४७ के उस दिल्ली प्रवास मे मैने एक प्रयोग स्वरूप महात्मा गाधी से जाकर मिलने की पहल की थी। पहले ही प्रयत्न मे हमे सफलता मिली। सक्षिप्त वार्तालाप भी बहुत महत्त्वपूर्ण रहा।[1] पर, समाज मे प्रतिक्रिया रही कि मुनि लोग उनके स्थान पर जाकर क्यो मिले? इसमे जैन साधु का महत्त्व घट जायेगा। मुझे ये सब बात निरर्थक लगती थी। मेरे सामने प्रश्न था, समाज मे प्रतिक्रिया भी न हो और अपनी ओर मे पहल करने का प्रयोग भी चालू रहे। अस्तु, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने जन-सम्पर्क का दायित्व सम्भाला और जिस कुशलता से उन्होने कर बताया, वह एक बेमिसाल बात बन गई। थोडे ही समय मे पत्रकारो साहित्यकारो, नेताओ, शिक्षा-शास्त्रियो एव उद्योगपतियो मे मानो वे छा गये। उनके सम्पर्क से प्रभावित गण्यमान्य व्यक्ति ठिकाने आकर दर्शन करते ही। अणुव्रत आन्दोलन का उभरता हुआ समय था। नाना धाराए हम लोग खोलते ही गये। अणुव्रत विचार परिषद्, अणुव्रत वर्गीय कार्यक्रम, अणुव्रत सप्ताह, अणुव्रतो पर दैनिक पत्र-पत्रिकाओ मे लेख व उनके परिशिष्टाक आदि नाना रूपो मे आयाम खुले। अणुव्रतो के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने एक हस्तलिखित पत्रिका दिल्ली मे ही रहते निकाली, जिसमे डा० राधाकृष्णन्, डा० राजेन्द्र प्रसाद आदि देश के शीर्षस्थ लोगो के विचार प्राप्त हुए। सन् १९५३ के उस प्रथम वर्ष मे ही राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद से सम्पर्क सध गया। डा० राधाकृष्णन् से भी सम्पर्क करने मे हमे सफलता मिली। उनके

१ पूरे विवरण के लिए देखे, इसी पुस्तक का 'महात्मा गाधी एक मिलन, एक अनुभूति' प्रकरण।

आवास पर पहली बार जब हम लोग गये तो द्वार तक हमे लेने वे सामने आये तथा आवास पर पहुचने पर अगूर, आम, नारगी आदि नाना फल भेट करने लगे। जब मैंने कहा, जैन साधु तथारूप फल ग्रहण नही करते तो उन्होने कहा—"मेरा तो कर्तव्य है ही कि

रिक्त पाणिर्न पश्येत राजानं देवतं गुरुम् ।

अर्थात् राजा, देवता व गुरु को खाली हाथो नही देखना चाहिए।" अस्तु, श्री नेमीचन्दजी गधैया व श्री नेमीचन्दजी पीचा (लल्लूजी) भी वहा थे। उपराष्ट्रपति जी ने उनकी ओर देखकर कहा—देवता का प्रसाद भक्त लोग ही खाते हैं, अत आप लोग ग्रहण करले। उपराष्ट्रपति की तथारूप उत्कठा देखकर उक्त दोनो महानुभावो ने फल ग्रहण किये।

तेरापथ की साधना, साहित्य-सेवा, कला, अणुव्रत आन्दोलन आदि सभी सम्बन्धित विषयो की जानकारी उन्हे दी गई। उन्होने भी अणुव्रत सभाओ मे भाग लेने का पक्का आश्वासन दिया। मैंने उनसे एक जिज्ञासा यह भी की कि हमारे प्रतिनिधि दसो वर्षों से प्रयत्नशील थे कि आपका व आचार्य श्री तुलसी का मिलन हो, फिर ऐसा क्यो नही हो सका ? डा० राधाकृष्णन् ने कहा—वास्तविकता यह है कि मेरे पास इस उद्देश्य से मारवाडी बन्धु मिलते रहे हैं और आचार्य श्री तुलसी व तेरापथ के बारे मे बताते भी रहे हैं, पर, उन धनीमानी और व्यवसायी लोगो से तप, साधना व विलक्षण विद्वत्ता आदि की बाते मेरे गले नही उतरती थी। आज आप लोगो को साक्षात् देखा है, तब मै अवश्य आश्वस्त हुआ हूँ कि आप लोगो मे उत्कट तप, साधना व प्रशसनीय विद्याभ्यास है। अस्तु, उनके इन उद्गारो से हमे भी सन्तोष हुआ कि अपनी ओर से पहल करने का जो रास्ता हम लोगो ने पकडा है, वह अधिक कारगर है। डा० राधाकृष्णन् का तेरापथी साधुओ से वह आदि सम्पर्क था। श्री नेमीचन्दजी गधैया ने उनसे मिलकर हमारे मिलने का कार्यक्रम निश्चित किया था। उसके अनन्तर वे आचार्यश्री व अन्य साधु-साध्वियो के सम्पर्क मे आते ही रहे। अणुव्रत सभाओ मे उन्होने अनेको बार भाग लिया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' द्वारा राष्ट्रपति भवन मे किये अवधान प्रयोगो मे भी वे उपस्थित थे। धवल समारोह के अवसर पर तो उन्होने दिल्ली से गगाशहर पहुचकर आचार्य श्री तुलसी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया ही था। जिसका विशेष वर्णन 'धवल समारोह योजना व परिणति' प्रकरण मे किया गया है।

कटु व मधुर

सम्पर्क की पहल करने मे वैसे कटु, मधुर सभी तरह के प्रसग सामने आते रहे हैं। कटु प्रसग तो इस कोटि के कि अनेको लोग कह देते, हमे जैन साधुओं से

मिलने में कोई रुचि नही है। मधुर प्रसग ऐसे सामने आते रहे कि अचानक जैन मुनियों को अपने दरवाजे पर देखकर लोग पुलकित हो उठते, भरपूर आदर और सम्मान देते। मंत्रिप्रवर श्री गुलजारीलाल जी नन्दा की कोठी पर मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' पहली बार पहुचे तो नन्दाजी के पिताजी इतने भाव-विभोर हुए कि अन्दर जाकर नन्दाजी को बाह पकडकर लाये और कहा—"चरणो मे नमस्कार कर तेरा कल्याण हो जायेगा। मुनि महेन्द्रकुमारजी से कहा—आप इसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद द।"

एक बार हम कतिपय साधुओ का काका कालेलकर के यहा जाना हुआ। काका कालेलकर ने स्वागत किया एव बहुत ही मधुरता के विचार-विनिमय किया। वार्तालाप के अन्त मे उन्होने कहा—"जीवन मे मैंने आज एक बडा आश्चर्य देखा है, वह यह कि जैन साधु मेरे यहा वार्तालाप हेतु चलकर आये हैं। जैन समाज से व जैनाचार्यों से मेरा चिरन्तन सम्पर्क रहा है, पर, उनकी कार्य-प्रणाली मुझे नापसन्द रही है। भक्त लोग बहुत आग्रह करके हम लोगो को अपने गुरुजनो के पास ले जाते और फिर प्रचार करते, हमारे गुरुजनो का इतना प्रभाव है कि वे भी दर्शनार्थ आये, वे भी दर्शनार्थ आये। आज यह पहला अवसर है, अब जैन साधुओ को मैंने अपने दरवाजे पर आये देखा है।" इससे आपका गौरव घटा नही, अपितु, आपके प्रति मेरे मन मे विशेष ही आदर एव आत्मीयता का भाव बना है।

नूतन नामकरण

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' की कार्यजा शक्ति के अभ्युदय का वह अनुपम वर्ष था। एक ही वर्ष मे अणुव्रत आन्दोलन व तेरापथ पूरे देश मे चर्चित हो गया। दिल्ली मे रहते भी उनके बहुधा पन्द्रह-बीस माईल तक का विहरण प्रतिदिन हो जाता। भूख-प्यास भी गौण थी, शीत और ग्रीष्म का भी कोई अता-पता नही था। इसी जन-सम्पर्क कार्य मे एक निष्पत्ति यह हुई कि उनका मूल नाम ही बदल देना पडा। अब तक उनका नाम चलता था—मुनि मिरजामलजी। राष्ट्रपति भवन तथा अन्यत्र लोगो को यह नाम अटपटा लगता। जन मुनि और नाम मिरजा स्माइल जैसा। जगह-जगह लोग उनसे यही जिज्ञासा करते। इस स्थिति मे दिल्ली के उसी प्रवास मे मैंने उनका नाम बदल कर रखा—मुनि महेन्द्रकुमारजी। आगे चलकर मुनि महेन्द्रकुमारजी (बम्बई) एक और हो गये और वे भी मेरे ही पास रहते, तब मुझे कर देना पडा, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' एव मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय'।

यह परीक्षा भी देनी पड़ती है ?

एक बार दरियागज के अनाथाश्रम मे हम लोग रह रहे थे। नीचे की मजिल मे सस्था का काम चलता था। ऊपर दिगम्बर जैन मदिर तथा उपाश्रय के रूप मे कुछ कमरे थे। उन्ही कमरो मे हम लोग निवास कर रहे थे।

एक दिन प्रात काल का व्याख्यान हो रहा था। मै एक बड़े तख्त पर आसीन था। उसी समय एक महानुभाव कुछ व्यक्तियो के साथ ऊपर मदिर जी मे दर्शन कर मेरी ओर चले आये। मैं उन्हे भली-भाति पहचानता था। वे जैन समाज के अग्रणी लोगो मे से तो थे ही, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र मे भी अपना वर्चस्व रखते थे। एकाध बार वे मेरे से मिल भी चुके थे। मैं व्याख्यान दे रहा था, सामने दिल्ली के तेरापथी भाई-बहिन थे। वे अकस्मात् मेरे निकट आये। थोडा सा वन्दन किया और मेरे ही पास पट्टे पर बैठ गये।

सामने बैठने वाले लोगो को बहुत ही अस्वाभाविक लगा। मेरे लिए भी समस्या थी। उन्हे उठाऊ, तो कैसे उठाऊ? इनके साथ बैठा रहू, तो कैसे रहू? मैंने सामान्य भाव भाषा मे उनसे कहा—जैन साहब! हमारी गृहस्थो के साथ एक पट्टे पर बैठने की परम्परा नही है। मैं यह समझ रहा था, वह असावधानी मे यों ही बैठ गये हैं। पर, उनके उत्तर मे बात दूसरी ही निकली। उन्होने कहा—आपकी ऐसी परम्परा नही है, तो आप जाने, मेरी तो साधुओ के साथ बैठने की परम्परा है। मैने अपना आसन उठाया तत्काल तख्त से उतर कर वही भूमि पर आसन लगाकर बैठ गया। मैंने कहा—अब आप आराम से पूछते रहे, जो आपके प्रश्न व जिज्ञासा के विषय हैं। वे कुछ देर तो बैठे रहे, पर, अकेले पट्टे पर बैठा रहना उन्हे भी खला और वे भी वहा से उठकर तत्काल नीचे बैठ गये।

नीचे बैठकर वह कहने लगे—"मुनिजी! मुझे कोई प्रश्न नही पूछना है। मैं तो केवल परीक्षा ले रहा था कि मेरे इस अशिष्ट व्यवहार पर गुस्सा आता है या नही। मेरी मान्यता है कि अधिकाश साधु गुस्सेबाज ही होते हैं। वे तनिक-सी प्रतिकूलता को बर्दाश्त नही कर पाते और "आपा" खो देते हैं। पर, आपको मैने वैसा नही पाया।

मैने स्मित भाव से कहा—मुझे पता नही था, दिल्ली आने वालो को यह परीक्षा भी देनी पडती है।

—०—

: १६ :

सौहार्द की दो बूंदें भी प्रवाह बन गई

(दो परम्पराओं के सम्बन्धों मे नये मोड की आदि कहानी)

सन् १९५६-५७ की बात होगी। मेरा व मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का चातुर्मासिक प्रवास दिल्ली मे था। स्थानकवासी समाज व तेरापथी समाज के सम्बन्ध तब तक मधुर नही बने थे। आचार्यश्री तुलसी का उस वर्ष का चातुर्मास जोधपुर था। वहा उस वर्ष स्थानकवासी समाज के दिग्गज आचार्यो व उपाध्यायश्री अमरमुनिजी का सयुक्त चातुर्मास था। पर्यूषण पर्व तक तो जैसे-तैसे शान्ति का ही वातावरण रहा। सवत्सरी पर्व के अनन्तर ही वाद-विवाद का अध्याय आरम्भ हो गया। वातावरण सरगर्म बनता ही गया तथा उसी सरगर्म वातावरण मे ही चातुर्मास सम्पन्न हुआ।

माननीय उपाध्यायश्री अमरमुनिजी जोधपुर से विहार कर दिल्ली पधारे। मैं उनकी विद्वत्ता व साहित्य से परिचित था। मन मे उत्कण्ठा हुई, एक ही नगर मे सहज समागम हुआ है, सम्पर्क साधा जाये। मुझे सीधे जाकर मिलना चाहिए था, पर, ऐसा करने मे कठिनता भी थी, क्योकि दोनो समाजो का तनाव तो लगभग अखिल भारतीय स्तर पर था। मैं चाहता था, उपाध्याय श्री अमरमुनिजी चिन्तक व मनीषी हैं, उदारचेता हैं, इनके साथ वार्तालाप करके दोनो समाजो मे लगभग दो सौ वर्षों से चले आ रहे विवाद-प्रकरण मे सौहार्द का अध्याय चालू किया जाये। हम लोग उन दिनो सब्जीमण्डी स्थित कठोतिया भवन मे रह रहे थे। सयोग बना, माननीय अमरमुनिजी का विराजना ससघ सब्जीमण्डी के स्थानक मे ही हो गया। मध्यम मार्ग निकाला गया। मैंने श्री मोहनलालजी कठोतिया से कहा--सामने स्थानक मे प्रवचन हो रहा है। आप तो सहज भाव से जा ही सकते है तथा अपने यहां 'गौचरी' का भी निवेदन कर सकते हैं। श्री कठोतियाजी चतुर थे। थोडे मे ही सब कुछ समझ गये। उन्होने प्रवचन मे भाग लिया तथा प्रवचन के अनन्तर

माननीय श्री अमरमुनिजी से अपने यहां कठोतिया भवन में गौचरी पधारने की अर्ज की। श्री अमरमुनि ने स्मित भाव से पूछा—"कोई खास बात है ?" उन्होने कहा—"मुनिश्री नगराजजी अभी मेरे यहां विराज रहे हैं। मैं चाहता हू, इस सौहार्द मिलन का सौभाग्य मुझे ही मिले।"

माननीय श्री अमरमुनिजी मेरे से आयु-ज्येष्ठ थे, दीक्षा-ज्येष्ठ थे, स्थानकवासी समाज की परम्परा से थे, अत परम्परा-ज्येष्ठ भी थे, पर, उससे भी ज्येष्ठ मुझ जो लगा, वह था, उनका स्निग्ध व किसलय-कोमल मानस। उन्होने प्रसन्नता पूर्वक तत्काल कहा—"मुनिश्री नगराजजी आपके यहा हैं, तब तो अवश्य ही गौचरी के लिए चलना है।"

लगभग दस-बारह मुनियो के परिवार से उपाध्यायश्री कठोतिया भवन पधारे। हॉल मे ही सब लोगो का मिलन हुआ। उन्होने बडे प्रेम से मुझे बाह मे भर लिया। बोले—"वाह ! शरीर इतना छोटा, नाम इतना बडा, राजधानी मे छा रहे हो !" अस्तु, सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् हम लोग भूमि पर आसीन होगये। वार्ता-प्रसग बहुत ही सरसता से चल पडा। मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी आदि सातो सतो का परिचय करवाया। उन्होने भी एक-एक करके अपने सहवर्तियो का परिचय करवाया। जोधपुर का घटना-प्रसग चला। उपाध्यायश्री ने कहा—चाहता नही था, मैं इस झमेले मे दिलचस्पी लू, पर, तत्र विराजित हमारे सभी आचार्यों ने रविवार का मुख्य भाषण मुझे ही सौंप दिया। वाद-विवाद का वातावरण था। मुझे भी अपने पक्ष मे कसकर बोलना ही पडा। अस्तु, अन्य भी स्फुट बाते चली। फिर उपाध्यायश्री ने कहा—अभी तो आपके और हमारे सभी के आहार-पानी का समय है। हम दोपहर को फिर यहा आ जायेगे। विस्तृत वार्तालाप हो सकेगा। मैंने कहा—क्षमा करे, एक बार पधार कर ही मुझे आपने इतना आभारी बना दिया है कि कहते नही बनता। आना तो मुझे था, आपके पास, पर, जो मै नही कर सका, वह आपने कर बतलाया। आप महान् हैं। दोपहर को हम ही आपके वहा आयेगे और वार्तालाप भी वही हो जायेगा। मध्याह्न मे दो बजे लगभग हम सब मुनि स्थानक मे पहुचे। दिल्ली स्थित स्थानकवासी साध्विया भी इस सम्मेलन मे भाग लेने आ गई थी। लगभग दो घण्टे का वार्तालाप बहुत ही सरस रहा। साहित्यिक व समसामयिक सभी विषय चले। मैंने कहा—उपाध्यायश्री ! स्थानकवासी समाज का निकटतम सम्प्रदाय जैन परम्परा मे कौनसा है, जिसकी मान्यता व व्यवहार मे स्थानकवासी समाज के साथ कम-से-कम मतभेद हो ?

उपाध्यायश्री ने तत्काल कहा—"वह तो तेरापथ ही है। स्थानकवासी व तेरापथी आम्नाय के बीच न शास्त्र-सख्या का भेद है, न मुखपत्ति का भेद है और

न ही मूर्ति-पूजा का भेद है। तेरापथ के अतिरिक्त अन्य किसी जैन परम्परा की ओर ध्यान देगे तो ये भेद क्रमश: बढते हुए ही मिलेंगे।"

मैंने कहा—"तब फिर क्या कारण है, हम ही लोग परस्पर दो सौ वर्षों से सर्वाधिक सघर्षरत हैं। मूर्ति पूजको के साथ इतना झमेला न तेरापंथियो का है, न स्थानकवासियो का। बदलते हुए युग मे क्या इस बद्धमूल परम्परा को मोड नहीं दिया जा सकता ? क्या इस विरोध को प्रेम मे परिणत नहीं किया जा सकता ?"

उपाध्यायश्री ने कहा—"आपने बहुत ही यथार्थ कहा है। होना तो यही चाहिए कि जो निकट का हो, उससे अधिक प्रेम हो, पर, तेरापथ स्थानकवासी सम्प्रदाय से ही निकला है, अत वह द्वद्व अब तक भी ज्वलन्त रूप से चल रहा है। हा, इसमे मैं सहमत हू कि अब हमे दोनो समाजो को एक नया मोड देना चाहिए। दोनो समाजो मे ही अभेद दृष्टि का विकास करना चाहिए। ऐसा होते ही भेद गौण हो जायेगे और अभिन्नता प्रबल हो जायेगी। यह शुभारम्भ आज से ही हो जाना चाहिए। आप आचार्यश्री तुलसी से भी कहला दीजिये कि वे समाज के दृष्टिकोण को बदलना आरम्भ करे। इधर हम लोग भी अपने समाज मे वही कार्य आरम्भ कर देगे। दो सौ वर्षों से चले आ रहे दृष्टिकोणो को बदलने का कार्य है, कठिनाइया तो आयेगी, पर, सफलता अवश्य मिलेगी, क्योकि वर्तमान युग भी एकता का ही हिमायती है।"

मैने उस दिन का सौहार्दमूलक वार्तालाप तथा उस दिन का निर्णय आचार्यश्री को भिजवा दिया। प्रसन्नता की बात थी कि अगले ही वर्ष उक्त निर्णय का एक ऐतिहासिक स्तर पर क्रियान्वयन भी हो गया। आचार्यश्री तुलसी कलकत्ता जाते समय आगरा पधारे। लोहा मण्डी स्थानक के पास से जब जुलूस निकला तो माननीय श्री अमरमुनिजी के श्रावको ने आग्रह पूर्वक ऊपर पधारने का निवेदन किया। आचार्यश्री ऊपर पधार गये। माननीय श्री अमरमुनिजी व आचार्य श्री तुलसी का अभूतपूर्व सगम वही घटित हो गया। आगरा प्रवेश का मुख्य प्रवचन भी वही हुआ तथा सायकाल तक आचार्यश्री वही विराजे। आहार आदि के कार्यक्रम भी वही सम्पन्न हुए।

माननीय श्री सुशीलमुनिजी के साथ भी सौहार्द का आरम्भ हमारे दिल्ली प्रवासो मे ही फलित हुआ। उसका भी घटनात्मक व विस्तृत इतिहास है। पर, यहा तो सक्षेप मे ही लिखा जाना अभीप्सित होगा। उन दिनो माननीय सुशीलमुनिजी भी आचार्यश्री तुलसी से मुकाबले का लोहा ले रहे थे। बम्बई चातुर्मास, उज्जैन चातुर्मास, भीलवाडा मर्यादा-महोत्सव, तदनन्तर सरदारशहर चातुर्मास

दोनो का साथ-साथ रहा। उक्त सभी स्थानों मे स्थानकवासी और तेरापथ के नाम पर विरोध भी पराकाष्ठा पर रहा।

तब तक हम दिल्ली मे अणुव्रत का मच जमा चुके थे। राजधानी के दैनिक पत्रों मे आये दिन हम छाए रहते थे। वहा अणुव्रत निर्विरोध और सर्वमान्य था। माननीय सुशील मुनिजी ने सरदारशहर मे आचार्यश्री का साथ छोडा एव दिल्ली चले आये। वहां तेरापथ के नाम पर तथा अणुव्रत के नाम पर हमारे से उनका सीधा मुकाबला होने लगा। उनका अपना मच था—'विश्व धर्म सम्मेलन'। कुछ दिनो तक काफी टकराहट रही। मै नही चाहता था, दिल्ली हमारे साम्प्रदायिक संघर्ष का मोर्चा बने।

बिडला मन्दिर वाटिका मे एक दिन हमारा आकस्मिक मिलन हुआ। मैंने कहा—सुशील मुनिजी ! आज आपसे कुछ सीधी-सीधी बाते करनी है।

सुशील मुनिजी—बोलिए, कहा बैठे ?

मैं—यह सिह-द्वार-गुफा ही सुरक्षित व विजन स्थान हो सकता है।

हम दोनो अन्दर चले गये। शेष साधु सब बाहर रह गये।

मै—भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली मे हमारा साम्प्रदायिक दिग्दर्शन क्या अच्छा रहेगा ?

सुशील मुनिजी—कभी नही। इसका तो भद्दा दिखावा पूरे भारतवर्ष मे होगा।

मैं—तब क्यो नही हम सौहार्द या समन्वय की दिशा पकडे और दो सौ वर्षों से चले आ रहे ढर्रे को एक नया मोड दे।

सुशील मुनिजी—मै तो इसके लिए सदैव तैयार रहा हू, पर, आपकी तरह सीधी बात करने वाला मुझे अभी तक उधर से कोई नही मिला। अस्तु, मैं इस तरह का आदमी हू कि जो मेरे लिए चार कदम आगे बढता है, मैं उसके लिए आठ कदम आगे बढ जाता हू। और, जो मुझे देख दो कदम पीछे हट जाता है, उससे मैं दस कदम पीछे हट जाता हू।

मै—देखिए, दिल्ली एक विशाल राजधानी है। यहा सभी तरह की दुकाने धडाधड चलती हैं। यहा अणुव्रत भी चल सकता है तथा विश्व धर्म सम्मेलन भी। बशर्ते कि हम एक-दूसरे को न काटे।

सुशील मुनिजी—मुझे आपकी बात मान्य रही। अब सहयोग की सीमा पर विचार कर ले।

मैं—हमारा पहला कार्य तो यह हो कि हम एक-दूसरे के बीच मे रोडा न बने। दूसरा यह कि यथासम्भव हम एक दूसरे के कार्यक्रमो मे भी भाग लें।

सुशीलमुनिजी— मैं सहमत हू, पर, एक-दूसरे के कार्यक्रम मे भाग ले पाने की भूमिका तो हमे समाज मे बनानी पड़ेगी, क्योंकि दो सौ वर्षों से हम लोगों ने दोनो समाजों को एक-दूसरे से दूर ही दूर किया है।

मैं—अब हम अध्याय बदलते हैं और मुझे आशा है, हम तहेदिल से काम करेंगे तो हमारे आचार्यश्री तुलसी को भी इससे प्रसन्नता ही होगी।

यह एक ऐतिहासिक महत्व की बात रही। तदनन्तर उसी वर्ष हम सातो सन्तो ने विश्वधर्म सम्मेलन के विराट् कार्यक्रम मे भाग लिया तथा माननीय सुशील मुनिजी ने हमारे विशाल मैत्री दिवस मे भाग लिया। अस्तु, यह सूत्रपात आदि था, पर उत्तरोत्तर आगे बढता ही गया। आचार्यश्री तुलसी के साथ भी उनके नाना सयुक्त कार्यक्रम रहे। अस्तु, कुल मिलाकर कहा जा सकता है, आदरणीय अमर मुनिजी व आदरणीय सुशील मुनिजी का आरम्भ सदा-सदा के लिए दोनो समाजो के बीच का सेतु बना। मै कामना करता हू, सदा-सदा के लिए वह उत्तरोत्तर मधुर बनता ही रहे।

—०—

: १७ :

श्री कस्तूरभाई : संस्मरणों की प्रतिच्छाया में

अनेक बार के सम्पर्क से जीवन के अनेक अध्याय खुलकर आमने आ जाते हैं। व्यक्ति को अनेक विधाओ से देखने व परखने का अवसर मिल जाता है। स्वर्गीय श्री कस्तूरभाई लालभाई के विषय मे सुन बहुत कुछ रखा था, पर सम्पर्क से जैसा उन्हे समझा, वह अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान् था।

मेरा अहमदाबाद का वर्षावास ठीक उनके आवास के सामने ही सागर सदन मे था, पर कभी साक्षात् सम्पर्क नही हुआ। वहा राज्यपाल, मुख्यमत्री, साहित्यकार, पत्रकार व अनेको उद्योगपति विचार-विनिमय हेतु सागर सदन मे ही आये, पर कस्तूरभाई से तब तक कोई वास्ता नही पडा। उनका ऐसा ही कोई वर्चस्व था कि समाज के अग्रणी कार्यकर्ता भी उन्हे आमन्त्रित करने मे सकोच खाते थे। बिना किसी प्रयोजन के केवल सम्पर्क के लिए उनके आवास पर जाकर मिलने की बात मैने भी नही चाही।

अगले ही वर्ष बम्बई-वर्षावास (सन् १९६९) मे २५००वी भगवान् महावीर की निर्वाण जयन्ती का प्रसग सामने आया। उसमे चारो जैन समाजो का प्रतिनिधित्व अपेक्षित था। हमारा दिल्ली जाना निश्चित हो चुका था। वह उपयुक्त अवसर था, उन्हे याद करने का। कार्यालय के मुख्य प्रतिनिधि श्री मोहरसिंह जैन ने उक्त आशय का पत्र उन्हे दे दिया। लिख दिया—आवश्यक है, इस बार आप बम्बई आयें, तब मुनिश्री से निर्वाण जयन्ती के विषय मे विचार-विनिमय कर सकें। अस्तु, लौटती—डाक से उनके अपने ही हाथ से लिखा पत्र मिला—अमुक तारीख इतने बजे मैं मुनिश्री से साक्षात्कार करूगा। सब लोग हैरान रहे कि कस्तूरभाई का आना भी इतना आसान हो सकता है ! मैंने तो कहा, बडा व्यक्ति वही होता है, जो आवश्यकता का सही अकन स्वय कर सके। केवल सिफारिशो पर ही निर्णय करने वाले बड़े लोग नही होते।

निर्धारित तिथि व समय पर श्री कस्तूरभाई दर्शनार्थ आये। विख्यात समाजसेवी ऋषभदास राका को भी साथ लाये। लगभग एक घटा तक आवश्यक विचार-विनिमय चला। मुख्य चर्चा प्रसग मे मैंने कहा, भगवान् महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती के विषय मे मेरी कल्पना है—चारो जैन समाजो के समान सख्यक प्रतिनिधियो की व भारत सरकार की एक राष्ट्रीय समिति इस पर्व को मनाये। प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी भी इस पुनीत अनुष्ठान मे अध्यक्षा के रूप मे साथ हो। चारो समाजो के चार आचार्यों व चार मुनियो का एक परामर्शक मण्डल हो, जिससे कार्यक्रम की शालीनता भी सुरक्षित रह सकेगी और उसमे अभूतपूर्व प्राणवत्ता भी आ सकेगी।

श्री कस्तूरभाई ने कहा—कल्पना तो श्रेष्ठतम है, पर, इतना समायोजन हो पाना मुझे असम्भव जैसा ही लगता है। मैंने कहा—हम दिल्ली की ओर विहार कर रहे हैं, आप अपने समाज के किसी एक वरिष्ठ आचार्य व मुनि का नाम तो हमे सुझा दे, ताकि कार्य का शुभारम्भ यही से हो जाये। कस्तूरभाई ने कहा—मेरे द्वारा नाम बता पाना कठिन है। विभिन्न आचार्य, मुनि हैं व उनके विभिन्न ही चिन्तन हैं। मेरा कुछ भी करना विवादास्पद बन जायेगा।

वार्तालाप के अन्त मे श्री कस्तूरभाई ने कहा—मुनिश्री ! मैंने आपका 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' ग्रन्थ पढा। वास्तव मे ही शोध-ग्रन्थ है। मैं आपके प्रति साधुवाद अर्पित करता हू। मैने कहा—आपने सरसरीतौर से पूरे ग्रन्थ को ही देखा है ? उन्होने थोडा हसकर कहा—सरसरी नजर से देखकर राय बोलने वाले लोगो मे तो मै नही हू। मैं प्रतिदिन एक सामायिक करता हू, उसमे किसी विशिष्ट ग्रन्थ का स्वाध्याय करता हू। अभी-अभी इक्कीस दिनो की स्वाध्याय मे आद्योपान्त वह ग्रन्थ पढा है। मुझे भाषा, विषय व प्रतिपादन शैली, सभी अच्छे लगे। पास मे बैठे श्री राकाजी ने कहा—मुनिश्री ! कस्तूरभाई किसी की प्रशसा करने मे बहुत कृपण हैं, बहुत माप-तोलकर बोलने वाले व्यक्ति हैं। ये आज इतना बोले, इसका भी मुझे आश्चर्य है।

मैंने कहा—सिद्धान्तवादी व्यक्ति व्यवहार निभाने मे अधिक विश्वास नही किया करते। इसीलिए उन्हे लोग कृपण या रूखा ही समझा करते हैं। कस्तूरभाई ने कहा—मेरी भी तो वही 'गत' है। अस्तु, इस प्रकार मुक्तहास्य की सरसता मे मेरा व कस्तूरभाई का प्रथम मिलन सम्पन्न हुआ।

ऊपर से रूखे लगने वाले व्यक्ति बहुधा अन्दर से नरम होते हैं। इस तथ्य को श्री कस्तूरभाई ने तब चरितार्थ किया, जबकि हम बम्बई से दिल्ली के लिए विहार कर अहमदाबाद पहुचे। उन्हे पत्र के माध्यम से हमारे वहा पहुचने की

सूचना पहले से थी। मध्यान्ह मे अकस्मात् व एकाकी सागर सदन में हमारे यहां पहुच गये। पहले से कुछ लोग वार्ता-लग्न थे। वे प्रणाम कर चुपचाप बैठे रहे। बाते कुछ समय तक चलती रही। उन्होने न तो चालू विषय मे हाथ बटाया, न ही कोई व्यग्रता दिखाई। इतने बडप्पन के साथ इतना धैर्य, यह भी एक विरल बात थी।

तदनन्तर वार्ता का क्रम चला। एक-एक करके स्फुट व सरस प्रसग सामने आते रहे। राजनीति, धर्म, शिक्षा, समाज आदि नाना विषयो मे उनको समझने का अवसर बना। ज्योतिष का विषय भी जमकर चला। न तो अत्यधिक आस्था और न अत्यधिक अनास्था। मेरे परम सहयोगी मुनि मानमलजी के एतद्‌विषयक ज्ञान से तो वे बहुत ही प्रभावित हुए। अगले दिन भी यही विषय चालू रहा। मैंने उनसे पूछा—ज्योतिष सत्य है या असत्य, इस विषय मे तो आपको लेकर भी एक किवदति चलती है। उन्होने कहा—वह क्या ? मैंने कहा—कहा जाता है, जिस दिन, जिस घडी व जिस लग्न मे कस्तूरभाई का जन्म हुआ, उसी समय उनके माली (बागवान) के पुत्र का जन्म हुआ। दोनो की कुण्डली एक है। माली का लडका उनका माली ही है और वे तो अपने पुरुषार्थ व सूझबूझ से देश के एक महान् व्यक्ति बन गये है। फिर ज्योतिष को क्या समझा जाये ? इस पर कस्तूरभाई खूब हसे और बोले—मुनिश्री ! मैंने तो यह बात पहली बार सुनी है। ऐसा हुआ है, यह भी मैं नही मानता। मैने कहा—बडे व्यक्तियो के साथ कुछ किवदन्तिया बन ही जाती हैं। मोतीलालजी नेहरू के विषय मे प्रचलित था कि उनके कपडे पेरिस से धुल कर आते थे। पर, प० जवाहरलालजी ने इसका स्पष्टीकरण दिया कि मै नही मानता कि मेरा बाप इतना बेवकूफ था। अस्तु, उस द्विदिवसीय समागम मे हम सबने जाना कि कस्तूरभाई कितने सरस हैं।

हम दिल्ली पहुचे। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' पहले ही अपने सिंघाड़े से वहा पहुच चुके थे। हमारे सामने थी—निर्वाण जयन्ती का भव्य कल्पना। माननीय सुशीलमुनिजी ने अपने तरीके से काम शुरू कर रखा था। बम्बई कमेटी ने अपने तरीके से वहा कार्य प्रारम्भ कर रखा था। इदिराजी ने मुझे कह दिया था कि जैन समाज एकरूप रहेगा, तभी सरकार साथ दे सकेगी। सारी स्थिति पर कस्तूरभाई से पत्राचार चलता ही था। वे बराबर अपना परामर्श भेजते रहे। अस्तु, कुल मिलाकर सुशील मुनिजी आदि सबके असीम सहयोग से निर्धारित परिकल्पना के अनुसार राष्ट्रीय कमेटी बन गई। उसका पहला सत्र ससद भवन मे हुआ। हम साधुजन व कस्तूरभाई आदि सभी अग्रणी उसमे उपस्थित हुए ही थे। प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी अध्यक्ष थी ही, सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम के पश्चात् श्री कस्तूरभाई मेरे समीप आये। वन्दन किया व मेरी बांह को थपथपाते बोले—मुनिश्री ! आपने असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। मैंने कहा—यह श्रेय मेरे अकेले का नही, अपितु, पूरे जैन समाज का है। सबने उदारता-पूर्वक जो भी हुआ, जैसे भी हुआ, साथ दिया। तभी यह असम्भव अनुष्ठान सम्भव हुआ है। अस्तु, उस दिन हमने जाना, कस्तूर भाई कितने निराग्रही, कृतज्ञ व स्नेहिल हृदय के व्यक्ति हैं। जितनी निकटता से हमने उनको देखा व परखा, उतना ही उन्हे विराट् पाया।

—०—

: १८ :

भारतीय नारी के संस्कारों में—इन्दिरा गांधी

(रोचक व अछूते संस्मरण)

स्व० श्रीमती इन्दिरा गाधी से १७-१८ वर्षों का सतत सम्पर्क रहा। 'अग्नि परीक्षा-प्रकरण', भगवान् महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती, राष्ट्रीय एकता समिति का उद्घाटन, ग्रन्थ विमोचन आदि अनेक ऐतिहासिक महत्त्व के सन्दर्भ हमारा सातव्य बनाते रहे। सम्बन्धित रोचक प्रसग मैं समय समय पर लिख भी चुका हू। इस प्रलम्ब सातत्य मे कुछ एक प्रसग ऐसे भी बनते रहे हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उनके जीवन-काल मे लिख पाना सगत न होता। प्रस्तुत लेख मे मैं ऐसे ही अछूते सस्मरण पाठको के सामने ला रहा हू, जो अब उनकी जीवन-धारा को समझने मे उपयुक्त व अनिवार्य जैसे है।

भारतीय विश्वासो मे

स्व० प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी भले ही पश्चिम की विचार-धारा व सभ्यता से अधिक प्रभावित रही हो, पर, एक भारतीय नारी मे जो सहज सस्कार, अमिट विश्वास, आस्थाए होती हैं, वे उनमे बरकरार थी, ऐसा अनेक घटना-प्रसगो से प्रतीत हुआ।

मेरे व उनके सामीप्य की एक कडी ज्योतिष भी थी। मेरे परम सहयोगी मुनिश्री मानमलजी निष्णात हस्तरेखाविद् थे तथा ग्रह-विचार मेरा विषय था। ज्योतिष के विषय मे हम लोगो से विचार-विनिमय करने मे वह इसलिए भी नेझिझक रहती थी कि मेरे इस सम्पर्क का व वार्तालाप का मुनिजनो द्वारा कभी भी अनुचित उपयोग नही होगा। वैसे वह पत्र-पत्रिकाओ मे चर्चित ज्योतिषियो, तान्त्रिको व मांत्रिको से बहुत परहेज रखती थी।

उसका बाप भी गुस्सेबाज था!

हम लोगों से बात करते वह कितनी खुल जाया करती थी, इसका एक उदाहरण है—एक बार के वार्ता-प्रसग पर उनकी हस्तरेखाओ के आधार से मुनि मानमल जी ने कहा—आपका एक लड़का बहुत तेज व गुस्सेबाज है। इन्दिराजी ने मुक्त हास्य के साथ कहा—उसका बाप भी तो गुस्सेबाज था, फिर क्यो नही होगा! मुनि मानमलजी ने कहा—रेखाए कहती हैं, तब तक आप भी बहुत गुस्सा करत थी। इन्दिरा जी ने कहा—यह भी बिल्कुल ठीक है—ताली कभी एक हाथ से थोड़े ही बजा करती है।

मुनि मानमलजी ने आगे कहा—आपकी एक पुत्र-वधु भी तुनक मिजाज वाली है। मेरी ओर देखकर इन्दिराजी ने पूछा—'तुनक मिजाज वाली' क्या होता है? मैंने कहा—'इमोस्नल'। वे बोली—यह तो ठीक है। यह तब का घटना-प्रसग है जब सजय गाधी या राजीव गाधी सार्वजनिकता मे आये ही नही थे तथा उनका पारिवारिक जीवन भी सर्वसाधारण के लिए अजाना सा ही था।

आस्था अन्तर्अनुभूति पर

अनेक बार की भविष्यवाणिया फलित होने के अनन्तर मेरे व उनके बीच से ज्योतिष एक प्रकार से निकल ही गया था। फिर वे जो भी पूछती—इस विषय मे आपकी अन्तर्अनुभूति क्या कहती है, यही शब्दावली उनकी रहती। लगता था, उनके मन मे श्रद्धा जम गई थी कि मुनिश्री जो कहेगे, वही घटित होने वाला है। सयोग की ही बात होगी कि ऐसे प्रसग भी एक के बाद एक आते गये व उनकी श्रद्धा के अनुरूप मेरा कहा उनके लिए फलित भी होता रहा।

पाकिस्तान व बगलादेश का युद्ध चालू था। ढाका उस समय युद्ध का मुख्य बिन्दु था। अमेरिका ने अपने युद्धपोत ढाका के पक्ष मे रवाना कर दिये थे तथा रूस ने भी अपने युद्ध पोत भारत के पक्ष मे रवाना करने की घोषणा कर दी थी। उस दिन के समस्त दैनिक पत्र विश्व युद्ध की सम्भावनाओ को प्रखर कर रहे थे। उसी दिन प्रात मेरा श्रीमती गाधी से वार्तालाप होना था। उनसे मेरा पहला प्रश्न था—क्या अमेरिका भी युद्ध मे आ रहा है? इन्दिराजी का चेहरा तमतमाया हुआ था। वे रोस मे बोली—भारत के खिलाफ अमेरिका कुछ भी कर सकता है। फिर उन्होने अमेरिका की आज तक की भारत विरोधी नीतियो पर रोषपूर्ण प्रकाश डाला, लगभग पन्द्रह मिनट तक। उन्होंने कहा—मुनिजी! अमेरिका पैसो के बल पर सारे विश्व को खरीद लेना चाहता है, पर, अब वह समय लद गया है कि सभी देश चादी के टकडो पर बिक जाते हैं।

मैंने देखा, उनकी मुख-मुद्रा मे साक्षात् दुर्गा का अवतरण हो रहा था। कुछ शान्त होकर बोली—अमेरिका युद्ध मे आएगा या नही आएगा, इस विषय म आपकी अन्तर्अनुभूति क्या कहती है ?

मैंने कहा—मेरी अनुभूति तो यही कहती है, अमेरिका युद्ध मे नही आएगा, दो दिनो के अन्दर ही ढाका शस्त्र डाल देगा तथा विजय का सेहरा सारा ससार आपके माथे पर बाध देगा। अस्तु, यह तो सर्वविदित है ही कि दो दिनो मे सब कुछ वैसा ही हो गया।

ऐसी अनेक घटनाओ से इन्दिरीजी की श्रद्धा को बल मिलता ही रहता। जिस चुनाव मे उनकी पार्टी व वह स्वय हारी, चुनाव के ठीक पन्द्रह दिन पहले मैंने उनसे कहा—अभी चुनाव कराने का सुझाव आपको किस बेवकूफ ने दे डाला ? वातावरण भयकर है, सारा पाशा ही पलट सकता है। उस समय मेरी वह बात शायद उन्हे अच्छी नही लगी। कुछ तमक के बोली—जो होना है, हो जायेगा, अब सोचने से क्या हो सकता है। उन्होने इसी सदर्भ मे इतना और कहा—हमारी चुनाव सभाओ की भीड से तो ऐसा प्रतीत नही होता। खैर, जो कुछ हुआ, वह तो सर्वविदित है ही।

अपनेपन की पहिचान

स्व० श्रीमती इन्दिरा गाधी मे बात की और व्यक्ति की पहिचान भी बहुत गहरी थी। तदनुसार उनके मन मे उस व्यक्ति का अकन भी बना रहता था। अनन्तरोक्त वार्तालाप के काफी समय पश्चात् हमारा कलकत्ता मे उनसे पुन मिलन हुआ। जनता पार्टी उस समय सत्ता मे थी। इन्दिराजी अनेक तरह से आरोपित थी। शाह कमीशन बैठा हुआ था। अस्तु, उस दिन इन्दिराजी, सजय व मेनका तीनो कलकत्ता के पार्क होटल मे मेहमान थे। हमारे प्रतिनिधि द्वारा फोन किये जाने पर स्वय इन्दिराजी ने कहा—बडी कृपा होगी, यदि मुनिश्री दर्शन दे सके। हम तीन मुनि व एक-दो कार्यकर्त्ता लुहारीवाला भवन से पार्क होटल पहुचे। श्री सजय गाधी, श्री प्रणव मुखर्जी, श्री गन्नी खा चौधरी ने द्वार पर ही हमारा स्वागत किया। वार्ता गृह मे तीन वे लोग अर्थात् सजय, मेनका व इन्दिरा जी थे तथा तीन हम मुनिजन। मेरे सिवाय मुनि मानमलजी व मुनि मणिकुमार जी भी।

श्रीमती गाधी ने साक्षात्कार के साथ-साथ ही कहा—चुनावो के विषय मे आपने जो दिल्ली मे कहा था, वह ही सही गया। अब आपकी अनुभूति क्या कहती है ? लोग तो कह रहे हैं, अभी आपका शनि बहुत कडा है। अगुलिया आगे बढ़ाते

हुए कहा—एक अगुली मे मुझे लोहे की अगूठी पहनाई गई है। आज के समाचार पत्रों मे आपने पढ़ा ही होगा, मेरे प्रबल समर्थक कर्नाटक के मुख्यमत्री श्री देवराज अर्स भी अपनी पार्टी सहित अलग हो गये हैं। न जाने और क्या क्या होना है।

मैंने कहा—मेरी अनुभूति तो अब स्पष्ट-स्पष्ट बोल रही है—जनता मे ७० प्रतिशत धारणाए पुन आपके पक्ष मे जम गई है। जनता पार्टी अब दो-तीन महीनो से अधिक चलनेवाली नही लगती। आप घबराए नही, सत्ता द्रुत गति से आपकी ओर आ रही है। जहा तक शनि का सवाल है, पिछले चुनावो मे आश्चर्य-जनक सफलता इसी ने दिलाई थी, जिस पर लोगो ने कहा—कोई 'फ्रोड' खेला गया है।

इसके अनन्तर ज्योतिर्विद् मुनि मानमलजी ने इन्दिराजी व सजय की हस्तरेखाओ पर विस्तार से रीडिंग दी। मुख्य बात उन्होने कही—आपके जीवन मे घातक हमलो के कई योग हैं। इससे आपको सावधान रहना चाहिए। लगभग एक घण्टे का वार्तालाप बहुत मरम एव ऐतिहासिक रहा। इन्दिराजी, सजय व मेनका, तीनो को मगल-पाठ सुनाकर हम लोग लुहारीवाला भवन आ गये, जो कि वहा से समीप ही पडता था।

अद्भुत सयोग ही मानना चाहिए कि कुछ ही समय पश्चात् प्रधानमत्री श्री मोरारजी भाई व चौधरी श्री चरण सिहजी अलग-थलग हो जाते है। वर्तमान मत्रिमण्डल टूट जाता है। श्रीमती इन्दिरा गाधी चौधरी चरणसिंह को अपनी पार्टी का समर्थन देकर प्रधानमत्री बनवा देती हैं। तात्पर्य है, सारी राजनीति की बागडोर पुन इन्दिराजी के हाथो मे आ थमती है। अस्तु क्रमश जो घटित होता गया, वह तो यही था हो कि आशातीत चुनाव जीतकर इन्दिराजी देखते-देखते पुन प्रधानमंत्री बन गई।

अपनापन निभाती भी थीं

श्रीमती इन्दिरा गाधी मे अपने-पराये की पहचान व पकड तो थी ही, उसे वह यथोचित रूप से निभाती भी थी। सन् १९८३, मार्च के द्वितीय सप्ताह मे वायुयान यात्रा से हमारा कलकत्ता मे दिल्ली आने का कार्यक्रम बना। दिल्ली वालो का मेरे से व मेरा दिल्ली से लगाव तो सदैव रहा, पर, इस बार का प्रलम्ब अन्तराल, अभिनिष्क्रमण आदि अनेक स्थितिया एक अनजानी-सी पहचान लेकर खडी थी। कतिपय व्यक्तियो ने हमारे दिल्ली आगमन का दायित्व उठाया। वे चाहते थे, मुनिश्री के स्वागत आदि सभी कार्यक्रम प्रभावशाली ही हो।

श्री चादरतन दस्साणी व श्री रामचन्द्र सारस्वत हमारे दिल्ली आने से कुछ

ही दिन पूर्व प्रधानमंत्री के चिरन्तन निजी सचिव श्री आर० के० धवन से मिले। उन्हे बताया—हम कलकत्ता से मुनिश्री नगराजजी को दिल्ली के लिए आमन्त्रित करना चाहते हैं। साथ-साथ यह भी चाहते हैं, उनके दिल्ली पहुचते ही उनके द्वारा लिखित इस 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, खण्ड-२' का विमोचन प्रधानमत्रीजी के हाथो से हो। श्री धवन ने एक क्षण ग्रन्थ को हाथ मे लेकर देखा और कहा—आप लोग मुनिश्री को दिल्ली के लिए आमन्त्रित करिए, ग्रन्थ विमोचन का कार्य तो यथासमय हो ही जायेगा। मैं जानता हूँ, प्रधानमंत्री के मन मे उनके प्रति बडा सम्मान है।

आखिरी वार्तालाप हमारा बहुत ही ऐतिहासिक रहा। २५ अक्टूबर का दिन था। प्रात काल ही उनकी कोठी पर मेरे द्वारा सस्थापित राष्ट्रीय एकता समिति का उद्घाटन व अभिधान राजेन्द्र कोष के सात खण्डो का विमोचन था। पौन घण्टे तक सम्बन्धित कार्यक्रम चला। तदनन्तर वे एकान्त वार्तालाप के लिए हम तीन साधुजनो के साथ एकान्त कक्ष मे आ गई।

मैंने पूछा—चुनाव कराने की घोषणा आपने कर दी है, पर, आपको इस विषय मे कैसा लग रहा है। इन्दिराजी बोली—मुझे अच्छा नही लग रहा है, क्योकि मेरी पार्टी मे बहुत फूट है। मैने कहा—वह गणना मे नही आयेगी, क्योकि विपक्षी पार्टियो मे और चार गुनी फूट है। पर, आज तो इस मुद्दे पर मैं आपकी जन्म-कुण्डली से भी विचार करके आया हूँ। कुण्डली मेज पर डाली और मैंने बताना शुरू किया- ग्रह आपके कडे हैं, शनि की महादशा मे राहु की अन्तर्दशा है। इन्दिराजी बीच मे ही हसकर बोली—मेरे ग्रह सदा ही कडे रहते हैं, पता नही वे कब नरम होगे ? मैंने कहा—जहा तक चुनावो का सवाल है, ग्रहो का कडापन विपक्ष पर ही उतरेगा, क्योकि राहु छठे घर मे है। शनि भी स्वभावत विपक्षियो को पछाडता है। मेरी अन्तर्अनुभूति तो यह कह रही है कि चुनाव अप्रत्याशित रूप से सफल हो जाएगे। इतन सफल कि आप उतनी अभी कल्पना नही कर सकती। मैं यदि उस सफलता को यथार्थ रूप मे कहने की चेष्टा करूगा तो आप समझ सकती हैं कि खुश करने के लिए कहा जा रहा है।

उस दिन मुख्यत मैने तीन बाते कही थी। महादशा अन्तर्दशा की बात कही थी, तभी इन्दिराजी ने अपने सचिव श्री माखनलाल फोतेदार को कमरे मे बुला लिया था। वे हम दोनो की कुर्सियो के बीच खडे रहे। इन्दिराजी ने कहा—फोतेदार को इसलिए बुलाया है कि यह कुछ-कुछ ज्योतिष जानता भी है तथा आप जो बात कहेगे, उनमे से मुख्य-मुख्य बाते नोट भी कर लेगा। वैसे फोतेदार जी भी हमारे चिर-परिचित हो गये थे, क्योकि इससे पूर्व भी एकान्त वार्तालाप मे दो

बार उन्हे वे बुला चुकी थी, हालांकि वे बाते ज्योतिष की न होकर राजस्थान व देश की राजनीति से सम्बन्धित थी। अस्तु, चुनाव परिणामो की बात के अनन्तर दूसरी बात मैंने उनसे कही—आपकी कुण्डली मे एक योग वही है, जो प० नेहरू की कुण्डली मे था। उसका फल है—जब भी आप इस ससार से विदा लेगी, प्रधानमत्री की कुर्सी से ही लेंगी, हटकर नही। इन्दिराजी ने फोतेदार जी की ओर देखा और मुस्कराईं। तीसरी बात मैंने कही—राजीव की कुण्डली भी मैंने देखी है। उसमें प्रबल राज-योग है। आपको तो राजनीति मे कई उठा-पटक करनी पडी हैं, ज्वार-भाटे देखने पडे है, राजीव को अभी वैसा कुछ नही करना पडेगा। वे तो (अपनी पास वाली कुर्सी पर हाथ लगाते हुए) इस कुर्सी से सीधे-सपाट आप वाली इस कुर्सी पर आ जायेंगे।

इसके अनन्तर ज्योतिर्विद् मुनि मानमलजी के साथ प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने 'हस्तरेखा' पर विचार-चर्चा की। उसका मुख्य सार है—मुनिश्री मानमलजी ने कहा—पहले भी मैंने कहा था, घातक हमलो से आपको सावधान रहना है, आज फिर जोर देकर इस बात को दुहरा रहा हूँ। इन्दिराजी ने कहा—मुनिजी, सावधानी तो सीमाओ मे ही रह सकती है। हमारी 'लाइफ' ऐसी तो है नही कि कमरे मे बन्द होकर ही बैठे रहे। कार से, प्लेन से जाना-आना रोजमर्रा का काम है। सभाओ मे जनता के आमने-सामने भी होना पडता है, सुरक्षा कहा तक रह सकती है। जिस दिन होना है, वह हो ही जायेगा। मैने मुनि मानमलजी की ओर सकेत किया कि इस बात को बन्द करो, अनेक बार यह बात तुम पहले भी कह चुके हो। कटु सत्य को बार-बार दोहराना अच्छा नही। अस्तु, जैसा कि इन्दिराजी का विश्वास था कि जिस दिन होना है, वह हो ही जायेगा, आखिर वह उक्त वार्तालाप के ६ दिन पश्चात् ही घटित हो गया, अर्थात् वार्तालाप २५ अक्टूबर को हुआ तथा उन पर घातक हमला ३१ अक्टूबर को हो गया। उसी दिन वह मृत्यु पाकर अमर हो गई।

—८—

: १९ :

विरल विभूतियों में एक थे आचार्यरत्न देशभूषणजी

मुनि भी अनेक होते हैं, आचार्य भी अनेक होते हैं, पर, ऐसे मुनि व आचार्य विरल होते हैं, जो जीवन मे निर्माण का नया इतिहास गढ़ जाते हैं। ऐसी ही विरल विभूतियो मे एक थे, आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी। आपके जीवन मे साधना व सृजन का मणिकाचन योग था। मैंने आपको बहुत निकट मे जाना, देखा, व परखा है। ऐसे नाना सस्मरण हैं, जो उनकी जीवनगत विशेषताओ के परिचायक है। मैं मानता हू, मुनियो व आचार्यों मे आप प्रथम थे, जो श्वेताम्बर समाज मे घुले-मिले व इतने जाने-माने थे।

सन् १६६६ की बात है। मेरा व उनका चातुर्मास जयपुर मे था। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के मुनिवर श्री विशाल विजय जी का चातुर्मास भी वही था। सामूहिक प्रवचन का एक अभिनव प्रयोग हम सबने वहा किया। श्रावण मास के प्रारम्भ से ही प्रति पखवाडे का दूसरा रविवार सयुक्त प्रवचन के लिए निश्चित कर लिया था। निर्धारित विषय पर, श्वेताम्बर दिगम्बर सभी परम्पराओं का सयुक्त प्रवचन किसी एक ही निर्धारित स्थान पर होता। जयपुर के पूरे जैन समाज मे इस अभिनव की प्रयोग सुन्दर प्रतिक्रिया थी।

आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी की विशेषता यह रही कि सभाओ मे हम सब मुनियो के साथ उन्होने समान स्तर से बैठना मजूर किया। मुझे मालूम है कि दिगम्बर श्रावक समाज का यह आग्रह बराबर बना रहा कि आप आचार्य हैं, फिर मुनियो के साथ एक स्तर से ही क्यो बैठ जाते हैं, पर आचार्यरत्न देशभूषणजी ने इन बातो की कोई परवाह नही की और व अभिनव प्रयोग काफी समय तक चलता ही रहा।

वे मिलने वालों को अपनी आत्मीयता मे बाध लेते थे, अपने प्रेम व अपनी उदारता से। जयपुर के पर्व ीय अचल मे मन्दिरो आदि का एक तीर्थरूप निर्माण आपकी प्रेरणा से हो रहा था। आपने आग्रह किया कि किसी एक रविवार को आप लोग वहा चलें, मैं भी चलूगा। चातुर्मास के अन्तिम दिनो मे एक तथारूप कार्यक्रम रहा। जयपुर से ३-४ मील दूर और पर्वतो की चढाई। बडा आनन्द आया। पर्वत की चढाई मे वयोवृद्ध होते हुये भी हम सबके आगे आप चल रहे थे। बीच-बीच मे मुझे सम्भालते भी थे कि आप तो पीछे रह गये और मेरी बाह पकड-क र मुझे आगे लाते। उस अनोखी पर्वतीय सुषमा मे निर्मित व निर्मीयमाण प्रतीको का साथ-साथ रहकर मुझे अवलोकन कराया। दोनो समाजो के सैकडो-सैकडो श्रावक बन्धु भी साथ थे। पर्वत की तलहटी मे दिगम्बर जैन मन्दिर था, जो अपनी स्वर्ण-कला के लिए सुप्रसिद्ध है। वहा हम लोगो का प्रवचन हुआ। जयपुर के तेरा-पथ समाज व दिगम्बर समाज का वह एक ऐतिहासिक मिलन था।

सन् १९७१ से भारत की राजधानी दिल्ली मे कई वर्षाकाल हमारे साथ-साथ हुए। भगवान् महावीर की २५००वी निर्वाण जयन्ती की तैयारी का वह कार्यकाल था। वहा माननीय सुशील मुनिजी आदि अनेक साधु सतिया थे ही। आपकी स्नेहशीलता से हेलमेल इतना बढ गया था कि महावीर जयन्ती आदि पर्व तो सामूहिक रूप से मनाये ही जाते। पर, अन्य परम्परागत कार्यक्रम भी सामूहिक रूप से मनाये जाने लगे। हर परम्परा सबको आमन्त्रित करती व सभी आचाय, मुनि वहा सहर्ष पहुचते। इन सब कार्यक्रमो मे आपका उत्साह समुल्लेखनीय ही रहता। पारस्परिक आत्मीयताये इतनी सध गयी थी कि पारस्परिक घटना-प्रसग सामूहिकता ले लेते। आचार्यश्री तुलसी ने मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का चातुर्मास कलकत्ता का घोषित कर दिया, जबकि उनका नाम राष्ट्रीय समिति से सम्बन्धित आचार्यों व मुनियो की परामर्श समिति मे था। और विगत दो वर्षो से २५००वी निर्वाण जयन्ती के कार्य को आगे बढाने मे हम सबके साथ थे। आचार्य-रत्न श्री देशभूषणजी ने इस असामयिक निर्णय को सामूहिक सभाओ मे चर्चित किया एव पत्र व तार के माध्यम से उनकी राय दिगम्बर बन्धुओ न आचार्य श्री तुलसी तक भी पहुचाई।

१२ अप्रैल, १९७२ का दिन था। राष्ट्रीय समिति का प्रथम अधिवेशन तत्कालीन प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता से ससद भवन मे ही चार बजे होना था। जैन समाज मे अपूर्व उल्लास था। चारो समाजो के प्रतिनिधि सदस्य देश के कोने-कोने से दिल्ली पहुच चुके थे। प्रात ११ बजे के लगभग ही एक

व्याघात आया। प्रधानमंत्री भवन से सूचना मिली कि दिगम्बर मुनि संसद भवन मे आयेंगे तो विभिन्न प्रतिक्रियाए होगी, अत कृपया वे वही से अधिवेशन की सफलता के लिये आशीर्वाद प्रदान करें। आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी ने इसे दिगम्बरत्व का अपमान माना और कहा—हमारे श्रावक प्रतिनिधि भी फिर क्यो जायेगे ? मैं नही जाऊंगा तो मुनि नगराज व मुनि सुशीलकुमार भी कैसे जायेगे। स्थिति उलट गयी।

मध्याह्न में केन्द्रीय उप शिक्षामंत्री श्री डी० पी० यादव चार बजे की मीटिंग का कार्यक्रम निश्चित करने मेरे यहा आये। बाते हुई। उन्होने कहा—प्रधानमंत्री भवन के निर्णय पर शिक्षा मंत्रालय क्या कर सकता है ? मैंने कहा—आप स्वय आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी के दर्शन कर ल तथा उन्हे आश्वस्त कर दे। वैसा सम्भव न हो तो मेरे दो प्रतिनिधियो को पार्लियामेन्ट मे श्री यशपाल कपूर तक पहुचा दें ताकि मेरी राय उनके माध्यम से प्रधानमंत्री तक अविलम्ब पहुंच सके। अस्तु, उप शिक्षामंत्री श्री डी० पी० यादव ने आचार्य देशभूषणजी महाराज के दर्शन किये, पर, बात बैठने वाली थी ही नही। उन्होने कहा—भगवान् महावीर दिगम्बर थे और सरकार भगवान् महावीर की निर्वाण जयन्ती मे दिगम्बर मुनियो को ही बाद देना चाहती है, यह कैसी भगवान् महावीर की निर्वाण जयन्ती ?

मेरे प्रतिनिधि शिक्षा मंत्री के साथ ही पार्लियामेन्ट मे पहुच गये। इन्दिराजी के सचिवो से मिले तो उन्होने कहा—प्रधानमंत्री महिला हैं, पार्लियामेन्ट भवन है, इस स्थिति मे दिगम्बर मुनियो का यहा आना प्रशस्त नही होगा। अन्त मे श्री यशपाल कपूर स्वय प्रतिनिधियो को मिल गये। उन्हे बताया गया—मुनिश्री नगराजजी ने कहा है—दो वर्षो का 'काता-पीना कपास हो जायेगा', आप गम्भीरता से प्रधानमंत्री का ध्यान इस ओर दिलाये। श्री कपूर ने एक ओर हट कर प्रधानमंत्री से फोन पर बात की तथा तत्काल प्रतिनिधियो को कह दिया—दिगम्बर आचार्यजी को सहर्ष पधारने का निवेदन कर दे। बात बन गई। हम सब आचार्य, मुनि नई दिल्ली के निशि मन्दिर मे ही तब तक एकत्रित हो गये थे। वही सन्देश आ गया और हम सब सहर्ष पार्लियामेट मे पहुच गये। प्रथम अधिवेशन सानन्द सम्पन्न हो गया।

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी के उस सभा मे भाग लेने की दिगम्बर समाज मे या अन्यत्र जो भी चर्चा रही हो, पर, मैं यह मानता हू कि ऐसा करके आचार्यश्री

ने दिगम्बरत्व को राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता दिलवा दी। उस दिन ऐसा नहीं होता तो दिगम्बर आचार्य व मुनि इन्दिरा गांधी की अध्यक्षता में समायोजित भगवान् महावीर के २५००वें विराट निर्वाण समारोह मे भी कैसे भाग ले सकते ? पर, आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी की उदारता ने इस प्रश्न को सदा-सदा के लिये समाहित कर दिया।

—०—

: २० :

भृगु-सहिताएं : वास्तविकताए और ठगी भी

भृगु-सहिताओ के सम्बन्ध मे मै एक घटना के कारण सक्रिय हुआ। श्री मोरारजी भाई देसाई ने एक दिन कहा—यहा दिल्ली मे प० हवेलीराम नामक किसी व्यक्ति के पास लोग ऐसी भृगु-सहिता बताते हैं, जिसमे श्री गुलजारी लाल नन्दा के भी प्रधानमन्त्री बनने की बात लिखी है। उस समय पण्डित नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व मे श्री नन्दा गृहमन्त्री थे तथा श्री मोरारजी देसाई वित्तमन्त्री।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने पण्डित हवेलीराम से सम्पर्क साधा। मैं भी उनके यहा गया। श्री नन्दा के प्रधानमन्त्री बनने वाली जन-श्रुति को उन्होने वास्तविक बताया और अपनी भृगु-सहिता का परिचय देते हुए कहा—मेरे ग्रन्थ का नाम अरुण सहिता है। पीढियो से यह ग्रन्थ हमारे पास है। उस ग्रन्थ के कुछ एक पत्र मेरे सामने करते हुए उन्होने कहा—"देखिए, पत्र भी कितने जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं। लिपि देवनागरी होने हुए भी इतनी अजीबोगरीब है कि पूरी तरह से मैं ही पढ सकता हू।"

श्री नन्दा के सम्बन्ध मे भविष्यवाणी की जानकारी तो मैंने प्रसगवश ही प्राप्त की। मेरा मुख्य ध्येय मेरी व मेरे से सम्बन्धित अन्य कुछ जन्म-कुण्डलियो पर उनकी अरुण सहिता सुनना था। मेरी जन्म-कुण्डली उन्हे दे दी गई। निर्धारित तिथि पर फलादेश हवेलीराम ने पढ़ कर सुनाया। भूतकाल की—भाई-बहिन, दीक्षा, अध्ययन, माता-पिता आदि विषयक सब बाते सही-सही थी। मेरे एक भाई का निधन शिशुकाल मे ही हो गया था, जिसका ख्याल मुझे स्वयं भी नही आ रहा था। यह बात अरुण सहिता मे स्पष्ट उल्लिखित निकली। भविष्य की बाते भी ठीक ही लग रही थी। पर अब, जबकि उस फलादेश को सुने काफी समय निकल गया और वह फलादेश लिखित रूप मे मेरे पास पडा है, पता चलता है कि कुछ बातें सही जा रही हैं, कुछ नही भी जा रही हैं।

कुछ दिन पहले कुण्डली ले लेने की और पत्र निकाले जाने की प्रच्छन्न क्रिया से एक बार ऐसा भी लगा था कि सब कुछ नकली किया जा रहा है। परन्तु, जीवन की कुछ विशेष बाते उसमे जिस तरह से स्पष्ट हुईं तो यह निर्विवाद मान ही लेना पड़ा कि अरुण सहिता भी कोई वास्तविकता है।

सुषुम्ना का भेदन हो जायेगा

मेरे सहवर्ती मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' और मुनि मानमलजी की जन्म-कुण्डलियो पर भी समयान्तर से फलादेश सुना। परिणाम लगभग वही कि विगत सब कुछ ठीक और भविष्य यथार्थ भी, अयथार्थ भी।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के फलादेश मे प्रसगवश योग विषयक वर्णन इस प्रकार से मिला—"जातक के बाल्यकाल मे ही सर मे चोट आयेगी, जिससे उसकी सुषुम्ना का भेदन हो जाएगा। स्मृति खुल जाएगी। आगे चल कर यह स्मरण-शक्ति के विलक्षण प्रयोगो से ख्यापित होगा।" सिर मे कील गड जाने से बचपन मे चोट आई, यह यथार्थ था। आगे चल कर अवधान-विद्या से अर्थात् स्मरण-शक्ति से भारत-विश्रुत हुए।

सहिता से लग्न-निर्णय

इसी अरुण सहिता पर अन्तिम प्रयोग आचार्य श्री तुलसी की जन्म-कुण्डली पर हुआ। आचार्यश्री की जन्म-कुण्डली अनिर्णीत थी। सम्भावित समय को पकड कर ज्योतिषी लोग कर्क, सिह व कन्या लग्न की भिन्न-भिन्न तीन कुण्ड-लिया बना रहे थे तथा अपने-अपने निर्णय के लिए आग्रहशील थे। कलकत्ता मे मैंने आचार्यश्री की हस्तरेखाओ के आधार पर एक ज्योतिष मे लग्न-निर्णय कर-वाया था। उन्होने रेखाओ के आधार से आचार्यश्री का जन्म सम्वत्, तिथि, वार आदि सही-सही बताया। लग्न, सिह बताया। अन्य सब बात ठीक थी तो लग्न को भी सही न मानने का कोई आधार नही था।

आचार्यश्री के कुण्डली लग्न को मै अरुण सहिता की कसौटी पर भी कसना चाहता था। तब आचार्यश्री स्वय भी दिल्ली मे ही थे। पण्डित हवेलीराम को उनकी तीनो कुण्डलिया दे दी गईं तथा कहा गया कि हम इन तीनो कुण्डलियो के ही फलादेश सुनना चाहते हैं।

कर्जन रोड स्थित एक भवन के एकान्त कक्ष मे आचार्यश्री के समक्ष ही संहिता का वाचन आरम्भ हुआ। आचार्यश्री व पण्डितजी के सिवाय मुनि नथमल-जी (वर्तमान मे युवाचार्य महाप्रज्ञ), मै और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' सहिता-

श्रवण मे सम्मिलित थे। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' फलादेश लिखते भी जा रहे थे। कर्क लग्न व कन्या लग्न वाली कुण्डलियां नही चल पाई। उनमे जो वर्णन आ रहा था, उनका आचार्यश्री के जीवन से कोई मेल नहीं था। सिंह लग्न की कुण्डली का फलादेश तब तक के अतीत का तो सही-सही निकला ही, भविष्य का वर्णन भी सम्भावित जैसा ही था। यह बात अलग है कि अब भविष्य की कुछ बातें सही नही जा रही हैं।

भविष्य पूर्ण सत्य क्यों नहीं ?

अरुण सहिता मे तथा आगे चर्चित की जाने वाली समस्त सहिताओं के विषय मे मेरी यही अनुभूति रही कि सभी मे जिस दिन जातक सहिता सुनता है, उस दिन तक की लगभग सभी बाते सही होती हैं और उस दिन के बाद की उल्लिखित कुछ ही बाते सही जाती हैं। इसका रहस्य बहुत कुछ सोचने पर भी स्पष्ट नही हो पाया। सैकडो वर्ष पूर्व लिखी गई सहिताओ मे यदि केवल ज्योतिष का आधार है तो अतीत और अनागत समान रूप से मिलने चाहिए—अर्ध सत्य या पूर्ण सत्य। इन सहिताओ के लेखन मे कोई दैवी-आधार हो तो सभी पूर्ण सत्य सिद्ध होना चाहिए। कोई कर्ण पिशाचिनी सिद्धि ही सहायक रही हो तो फिर अतीत के सत्य व अनागत के सत्य असत्य होने की सम्भावना फलित हो सकती है ? अस्तु, आचार्यश्री तुलसी की जन्म-कुण्डली का सिंह लग्न की होना आगे चल कर उनकी जन्म-भूमि लाडनू मे उनके पारिवारिक पुरोहितो के यहा सम्बन्धित प्राचीन पचाग मे भी लिखित रूप मे मिल गया। यह अरुण सहिता की वास्तविकता का ज्वलन्त प्रमाण है।

३६ मन वजनी सूर्य संहिता

मैं जिन-जिन सहिताओ से प्रभावित हुआ, उनमे एक संहिता थी बम्बई के पण्डित बाबूराव ज्योतिष की। १९५५ मे लोगो से चर्चा सुनी कि यहा एक ऐसी सहिता है, जिसके समस्त मुक्त पत्रो का वजन ३६ मन है। फलादेश भी कमाल का है। सम्पर्क साधा गया। निर्धारित समय पर मैं और मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' फलादेश सुनने पहुचे। सम्बन्धित पत्र सामने आए। हमने हाथ में लेकर देखा—साफ-साफ सुन्दर व बडे अक्षरो मे सस्कृत के श्लोक लिखे थे। हम स्वय भी उन्हे पढ सकते थे। पर, बीच-बीच मे कुछ अपरिचित से शब्द भी लगे। पण्डितजी ने बताया—"इन शब्दो का अर्थ परम्परागत ज्ञान के आधार पर और पढ़ते रहने

के अनुभव के आधार पर ही किया जाता है। जैसे कि—'कालू-छेदित' अर्थात् आपरेशन।"

पडितजी ने यह भी बताया—"मुक्त पन्नो का यह ग्रन्थ ३६ मन वजन का है। बहुत प्राचीन है। पूर्वजो से सुनते आये हैं, यह ग्रन्थ किसी जैनाचार्य ने गुफा मे बैठ कर लिखा था। इस ग्रन्थ का नाम सूर्य सहिता है। वह इसलिए कि जैन परम्परा मे भृगु ऋषि की तथारूप मान्यता नही है। हमारे पूर्वज यह भी कहा करते थे कि वैदिक विद्वान् ऐसी सहिताए लिखते तो वे उनका नाम भृगु-सहिता देते, क्योकि इस कोटि का प्रथम ग्रन्थ भृग ऋषि ने ही लिखा था।

जैन ज्योतिषी इस कोटि के ग्रन्थ लिखते थे। वे ग्रहो के राजा सूर्य को प्रधानता देते तथा उनके ग्रन्थो का नाम सूर्य सहिता, अरुण सहिता आदि देते थे। अस्तु, हमारे ब्राह्मण परिवार मे यह ग्रन्थ कैसे आया, इसका भी कुछ इतिहास बचपन मे मैं सुना करता था। वह अब पूरा याद नही है।" अस्तु, पण्डितजी ने सहिताओ के जैन होने की बात कही, पर जैन परम्परा मे ऐसा कोई इतिहास तो नही मिलता, सिवाय भद्रबाहु सहिता नाम से इस कोटि के एक ग्रन्थ के।

राजपुरुषों से मिलन बहुत होगा

मेरी जन्म-कुण्डली पर पडितजी ने फलादेश पढना प्रारम्भ किया। पहले वह सस्कृत के श्लोक बोलते, फिर हिन्दी मे अर्थ। उस ग्रन्थ मे साथ-साथ एक टीका भी थी। किसी-किसी अर्थ को वह टीका देखकर स्पष्ट करते। मुनि महेन्द्र कुमारजी 'प्रथम' पडितजी द्वारा बोले गये हिन्दी अर्थ को लिखते भी जा रहे थे। कही महत्त्वपूर्ण बात होती तो पूरा श्लोक भी यथावत् लिख लेते।

सूय सहिता मे मेरी जन्म-कुण्डली का फलादेश इन शब्दो मे आरम्भ हुआ—"जातक का जन्म कुम्भ राशि के ग्राम मे (सरदारशहर) जैन परिवार मे हुआ है। चार भाई व चार बहने हैं। पिता व्यापारी हैं। श्वेत-वस्तु (कपडे) का व्यापार करते हैं। सूर्य, चन्द्र और गुरु बहुत श्रेष्ठ है। केन्द्र स्थान मे राहु का योग है, जिसके फलस्वरूप राजपुरुषो से मिलन बहुत होगा। दारा व पुत्र नही होगे। १७ वर्ष की आयु मे साधु बनेगे। धर्म का प्रवचन करेगे। पैसा नहीं होगा, फिर भी लक्ष्मी मिलेगी।"

इस प्रकार की भूमिका के अनन्तर १ से ३ व ४ से ६ इस क्रम से जीवन भर का सक्षिप्त ब्योरा उक्त सहिता मे दिया गया है। जिस सम्वत् मे मैं यह फलादेश सुन रहा था, उस समय मेरी आयु ३८ वर्ष की थी। तीन मुनि मेरे पास सहवर्ती थे। हालाकि फलादेश-श्रवण मे हम दो ही मुनि थे। हम कुल कितने हैं, इस

बात का पडितजी को कोई आभास भी नही था। सहिता मे ३७ से ३६ वर्ष का फलादेश लिखा मिलता है—आप अध्यापक हैं। आपके तीन शिष्य हैं। तीनो कामधेनु समान हैं। उनमें भी एक विशेष शक्तिशाली व कर्मशील है। (मुनि महेन्द्र कुमार तब तक काफी प्रभावशाली बन चुके थे) वह तप करता है, कभी-कभी कोप भी करता है, आपके प्रवाह मे मिलने वाला है। जहा आप जायेंगे, साथ रहेगा। मुनि महेन्द्र कुमारजी तप भी करते थे, तेजस्वी भी थे, कुल मिला कर उनकी प्रकृति का विवरण भी यथार्थ ही था।

भविष्य की बात भी सही

पाठको के मन मे जिज्ञासा हो सकती है, भविष्य की बात का भी कोई उदाहरण प्रस्तुत होना चाहिए। उक्त विवरण मेरे ३६वे वर्ष मे सुना गया व लिखा गया। उसके १२-१३ वर्ष बाद हमारा पुन बम्बई मे चातुर्मास हुआ। उस वर्ष कानपुर विश्वविद्यालय ने मुझे साहित्य-सेवा के उपलक्ष मे 'डी॰ लिट्॰' की मानद उपाधि से सम्मानित किया। वहा के उपकुलपति ने बम्बई आकर वहा के राज्यपाल के हाथो उपाधि-पत्र भेंट करवाया। मेरे मन मे आया, किसी ज्योतिषी ने इस वर्ष के लिए तो ऐसा कुछ नही कह रखा था। मेरे पास जितने फलादेश थे, सभी ध्यान से पढे। मेरे उस ५२वे वर्ष के विषय मे किसी मे कुछ लिखा नही मिला, केवल सूर्य सहिता के लिखित विववण मे इतना भर लिखा मिला—'५२वे वर्ष मे कोई विभूति मिलेगी।' मन मे आया, विभूति का अर्थ अब तक हम नही समझ पाये थे, सहिताकार का तात्पर्य इस प्रकार से फलित हुआ है।

१६५५ के वर्षावास मे पडित बाबूराव के पास एक और सहिता-ग्रन्थ आया हुआ था। उन्होने बताया--"मैं यह दक्षिण से लाया हू। भाषा सस्कृत है, पर लिपि ब्राह्मी है। मैंने वह ग्रन्थ देखा। २-३ इंच चौडाई व ८ ६ इच लम्बाई के ताडपत्रो पर लिखा हुआ था। छोटा-सा ग्रन्थ था। लगभग १०० पत्र ही होगे। मेरी कुण्डली पर उन्होने वाचन करना व फलादेश कहना आरम्भ किया। विगत जीवन की सब बातें ठीक ठाक थी, परन्तु, मेरा विश्वास जमा नही। इतने छोटे-से ग्रन्थ मे सब कुण्डलिया कैसे आ सकती हैं ? पिछली बाते तो पडितजी पहले से जान ही चुके हैं, क्योकि १३-१४ वर्ष पूर्व सूर्य सहिता मे सब कुछ आया ही था, आदि-आदि वितर्क मेरे मन मे सदेह पैदा कर रहे थे। मै सब कुछ इसी धारणा से सुनता रहा कि पडितजी सब कुछ अपने मन से ही बोल रहे हैं।

उस ग्रन्थ मे भविष्य की बात ऐसी आई, जो मुझे नितान्त असम्भव लगी। वह बात थी—६० वर्ष की आयु मे जातक अपने गुरु का विसर्जन कर देगा। अस्तु,

यह फलादेश सुन रहा था, तब मेरी आयु ५२ वर्ष की थी। आचार्यश्री तुलसीश्री तुलसी आत्मीय सम्बन्ध थे। सघ मे सर्वेसर्वा कहलाने वाले कुछ लोगो में मैं एक था। पर, ६० की अवधि के निकट आते-आते ऐसी कुछ परिस्थितिया बनी कि मुझे गुरुविसर्जन का निर्णय ले ही लेना पडा। तब ऐसा लगा, ५२ वर्ष की आयु मे जो सहिता सुनी थी, वह कल्पित कहानी न हो कर कोई अद्भुत वास्तविकता थी।

४५वें वर्ष मे सहिता सुनेंगे

पंडित नेहरू के जमाने मे पडित मुशीरामजी की भृगु-सहिता भी दिल्ली मे बहुत चर्चित रही। संसत्सदस्यो व मन्त्रियो मे भी अपना-अपना भविष्य जानने की आतुरता प्रबल हो उठी थी। अनेक धनीमानी लोग भी वहा पहुचने लगे थे। सहिता-शास्त्रो के अनुसन्धान मे मेरी रुचि चल ही रही थी। मेरे सम्बन्ध मे भी एक बात उसमे बडी अद्भुत निकली। मेरे सहवर्ती मुनि मानमलजी पडित मशीरामजी से सम्पर्क हेतु उनके घर व कार्यालय गए। पर, उनसे मिलना नही हुआ। बात ढील मे पड गई।

तीन वर्ष बाद मुनि मानमलजी पुन सचेष्ट हुए। मुशीरामजी भी मिल गए। प्रारम्भिक परिचय तो बडा ही मनोरजक रहा। मुनि मानमलजी ने कहा—"आपकी सहिता विख्यात हो रही है। हम भी एक कुण्डली का फलादेश उमसे सुनना चाहते है।"

पंडितजी—"फलादेश सुनने की फीस कौन देगा ?"

"साधु-सन्तो से भी आप फीस लेना चाहेगे ?"

"भारतवर्ष मे साधु-मन्त ७० लाख हैं। मैं बिना फीस फलादेश सुनाने लगू तो मेरे बाल-बच्चे क्या खाएगे ?"

"आप ७० लाख साधु-सन्तो मे सबको समान ही समझते हैं ?"

"आप किमकी जन्म-कुण्डली का फलादेश सुनना चाहते हैं ?"

"मुनिश्री नगराजजी की जन्म-कुण्डली का।"

"अच्छा, केवल एक उनकी जन्म-कुण्डली का फलादेश मैं सुनाऊगा, आज से सातवे दिन आप लोग कुण्डली लेकर आ सकते हैं।"

हम लोग सातवे दिन की प्रतीक्षा मे थे। इसी बीच, उमी सातवें दिन तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद से मिलने का कार्यक्रम बन गया। निश्चय किया, मुझे तो राष्ट्रपति-भवन जाना ही होगा। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' मेरी जन्म-कुण्डली लेकर मुशीरामजी के यहा चले जाए।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' गए। वाचन आरम्भ हुआ। प्रथम विवरण ही आया—यह जातक अपनी ४२ वर्ष की आयु में इस फलादेश को श्रवण करने की चेष्टा करेगा, परन्तु, सुन नहीं सकेगा। फिर ४५वें वर्ष में यह फलादेश सुनेगा, परन्तु साक्षात नहीं सुन पाएगा। अपने भ्रातृरूप साधु के माध्यम से मेरे वाक्य श्रुति गोचर करेगा। अस्तु, उक्त संहिता की इस बात से हम सभी विस्मित रहे। हमने तीन वर्ष पूर्व फलादेश सुनने का प्रयत्न किया था, इसका भी पंडितजी को पता नही था तथा आज मैं स्वय नही आ सकूंगा, इसका पता हमने उनको नही दिया था!

अन्य सहिताओ मे नारद-सहिता, रावण-संहिता, होशियारपुर की संहिता, बिहार की भृगु-सहिता, उत्तर प्रदेश की भृगु-सहिता, बनारस की भृगु-संहिता आदि मैंने साक्षात् नही देखी, परन्तु अन्य व्यक्तियों के प्रति लिखित फलादेश मैंने देखे। उन भृगु-सहिताओ के विषय में अधिकृत रूप से कुछ भी कह पाना संगत नही होगा।

संहिताओं के नाम पर ठगी

अब मैं भृगु-सहिता के दूसरे पक्ष पर आना चाहूगा। वर्तमान बुद्धिवादी युग मे एक वर्ग ऐसा भी है, जो इन सबको ठगी व नकलीपन मे ही शुमार करता है। इस पक्ष को भी नितान्त असत्य नही माना जा सकता। हर वास्तविकता के नाम पर ठगी चला ही करती है, जो कि भारतवर्ष मे विशेष ही प्रतीत होती है। साधु-सन्यासी भारतीय सस्कृति के एक रूप हैं, परन्तु, जानीबूझी बात है कि साधुता के लक्षणो से युक्त जितने साधु-सन्यासी देश मे हैं, उससे कही अधिक शायद उसी वेश मे ढोंगी, ठग व मायाचारी मिल जाते हैं।

देव-योनि का अस्तित्व भारतीय सस्कृति मे मान्य है, परन्तु, देवी-देवताओ के नाम पर पडे-पुजारी जो-जो ठगी चलाते हैं, वह भी जग-जाहिर है। उदाहरणार्थ, एक बार एक देव-स्थान मे मेला लगा था। देव-परिक्रमा के समय एक पडे ने एक अन्धप्राय जैन महिला को कान मे कहा—'मुझे बाबा का दर्शन हुआ कि तुम मन्दिर से निकलते-निकलते यदि तीन बार जोर से चिल्लाओगी कि 'मुझे आखें मिल गई, 'मुझे आखें मिल गईं', तो तीसरी बार चिल्लाते ही तुम्हारी आखों में ज्योति आ जाएगी।" यह कह कर पण्डा भीड मे गायब हो गया। भद्र महिला ने जोर-जोर से तीन आवाजें मार दी। उपस्थित हजारो लोगों मे पलक मारते ही फैल गई—बाबा चमत्कारी है, हर साल किसी-न-किसी को आख देता है। उस जैन महिला के परिवार के सदस्य भी बहुत प्रसन्न हुए कि हमारी देव-यात्रा सफल रही। पर,

आवास पर आकर जब उस महिला से पूछा गया—"तुम्हें कितनी नजर मिली है?" महिला ने कहा—"मुझे तो पहले जैसे 'झांका' पडता था, वैसा ही अब पड़ता है, कोई अन्तर नहीं।" परिजनों ने कहा—"तब तू चिल्लाई क्यों?" तब उसने पडे की वह हरकत बताई।

पंडे की धूर्तता पर मैं भी विस्मित रहा। हजारो लोगो मे प्रचार हो गया। अगले वर्ष मेले पर दुगुनी भीड हो गई, दुगुना चढ़ावा हो गया। उस धूर्तता का स्पष्टीकरण कौन, किससे करता?

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि भृगु-सहिता एक वास्तविकता है, परन्तु, उसी नाम पर कितनी अवास्तविकताए पेशेवर लोग चलाते हैं, उसका भी बडा विस्तृत ब्योरा है। सक्षेप में मैं वह भी प्रस्तुत कर देना चाहूगा।

सब कुछ भुलावा ही था

सरदारशहर (राजस्थान) के सेठिया बन्धु कानपुर मे रहते हैं। वहा उनका एक भृगुशास्त्री पण्डित से सम्पर्क हुआ। उनका नाम भी मेरी स्मृति मे है। कुछ फलादेश सुने। वह इतने प्रभावित हुए कि भाव-विभोर हो गए। उस सहिता मे आचार्यश्री तुलसी और तेरापन्थ की अन्तरग बाते—उत्तराधिकारी का नाम आदि-आदि बहुत कुछ आने लगा था। अनेक साधु-साध्वियो के साकेतिक वर्णन व भविष्य भी आने लगे थे।

अस्तु, हमारे साधु-सघ मे एक अजीब हलचल-सी आ गई, नई-नई स्थितियो को सुनने की, जानने की। काफी समय तक यह दौर चला। सस्कृत श्लोको मे लिखित विवरण आते। पडितजी ने बताया—'हमारे गाव मे मूल प्राचीन ग्रन्थ है। हम उसकी नकल करवा कर दे रहे हैं।' इतने नए सस्कृत के श्लोक कोई बना भी सकता है? मैं भी सब श्लोको को पढ़ता रहता था। प्राचीन भृगु-सहिताओ की शैली पर ही बने थे। पर, हम कुछ लोग आशकित रहे। लगता था, सज्जन पुरुष सेठिया बन्धुओ से या अन्य सूत्रो से चतुरतापूर्वक जानकारी लेकर ही श्लोक बनाए जा रहे हैं और पैसा कमाया जा रहा है। ऐसे कौन से भृगु ऋषि हुए होगे जो तेरा-पथ पर ही सहिता लिखने बैठ गए।

समयान्तर से स्थिति स्पष्ट होती गई। भविष्यवाणिया निरर्थक जाने लगी। आयात के स्रोत बन्द हो गए तो निर्यात भी बन्द होना ही था। अन्ततोगत्वा सेठिया बन्धु व सम्बन्धित सभी लोग इस निष्कर्ष पर पहुच गए कि सब कुछ भुलावा ही था।

कागज को प्राचीन बनाने की और उन पर प्राचीन एव अस्पष्ट लिखने की

भी कुछ वारदातें सामने आई हैं।

फलादेश पढ़ने वाले पण्डितों को यह कह कर भी बड़े लोगों को ठगते देखा है कि भृगु ऋषि की आज्ञा लिखी है कि पाच हजार रुपए दो, तभी आगे का फल पढ़ा जाएगा। अस्तु, उस फलादेश को रोका भी ऐसे आकर्षक बिन्दु पर कि कुछ लोगों को वह दक्षिणा देनी ही पड़ी। फिर चाहे धोखा ही लगा हो। आश्चर्य तो इस बात का है कि जिन पण्डितों के पास अच्छी संहिताए है, उन्हे भी व्यवसाय-वृद्धि के लिए धोखाधड़ी करते देखा गया।

भृगु-संहिता पढ़ने वाले कभी-कभी ऐसा भी उल्लेख कर देते हैं, तुम्हारे पुत्र का २४-२५ वर्ष की आयु मे दुर्घटना से मृत्यु का योग है। भृगु ऋषि ने अमुक अनुष्ठान से बच जाने की बात भी लिखी है। अस्तु, बेचारा करोड़पति आदमी क्या करेगा, सिवाय दस हजार रुपये पण्डितजी को देकर अनुष्ठान कराने के ?

कृत्रिम फलादेश पढ़ने की एक मनोरंजक घटना भी मेरे सामने घटी। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' की जन्म-कुण्डली पर फलादेश पढ़ा जा रहा था। पण्डितजी को इतना ही मालूम था कि वह बी० एससी० उत्तीर्ण मुनि गुजराती है और इनके पिता का नाम जेठाभाई जवेरी है।

जवेरी शब्द को पण्डिजी सही रूप से समझ नही पाए। गुजरातियो का यह एक जातीय विशेषण है। जवेरी का अर्थ वे समझ बैठे जौहरी। फलादेश पढते-पढते वह पढ गए—"अस्य पिता प्रस्तरस्य व्यवसाय करिस्यति" अर्थात् इनके पिता जवाहरात का व्यवसाय करेगे। मैंने तत्काल ही विनोदभाव से कहा—"पण्डितजी ! यह तो आपने हाथ की लगा दी।" पण्डितजी घबराए से बोले—"कैसे ?" मैंने कहा—"इनके पिता जवेरी हैं, पर, जौहरी नही। जवाहरात का काम तो इनकी पिछली पीढ़ियो मे ही किसी ने नही किया। इनके पिता तो एक बडे कारखाने के सचालक हैं। वहा पत्थर का नही, लोहे का ही काम होता है।" पण्डितजी बेचारे तिलमिलाए से रह गए। हमे भी कोई झगड़ा तो करना नही था। विनोद-विनोद मे ही बात समाप्त कर दी गई।

कुल मिलाकर यही कहना उचित होगा कि भृगु-संहिताओ के नाम पर वास्तविकताए और ठगी साथ-साथ चल रही हैं।

—o—

: २१ :

निष्काम कर्मयोग का सहज स्वरूप

(लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण से सम्बंधित संस्मरण)

लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण से मेरा प्रथम सम्पर्क अकल्पित व सहज रूप से ही बन गया। सन् १९५८ का मेरा चातुर्मास पटना था। वहां मुनि मानमलजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के सिवाय मुनि हंसराजजी व मुनि मनोहरलालजी मेरे साथ थे। आचार्यश्री तुलसी का उस वर्ष का वर्षावास कानपुर मे था। अणुव्रत अधिवेशन पर आमन्त्रित करने विद्वद्वर डा० छगनलालजी शास्त्री आदि कानपुर से उनके आश्रम में पहुंचे थे। श्री जयप्रकाश नारायण से उन्हे उत्तर मिला—कानपुर काफी दूर है, वहा अभी मेरा पहुच पाना सभव नही है, पर, मैं पटना के दैनिक पत्रों में प्रतिदिन देखता हू, मुनिश्री नगराजजी यहां अणुव्रत कार्यक्रम काफी प्रभावशाली ढग से चला रहे हैं। पटना मैं बहुधा जाता हू; उनके किसी कार्यक्रम में मैं भाग ले लूगा। अणुव्रत सभा मे भाग लेने का वही मेरा प्रथम प्रसग हो सकेगा।

श्री कन्हैयालालजी दूगड (रतनगढ़) हमारे पटना चातुर्मास का दायित्व मुख्य रूप से निभा रहे थे। उनका वहा व्यावसायिक के साथ-साथ सामाजिक व राजनैतिक सम्पर्क भी उल्लेखनीय थे। उनमे संपृक्त व्यक्तियो ने ही हमे पटना आकर बताया कि जयप्रकाश बाबू ने यह भावना कानपुर जाने के सन्दर्भ मे व्यक्त की है। बस, फिर क्या देर थी, पटना मे विश्वविद्यालय स्तर पर पखवाड़ा मनाना हम लोगो ने निश्चित कर लिया। उक्त पखवाड़े का उद्घाटन श्री जयप्रकाश नारायण करें, यह भी निश्चित हो गया और उन्होने भी स्वीकृति प्रदान कर दी।

एक दिलचस्प घटना-प्रसग

पटना की एक बड़ी-सी कॉलेज, जिसका नाम मुझे ठीक से याद नही आ

रहा है, के प्रांगण मे पखवाड़े का आरम्भ निश्चित हुआ। वहां के प्रिंसीपल बहुत सज्जन थे। उन्होंने कॉलेज की राजनीति परिषद् को उक्त कार्यक्रम के समायोजन का भार सौंपा। राजनीति के मुख्य प्राध्यापक ने सचमुच ही हमारे साथ राजनीति खेल ली। अगले दिन समाचार पत्रों मे हमने पढा—श्री जयप्रकाश नारायण अमुक कॉलेज की राजनीति परिषद् के वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करेंगे। अणुव्रत पखवाड़े का कहीं नाम भी नहीं। प्राध्यापक महोदय को बुलाया गया तथा उन्हें इसका कारण पूछा गया तो उन्होने सगर्व कहा—ऐसा मैंने जयप्रकाश नारायण से पूछ कर ही किया है। श्री जयप्रकाश नारायण से हम दुबारा सम्पर्क कर सकें, यह अब सम्भव नही रह गया था।

राजनीति से ही पाला पड गया तो हम भी पीछे क्यों हटते। उसी दिन सायं प्रेस कोन्फ्रेन्स बुलाकर मैंने अणुव्रत पखवाडे की घोषणा कर डाली। जिस दिन मध्याह्न मे कार्यक्रम होने वाला था, उसी दिन प्रात दैनिक समाचारपत्रो में भी छप गया। हम अपने कार्यकर्त्ताओ के साथ यथा समय मच पर जा भी बैठे। हमारी ओर से कार्यक्रम के सयोजक डा० नथमलजी टांटिया नियुक्त कर दिये गये थे। उन्हे सारी स्थिति समझा दी गई थी। बात यही रही कि जयप्रकाश नायारायण के आगमन के पश्चात् पहले माइक कौन थामे तथा कार्यवाही का श्री गणेश किस रूप मे करे।

श्री जयप्रकाश नारायण मच पर आये। मेरे समीप ही बैठे। हाल विद्यार्थियो से खचाखच भरा था। उधर राजनीति परिषद् के कार्यकर्ता भी सावधान थे। उन्ही प्राध्यापक महोदय ने माइक पकडा व भाषण आरम्भ किया—आज हमारे विनम्र अनुरोध पर श्री जयप्रकाश नारायण हमारी राजनीति परिषद् के वर्षिक अधिवेशन का उद्घाटन करने पधारे हैं, आदि-आदि।

मेरे मन मे वेदना थी। इसलिए नही कि कार्मक्रम का स्वरूप बदला जा रहा है, पर वेदना यह थी कि हमे बेवकूफ बनाया जा रहा है। मैं अपनी ओर से बेवकूफ बनाने की चेष्टा कभी नही करता, पर, मुझे कोई बेवकूफ बनाने की चेष्टा करे, तो वह भी मेरे लिए असह्य होती है।

मैंने अपने पास बैठे श्री जयप्रकाश नारायण से कहा, इससे अगला भाषण मैं करना चाहता हू। श्री जयप्रकाश नारायण मेरी भावना को समझ गये। बोले—मुनिजी ! आप जो बोलना चाहते हैं, वह मैं स्वय ही बोल दूंगा। आप पहले बोल देंगे तो अणुव्रत पखवाड़े के मेरे उद्घाटन भाषण का कोई अर्थ नहीं रहेगा।

उनकी बात से मैं आश्वस्त हुआ कि जयप्रकाश नारायण गुमराह नहीं हैं और हमें बेवकूफ नहीं बनने देंगे।

राजनीति प्राध्यापक की इस घोषणा के पश्चात् कि अब जयप्रकाश बाबू हमारे वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन भाषण करेगे, श्री जयप्रकाश नारायण ने अपने भाषण के प्रारम्भ मे ही कहा—दरअसल, मैं आज यहां अणुव्रत पखवाड़े का ही उद्घाटन करने आया हू, पर मेरे समक्ष राजनीति परिषद के अधिवेशन के उद्घाटन का भी प्रस्ताव आया तो मैंने कहा—पहले अणुव्रत पखवाड़े का तथा बाद मे आपके अधिवेशन का उद्घाटन भी कर दूगा।

श्री जयप्रकाश नारायण का इतना कहना था कि सारा हॉल तालियो की गड़गड़ाहट से गूज उठा। छात्र समझ गये कि हकीकत क्या है और हमे बताया क्या जा रहा था। दूसरी बात हॉल मे राजनीति परिषद् के सदस्य तो बहुत सीमित थे। शेष सारा हॉल तो इत्तर विद्यार्थियो से भरा था। उन्हे राजनीति परिषद् की इस बात की कि हमारे अधिवेशन के लिए श्री जयप्रकाश आ रहे है, पोल खुलने पर मजा भी आ रहा था।

श्री जयप्रकाश नारायण ने अपने भाषण मे अणुव्रत आन्दोलन की, आचार्यश्री तुलसी की एव पटना मे चल रहे प्रभावशाली कार्यक्रम की मुक्त-कण्ठ से चर्चा की एव अणुव्रत पखवाडे के उद्घाटन का समुचित समुल्लेख किया। भाषण के अगले अध्याय के रूप मे राजनीति परिषद के अधिवेशन का उद्घाटन भाषण भी किया।

श्री जयप्रकाश बाबू के उद्घाटन भाषण के अनन्तर मुझे बोलना ही था। मैने अपने भाषण मे तार-तार खोल दिया। मैंने कहा—माननीय प्रिंसीपल महोदय ने बहुत ही सौहार्द से उपस्थित राजनीति-प्राध्यापक महोदय को पटना की कालेजो मे होने जा रहे अणुव्रत पखवाडे के इस उद्घाटन समारोह को सानन्द सम्पन्न कराने की जिम्मेदारी दी थी। ये हमारे से तालमेल बिठाकर जैसे कि जयप्रकाश बाबू ने बिठाया है, बात करते, तो हमे कोई आपत्ति नही होती। जैन धर्म तो समन्वय की धारा का समर्थक ही है। किन्तु समायोजक महानुभावो का मनोभाव अणुव्रत पखवाडे को उडाकर केवल राजनीति परिषद् का अधिवेशन मनाने का ही रहा, यह सयोजक महोदय के भाषण से ही स्पष्ट हो चुका है, इसी का हमे खेद है। मेरा इतना कहना था कि विद्यार्थियो की ओर से सामूहिक ध्वनि आई—शेम, शेम! अस्तु, मेरा भाषण समाप्त होते ही जयप्रकाशजी भी उठ गये। उन्हें जल्दी जाना था। हम लोग भी उठ गये तथा विद्यार्थियो से भरा हॉल भी तत्काल खाली हो लिया। उधर सयोजक महोदय माइक पर चिल्ला रहे थे—ठहरिये, ठहरिये, हमारे चुनाव व अन्य कार्यक्रम अवशेष हैं, पर फिर कौन सुनता। मुझे पता नही, पीछे रहे १०-२० लोगो ने अपना अवशेष कार्यक्रम कैसे सम्पन्न किया।

इससे अगला प्रश्न था—अगले दिन समाचार-पत्रों मे किसका क्या छपेगा। हमारे कार्यकर्त्ता इस मामले मे बहुत सक्रिय थे। कुछ प्रेस से सम्बन्धित भी थे; अत अगले दिन के हिन्दी, अंग्रेजी आदि दैनिक पत्रों में 'पटना की कॉलेजों में अणुव्रत पखवाड़ा' शीर्षक से मुख्यता से छपा। अपना प्रयत्न करने में दूसरे पक्ष ने भी कोई कमी नहीं रखी थी।

कुछ दिनों पश्चात् वही राजनीति-प्राध्यापक फिर हमारे यहा आ गये। कहा—आपने तो हमारा अधिवेशन रफा-दफा ही कर दिया। मैंने कहा—हमने वैसा कुछ नही किया। आपकी अपनी राजनीति आपको निगल गई। आप राज-नीति के प्राध्यापक हैं। सक्रिय राजनीति मे आपको नहीं उतरना था। हम जैन मुनि अहिंसक होते हैं, साधक होते हैं। हम अपनी ओर से किसी का बुरा सोचते भी नही, पर, हमे कोई बुद्धू बनाए, यह भी हम स्वीकार नही करते। हम दुनिया को उपदेश करते हैं तो पढने तो हमे भी सभी विषय पढते हैं। चाहे वह दर्शन हो, चाहे वह राजनीति। खैर, जो भी होना था, जैसा होना था, हो गया। अब इस विषय को आप भी भूलिए, हम भी भूलते हैं।

रात्रि-प्रवास की चर्चाएं

लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण का वह प्रथम सम्पर्क आगे बढ़ता ही गया। पटना मे भो उनका कोई आवास था। वहा कई बार विचार-विनिमय होता रहता। एक बार उन्होने कहा—आप मेरे आवास पर रात्रि निवास कर सकें तो खुलकर विचार-विनिमय हो। अस्तु, दिन निश्चित हो गया। साय हम पाचो साधु उनके यहा पहुच गये। उन्होने हमारे नियमो का व सुविधा का भी बहुत ध्यान रखा। रात मे देर तक चर्चाए होती रही। प्रात भी काफी चर्चाएं राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय व सामाजिक स्तर पर चली। कई बार की बैठको मे लगभग पांच घण्टे उनसे विचार-विनिमय हुआ।

वार्तालाप का मुख्य पहलू बना—मेरा पक्ष था, वर्तमान स्थितियो के आप उप प्रधानमत्री के पद पर आसानी से आ सकते हैं। प० नेहरू के बाद सम्भव है, प्रधानमत्री भी आप ही हो। अस्तु, इस दिशा मे आगे बढ़कर आप देश की अधिक सेवा कर सकते हैं। उनका पक्ष था, क्राति हमेशा नीचे से आती है। देश मे अभी एक और क्रान्ति लाने की जरूरत है। इस पहलू पर बहुत ही लम्बी चर्चा चली। पर, साराश यही रहा कि वे अपनी बात मुझे नहीं समझा सके तथा मैं अपनी बात उन्हें नही समझा सका। वार्तालाप मे तर्क-वितर्क बहुत था, पर शान्ति भग किसी ओर

से नहीं हुई। मैं उनकी विरोधी विचार सुन पाने की क्षमता पर बहुत ही प्रभावित हुआ।

नाम के साथ काम भी

श्री जयप्रकाश नारायण के साथ दूसरा वास्ता दिल्ली मे पड़ा। धवल समारोह से सम्बन्धित तुलसी अभिनन्दन ग्रन्थ का काम तीव्र गति से चल रहा था। सम्पादक मण्डल मे मुख्यतया हम उनका ही नाम रखना चाहते थे। मुनि महेन्द्र कुमारजी 'प्रथम' ने उनसे जब इस विषय मे चर्चा की तो उन्होंने साफ-साफ कहा—मैंने एक चिन्तन बना रखा है कि अभिनन्दन ग्रन्थो के लिए सम्पादक के रूप मे अपना नाम कही न देना, भले ही वह अभिनन्दन ग्रन्थ आचार्य विनोबा भावे का ही क्यो न हो। मेरा मानना है, बहुत सारे अभिनन्दन ग्रन्थ अतिशयोक्ति-परक, श्लाघा-परक ही होते हैं। उनमे चिन्तन सामग्री बहुत कम होती है।

मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा—यह ग्रन्थ तो मुनिश्री नगराजजी के निर्देशन मे ही तैयार हो रहा है। खैर, बहुत बाते चली, पर, अन्तत उन्होने स्वीकार किया कि मुनिश्री नगराजजी का नाम सम्पादको मे हो तो मेरा नाम भी रखा जा सकता है, जैसा कि उन्होने अभिनन्दन ग्रन्थ के अपने सम्पादकीय मे लिखा भी है।

मैंने देखा, श्री जयप्रकाश नारायण ने सम्पादक मण्डल मे केवल अपना नाम ही नही दिया, अपना समय भी लगाया। सामग्री अवलोकनार्थ तथा एतद् विषयक विचार-विनिमय हेतु वे कई वार नया बाजार, जहा हम प्रवास करते थे, आते रहते। उन्हे इस बात का बराबर खयाल रहता था कि ग्रन्थ पर मेरा नाम जा रहा है। उसमे कही अन्यथा सामग्री न चली जाए। पर, वैसा होने का तो अवसर ही नही था। हम सब भी तो उसे उच्चस्तरीय व स्थायी महत्त्व का ग्रन्थ बनाना चाहते थे। अस्तु, श्री जयप्रकाश नारायण ने सम्पादक होने का दायित्व यहां तक बराबर निभाया कि गगाशहर (बीकानेर) मे समायोजित धवल सरारोह मे भी वे उपराराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् आदि के साथ उपस्थित रहे तथा अपनी सम्पादकीय स्थिति से सम्भाषण भी उन्होने किया।

'अग्नि-परीक्षा' के सन्दर्भ में

लोकनायक जयप्रकाश नारायण से मेरा अन्तिम सम्पर्क मुख्यत. तब हुआ, जब रायपुर मे अग्नि-परीक्षा-प्रकरण चल रहा था। दिल्ली व देश के अन्य भागो में वह आग न फैले, इसलिए दिल्ली में हम लोग एक ही विषय पर उच्चस्तरीय

विचार परिषदें चला रहे थे। वैसी एक विचार-परिषद अणुव्रत विहार में समायोजित थी। उसमें मुख्य अतिथि श्री जयप्रकाश नारायण ही थे। उन्होंने खुलकर अग्नि-परीक्षा-पक्ष को समर्थन दिया तथा विरोध मे चलाए जा रहे रायपुर (म०प्र०) के आन्दोलन को बेबुनियाद बताया। अस्तु, उस प्रसग के पश्चात् भी हमारा उनसे गांधी शान्ति प्रतिष्ठान मे यदा-कदा मिलना हो जाता, पर, वह कोई ऐतिहासिक महत्त्व की बात नही होती। अस्तु, लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण के कुल सम्पर्क का मेरे पर जो प्रभाव पड़ा, वे परम आदर्शवादी एव एक साधुवृत्ति के राजनीतिक थे। गीता के निष्काम कर्मयोग का उनमे सहज चरितार्थीकरण था।

—०—

: २२ :

स्मृति-प्रखरता एवं उर्वर मेधा का अनूठा उदाहरण

(राष्ट्रपति भवन मे मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का अवधान-प्रयोग)

राष्ट्रपति भवन के अशोका हॉल मे अवधान का कार्यक्रम था। निर्धारित प्रयोगो मे एक था—विषय एक भाषाए बदलती हुई। विषय प्रदान हेतु मैंने ज्यो ही दर्शको को आह्वान किया, प्रधानमत्री प० नेहरू तत्काल उठे व बोले, मैं विषय देता हू—'इस मौसम मे पत्तियो का रग बदल जाता है।' विषय सुनकर दर्शको को लगा, प० नेहरू ने तो अवधानकार को हैरत मे डालने जैसा विषय दे दिया है। यह भी कोई बोलने का विषय बनता है ? अवधानकार मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने कोई परेशानी अनुभव नही की। सस्कृत आदि चार भाषाओ मे क्रमश प्रतिपादन करते गये। उन्होने अपनी उर्वर मेधा से विषय को ऐसी मोड दे दी कि बोलने के लिए दर्शन का व्यापक आयाम खुल गया। उन्होने कहा—इस मौसम मे पत्तियो का का रग बदल जाता है, यह तो जगत् का स्थूल परिवर्तन है। वास्तविकता तो यह है कि विश्व के प्रत्येक पदार्थ मे प्रतिक्षण परिवतन चालू ही है। अणु भी इसका अपवाद नही, ब्रह्माण्ड भी इसका अपवाद नही। ससार की इसी परिवर्तनशीलता पर विश्व के दर्शन खडे हैं। यही तो बुद्ध का क्षणिकवाद है और यही महावीर का पर्यायवाद। इसे ही इतर दार्शनिको ने अनित्यवाद कहा है। पर, इस परिवर्तन-शीलता का आधारभूत एक शाश्वत सत्य भी है, जिसे हम जड़ व चेतन की युति मे देखते है। अस्तु, ६-७ मिनिट के सारगर्भित भाषण ने सबको प्रभावित किया। दर्शक अनुभव करने लगे, अवधानकार को प० नेहरू ने हैरत वाले मार्ग मे डाला था, पर, ये तो अपनी व्युत्पन्न-मति से सीधे राजमार्ग मे निकल गये।

प० नेहरू ने सभा मे आते ही हमे कहा था—मुनिजी ! मैं तो केवल १०-१२

मिनिट ही रूक सकूंगा। आरम्भ मात्र देखकर ही चला जाऊंगा। पर, अवधानकार की विलक्षण स्मृति व अद्भुत् गाणितिक सामर्थ्य देखने मे वे ऐसे तल्लीन हुए कि डेढ़ घण्टे के समग्र कार्यक्रम मे वे जमे ही रहे। एक बार उन्होने अवधानकार के समक्ष एक ऐसी ही जटिलता और उत्पन्न कर दी। मैंने कहा—अवधानकार किसी भी प्रदत्त विषय पर सस्कृत मे तत्काल श्लोकबद्ध विवेचन करेंगे। उनको इस कविता के लिए कोई भी महानुभाव विषय दें। सर्वप्रथम प० नेहरू ही खड़े हुए और बोले, मै विषय प्रस्तुत करता हू—'स्पूतनिक'। लोगो को वही कठिनाई में डालने वाली बात लगी। सभी मे जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इस बार अवधानकार कैसी कुशलता का परिचय देते है। स्पूतनिक विषय व सस्कृत मे श्लोकबद्ध बोलना। उक्त शब्द उसी सप्ताह ससार के सामने आया था। जबकि रूस ने प्रथम बार यह कृत्रिम चाद छोड़ा था। अवधानकार ने उपजाति छन्द मे कई श्लोक लय के साथ बोल दिये। मैंने हिन्दी मे अनुवाद करके बताया, तो सभी अवधानकार की भावाभिव्यजना पर मुग्ध हुए। उनके आदि श्लोक का भाव था—मनुष्य अपने व्यवहार में कृत्रिम होता जा रहा है। अब प्रकृति भी कृत्रिम होने लगी है। इसका प्रथम उदारण है, रूस द्वारा हाल ही मे छोड़ा गया कृत्रिम चाद।

मेधाशील होने के साथ-साथ अवधानकार को स्मृति-प्रवीण तो होना ही पडता है। मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी इस दिशा मे भी कुछ विशेष थे। उनके प्रयोगो मे गणित गौण व स्मृति की ही प्रमुखता रहती थी। वे १२-१२ श्लोक भी एक साथ धारण कर सकते थे। अक व अज्ञात भाषाए भी भारी-भरकम ग्रहण करते। कई बार डाक्टरी के लम्बे-लम्बे शब्द, सस्कृत के क्लिष्टत्तम व दीर्घत्तम श्लोक भी खोज-खोज कर ले आते, पर, उनके वे प्रयोग सदैव सफल रहते।

एक बार नई दिल्ली कोन्स्टीच्यूसन क्लब मे प्रयोग थे। मन्त्रियो, संसद सदस्यो व बुद्धिजीवियो से हाल खचाखच भरा था। तत्कालीन स्पीकर श्री अनन्तशयनम् ने आशु-कविता के लिए विषय दिया—'मशकगलकरंध्र हस्तियूथ प्रविष्टम्' अर्थात् मच्छर के गले मे हाथियो का झुण्ड प्रवेश कर गया। विषय मात्र के श्रवण से ही सारी सभा हास्य-विभोर थी। इस बेतुकी बात पर अवधानकार क्या कहेगे, यह उत्कण्ठा और भी प्रबल थी। अवधानकार ने यहा भी अपनी उर्वर मेधा का परिचय दिया। उनके प्रथम श्लोक का भाव—सम्प्रति बडे-बडे विज्ञानविद् लोगो ने अन्तरिक्ष यात्रा के अनुष्ठान को गौण करते हुए परमाणु-विवर मे प्रवेश कर दिया है, मानो, मच्छर के गले मे हाथियो का झुण्ड प्रवेश कर गया हो। अस्तु, अवधानकार की प्रत्युत्पन्न मति की सभी ने दाद दी, क्योंकि उन दिनो विज्ञान जगत् मे परमाणु-विस्फोट व परमाणु-अनुसन्धान का विषय ही प्रमुखता ले रहा था।

स्मृति व मेधा अनुकूल योग पाकर विकसित भी होती है, पर मुख्य रूप से वह नैसर्गिक ही होती है। कुछ लोग बचपन मे ही अपनी प्रतिभा का परिचय देने लग जाते हैं। उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी भी ऐसे ही बालकों मे थे। २१-२२ वर्ष के अपने विद्यार्थी जीवन मे ही उन्होंने 'ऐकाह्निक पचशती' की रचना की। एक ही अहोरात्र मे ५०० सस्कृत श्लोको का रच पाना तब तक एक नवीन कीर्तिमान था। अपनी किशोर अवस्था मे उन्होने एक अद्भुत कार्य यह भी कर दिखाया कि केवल ७ दिनो के निरीक्षण मात्र से उन्होंने मोतिया-बिन्दु का आपरेशन कर देने की क्षमता अर्जित कर ली। वैसे अनुष्ठान कर देने मे वे सफल भी रहे। उनके निधन से पूर्व ही 'साइन्स टू डे' पत्रिका ने फरवरी १९७९ के अक मे स्मृति-विद्या पर प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण लेख मे लिखा था—"यह और आश्चर्य होगा, यदि यह कहा जाये कि अभी भारत मे दो व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हे शतावधानी की उपाधि मिली है। शतावधानी वह है, जो एक साथ सौ वस्तुओ को अपने ध्यान पर केन्द्रिक रखने की क्षमता रखता है। एक श्री धीरज भाई शाह हैं, जिनकी स्मृति पर एक पुस्तक गुजराती मे प्रकाशित है और दूसरे जैन साधु मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' हैं, जिनकी ६० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमे दो स्मृति-विद्या पर हैं।"

—०—

: २३ :

महात्मा गांधी : एक मिलन, एक अनुभूति

समाज में कुछ ही व्यक्ति होते हैं, जो महान् सुने जाते हैं। महान् सुने जाने वालो मे वे व्यक्ति और भी कम रह जाते हैं, जो सम्पर्क मे आकर भी महान् बने रह जाते हैं। महात्मा गाधी जितने महान् सुने गए, सम्पर्क में आकर उनकी महत्ता और गुरुतर ही प्रमाणित हुई।

महात्मा गाधी जब नोआखाली से दिल्ली लौटे ही थे, देश का वातावरण एक ओर साम्प्रदायिक दगो से व तज्जन्य आशकाओ से आतकित था तो दूसरी ओर लार्ड माउन्ट बेटन के साथ देश के कर्णधारो की स्वाधीनता प्राप्त करने की बात अतिम दौर मे चल रही थी। उस समय हम लोग भी दिल्ली मे थे। दिल्ली का वह हमारा प्रथम बार का आगमन ही था। हम लोग बिरला मदिर अतिथिगृह मे ठहरे हुए थे और महात्मा गाधी पास मे ही हरिजन कॉलोनी में ठहरे हुए थे।

देश के साम्प्रदायिक वातावरण को देखते हुए आचार्यश्री ने पजाब, हरियाणा, दिल्ली आदि प्रदेशों मे विचरने वाले समस्त तेरापथी साधु-साध्वियो को आदेश दे दिया था कि वे सभी बीकानेर राज्य में आ जाए। इस आदेश से हमे भी दिल्ली से शीघ्र ही विहार करना था। सहसा मन मे आया, विहार से पूर्व महात्मा गाधी से हम क्यो न मिलते चलें? हम लोग सात साधु थे। सभी को यह बात भा गई। हम हरिजन कॉलोनी मे आ गये। पहले से कोई सम्पर्क-सूत्र नही था। फिर भी महात्मा गांधी के व्यवस्थापको ने बहुत ही सौजन्य का परिचय दिया। पर, जब उन्हे कहा गया कि हम तो महात्मा गाधो से साक्षात्कार करने आए हैं। इस पर सहमते हुए बोले—"मुनिजी! आज और इस सप्ताह तो साक्षात्कार के लिए तनिक भी सभव नहीं है। महात्माजी बहुत व्यस्त हैं। अभी-अभी पडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल उनसे परामर्श करके निकले हैं। काका कालेलकर अभी उनके साथ परामर्शरत हैं। आज साय ही महात्मा गाधी लार्ड माउण्ट बेटन

से मिलने वाले हैं । देश के भाग्य का निपटारा होना है । अस्तु, इस स्थिति मे आप लोग स्वय ही सोचें कि उनसे साक्षात्कार की बात अभी-अभी कैसे सभव हो सकती है ?" मैंने कहा—"हम भी पाद-विहारी हैं । दिल्ली से प्रस्थान कर देंगे तो फिर संभव ही कब हो सकता है ?" इसी चर्चा मे एक महिला गाधीजी के कमरे से निकली । उसने भी चर्चा मे रस लिया और कहा—"कम से कम महात्माजी तक यह सूचना पहुचा देती हूँ कि जैन मुनि पधारे है ।"

बस, फिर क्या था ! महिला वापस कमरे से बाहर आयी और हम लोगो को कहा—"आप महात्माजी के कमरे मे आ जाइए । उन्होने तो जैन मुनि का नाम सुनते ही हा भर दी है ।" अस्तु, हम लोगो पर महात्मा गांधी का पहला प्रभाव पडा, जैन साधुओ के प्रति उनके दिल मे कितना समादर है । खैर, हम लोग उनके कमरे मे प्रविष्ट हुए । देखा, नितान्त सीधा-साधा वातावरण । कमरे मे एक ओर सामान्य-सी दरी बिछी है । उस पर चर्खा व अन्य सम्बन्धित सामग्री पडी है । महात्मा गाधी ने ज्योही हम लोगो को देखा, कोहनियो तक दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया । मैंने उनको जैन धर्म, तेरापथ, आचार्यश्री तुलसी आदि के विषयो मे सक्षिप्त रूप से जानकारी दी । इस पर उन्होने कहा—"जैन धर्म के सम्बन्ध मे पहले से काफी कुछ जानता हूँ, क्योकि जैन समाज मे मेरा बहुत निकट का सम्बन्ध रहा है ।"

मैंने उनसे कहा—"आज नही तो दो-चार दिनो मे हम लोग आपसे अहिंसा के कुछ सूक्ष्म पहलुओ पर विचार-विनिमय करना चाहते हैं । दो-चार दिनो की बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि उसके अनन्तर हमे दिल्ली से राजस्थान की ओर प्रस्थान करना है ।"

महात्मा गाधी ने पुनः उसी मुद्रा मे हाथ जोडे और अपनी सहज व शालीन भाषा मे बोले—"मुनिजी ! अभी मै आपको नही रोकूगा, अभी मै आपका समय नही लूगा, क्योकि अभी मै बहुत व्यस्त हूँ ।" अस्तु, उनकी वह भावमुद्रा और उनका वह मधुर वचन-विन्यास सभी के हृदय मे सदा-सदा के लिए अकित-सा हो गया । हमने माना, दूर से जो महत्ता उनकी सुनी थी, आज प्रथम सम्पर्क मे ही वह द्विगुणित होकर सामने आयी है । वस्तुत लघुता के आवरण मे ही महत्ता का निवास होता है ।

प्रतिक्रिया

महात्मा गाधी से मेरा मिलन जितना सुखद् व ऐतिहासिक रहा, समाज मे एक बार के लिए उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही तीखी रही ।

उस समय दिल्ली मे एसियाइटिक कोन्फ्रेंस चल रही थी । श्री छोगमलजी चोपड़ा आदि समाज के बीसों ही अग्रणी दिल्ली आए हुए थे। उनका प्रयोजन था, विदेशी लोगों को हमारे पास लाना व तेरापथ का परिचय कराना । उद्देश्य अच्छा था, पर, परिश्रम अधिक, परिणाम कम । फिर भी श्री छोगमलजी चोपड़ा के नेतृत्व मे समाज के अग्रणी व शिक्षित युवक दत्तचित्त होकर काम कर रहे थे।

हम लोग जिस दिन महात्मा गांधी से मिलने वाले थे, वह बात श्री छोगमलजी आदि किसी को हमने नही बताई थी । हम जानते थे, वे हमे मनाह करेंगे। कहेंगे, किसी के यहा जाकर मिलना अपनी परपरा नही है । दूसरी बात कहेगे, हम महात्मा जी को राजस्थान मे आचार्यश्री तुलसी के दर्शन कराने की चेष्टा मे लगे ही हैं । अस्तु, मुझे मालूम था, पूज्य कालूगणी की वर्तमानता से ही यह चेष्टा चल रही थी । पूज्य कालूगणी का स्वर्गवास हो गया, पर, वे उनसे महात्मा गाधी का साक्षात्कार नही करा सके । मेरा चिंतन था, सपर्क के इस तरीके से तथा इस आग्रह से कि दुनिया के बडे से बडे लोग भी हमारे आचार्य व मुनियो के पास ही आए, तेरापथ बैलगाडी की चाल से भी आगे नही बढ सकेगा। अस्तु, मेरे मन मे इस प्रणाली को शालीनतापूर्वक मोड देने का था । अत , मैंने वह साहस या दुस्साहस जो भी कहे, कर डाला । मेरी भी उम्र उस समय २६-२७ साल की होगी । कोई बच्चा नही था । अपने चिंतन पर भरोसा व आत्मविश्वास भी था। मैं तो मानता था, पुरानी मान्यताएं व पुराने प्रकार सब जीर्णोद्धार के काबिल हैं।

उसी दिन सायकाल श्री छोगमलजी चोपडा आदि को पता चला कि मुनिश्री नगराजजी अपने साथी मुनियो सहित महात्मा गाधी से उनके यहाँ जाकर मिले । समाज के प्रतिनिधियो मे ज्वार-सा आ गया । श्री छोगमलजी ने तत्काल आचार्यश्री के यहां पत्र लिखा । हम लोग जिस प्रयत्न मे थे, उसका अब कोई महत्त्व ही नही रहा, आदि-आदि । मुझे भी मालूम पड गया कि ऐसा पत्र लिख दिया गया हैं । कुछ चिंता हुई । हो सकता है, आचार्यश्री भी इसे इसी रूप मे लें कि मेरे यहा होने वाला काम था, मुनि नगराजजी ने विकृत कर दिया ।

खैर, हम लोग दिल्ली से विहार करते राजलदेसर पहुँचे तो सुना—महात्मा गाधी को गोली मार दी गई व उनका निधन हो गया ।

चाड़बास मे हम लोगो ने आचार्य श्री के दर्शन किए तो आचार्यश्री ने फरमाया—मुनि नगराजजी ने अच्छा किया, महात्मा गाधी से तेरापथ—सतों के मिलन का इतिहास तो बना ही दिया ।

—०—

: २४ :

सत्याचरण सफलता की कुंजी भी

(श्री लालबहादुर शास्त्री : अनेक बार के मिलन में)

दिल्ली रहते हुए श्री लालबहादुर शास्त्री से सम्पर्क बना ही रहता। हर बार के सम्पर्क मे उनकी नवीन विशेषताओ का परिचय मिलता। प्रथम सम्पर्क मे जब मैंने उनसे कहा—"आपकी निस्पृहता और चरित्र-निष्ठा का सर्वसाधारण पर गहरा प्रभाव है।"

शास्त्री जी ने विनम्रता से कहा—"मुनीश्री! जैसा मैं ऊपर से लगता हू, वैसा अन्दर से नही हू। मेरे मे अनेक दोष हैं। लोग उन्हें कहा देख पाते हैं? वे तो केवल मेरे बाह्य स्वरूप को देखते हैं।"

लगा, शास्त्रीजी के कथन मे औपचारिकता नही, केवल आत्मानुभूति ही बोल रही है। उनकी इस आत्म-गवेषकता का मेरे मन पर सहज प्रभाव पड़ा।

विशद अध्ययन

तेरापथ द्विशताब्दी समारोह का एक विशेष कार्यक्रम दिल्ली मे आयोजित हुआ था। शास्त्रीजी को उसका उद्घाटन करना था। उनकी कार्य के प्रति जागरूकता इस बात से परखी गई कि उन्होने आयोजन से पूर्व ही आचार्य भिक्षु और तेरापथ से सम्बन्धित साहित्य अपने आप माग लिया। उन्होने कहा—"जिस महापुरुष को मैं श्रद्धाजलि दू, उनके जीवन के बारे मे प्रामाणिक रूप से कुछ जानूं तो सही।"

साहित्य मनोयोगपूर्वक देखा। फिर भी उन्होने चाहा, इस विषय का कोई विद्वान् मुझे विस्तार मे मौखिक रूप से भी बताये। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने उन्हें सम्बन्धित विषय पर विस्तार से बताया। आयोजन के दिन उन्होने जिस अधिकृत रूप से उद्घाटन भाषण दिया, सभी लोग विस्मित रहे कि उन्होने तेरा-

पंथ और आचार्य भिक्षु के विषय में इतना विशद कब और कैसे जाना ? प्रत्येक कार्य को जागरूकता से करना उनका सहज गुण था। बड़े लोगों की अजागरूकता कभी-कभी यहा तक घटित हो जाती है कि वे जाते हैं, महावीर जयन्ती का उद्घाटन करने के लिए और भाषण दे डालते हैं—महावीर—अर्थात् बजरंगबली हनुमान के जीवन पर। श्री लालबहादुर शास्त्री इस प्रकार के बड़े व्यक्ति नही थे।

संस्कारगत विनम्रता

शास्त्रीजी मे सस्कारगत विनम्रता थी। जब वे गृहमन्त्री बने ही थे, राष्ट्रपति भवन से जाते समय मैं अपने सहवर्ती साधुओ सहित उनके आवास पर रुका। कर्मचारियो मे अणुव्रत-अभियान चलाने के सम्बन्ध मे वार्तालाप करना था। इससे पूर्व मैं कभी उनके आवास पर नही गया था। प्रयोजनवश मेरे सहयोगी साधु व कार्यकर्ता ही उनसे मिला करते थे। मुझे अपने यहां देखकर उन्हे बहुत सकोच-सा हुआ। "आपने क्यो कष्ट किया, मुझे सूचना होती, तो मैं स्वय आपके यहा आ जाता।" उनके इस व्यवहार मे कोई कृत्रिमता या औपचारिकता नही थी। उनकी सस्कारगत विनम्रता का ही यह एक उदाहरण था। दिल्ली-प्रशासन के अधिकारियो मे अणुव्रत-अभियान की बात उन्हे पसन्द आयी। उसमे स्वय सम्मिलित होना भी उन्होने स्वीकार किया और समुचित व्यवस्था के लिए चीफ कमिश्नर को आदेश भी दिया।

शास्त्रीजी की सहज विनम्रता का एक उदाहरण मैंने तब देखा, जब उन्होने अहिंसा दिवस मे भाग लिया। शास्त्रीजी कुछ विलम्ब से आए। श्री जयप्रकाश नारायण को अन्यत्र जाना था। वे अपना भाषण देकर चले गए। शास्त्रीजी आये। उन्हे पता चला, जयप्रकाशजी भी उनसे पूर्व बोल-चुके हैं। उन्होने अपने भाषण मे अब जितना अहिंसा की विशेषताओ पर कहा, उतना ही लगभग जयप्रकाशजी की विशेषताओ पर बोल गए। सम श्रेणी के व्यक्तित्व पर इतना वर्णन अपेक्षित भी नही था और न प्रासगिक ही, पर अपने को लघु मानकर चलना उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति थी।

कार्यकर्त्ताओ के अनुरोध पर उन्होने मेरी एक पुस्तिका पर भूमिका लिखी। कार्यकर्त्ता आभार प्रकट करना चाहते थे, पर, उन्होने भूमिका के अन्त मे पहले से ही लिख रखा था—"इन कुछ पक्तियो के लिखने का अवसर देने के लिए मैं कृतज्ञ हू।"

कार्यकर्त्ताओ ने उसे पढ़ते ही कहा—"आभार प्रकट करना तो हमारा काम था।"

वे मुसकराये और उत्तर दिया—"मैं आप ही का तो काम करता हू ।"

सहज विनम्रता उनके हर कार्य से व्यक्त होती थी।

विरोधी दलों के साथ सौहार्द

वे स्वय विचारक थे, पर, दूसरो के परामर्श को ध्यान से सुनना और उसे आदर देना उनकी असाधारण विशेषता थी। जब वे काग्रेस ससदीय दल के नेता चुने ही गए थे और अपने मत्रिमडल का निर्माण उन्होने किया ही था, मैं उनसे मिला। एकान्त वार्तालाप मे मैंने उनसे कहा—"सबको साथ लेकर चलना आपकी अपनी सहज प्रवृत्ति है, पर प्रधानमत्री का दायित्व आ जाने से वह कसौटी पर आ गई है। अपने दल के तथा अन्य दलो के विरोधी लोगो से भी आप समन्वय और सौहार्द निभा सकेंगे, तभी आप सफल माने जाएगे।"

इस अभिप्राय को उन्होने गभीरता से सुना और कहा – "मुनिश्री ! मैं हृदय से प्रयत्न करूगा कि मैं ऐसा कर सकू, सबको साथ लेकर चल सकू।" यह सुविदित है ही कि विरोधी दलो के प्रतिनिधियो को भी राष्ट्रीय समस्याओ मे साथ रखने की एक अपूर्व प्रथा शास्त्रीजी ने अपने शासन-काल मे डाली। ताशकद जाने से पूर्व भी उन्होने विरोधी दलो के प्रतिनिधियो से परामर्श किया था।

शास्त्रीजी मे आदर्श और व्यवहार का सुन्दर समन्वय था। वह उनके ऊचे और सफल व्यक्तित्व की कुजी थी। न उनका आदर्श अव्यवहार्य था और न उनका व्यवहार अनादर्श कोटि का था। वे एक नीति-निष्णात व्यक्ति थे। उन्हे झुकना भी आता था और प्रेम से दूसरो को झुकाना भी आता था। वे चले गये, पर समाज को बहुत कुछ देकर।

अणुव्रत के साथ सदैव उनकी आत्मीयता रही। प्रधानमत्री बन जाने के पश्चात् भी जब मैंने उनसे कहा—"क्या हम विश्वास करे कि अणुव्रत-आन्दोलन मे अब आपका सहयोग और अधिक रहेगा ?"

बलपूर्वक उन्होने कहा—"क्यो नही ?"

सत्य-ग्रहण से लाभ अनिवार्य

वे पुस्तको पर भूमिकाए बहुत कम लिखा करते थे, पर जो भी लिखते, पुस्तक का मर्म समझकर लिखते और अपना स्पष्ट मन्तव्य भी उसमे देते। मेरी पुस्तक 'प्रेरणा-दीप' की भूमिका मे वे लिखते हैं—'प्रेरणा-दीप' को देखा। इसे पढ़कर प्रसन्नता हुई। साधारणतया यदि कोई अपनी बीती बताता है, तो

उनका दूसरों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कुछ सज्जनो ने अणुव्रतो की दीक्षा ली। उनके प्रत्यक्ष अनुभव इसमे उल्लिखित हैं। वैसे तो ये सबके लिए लाभदायक हैं, परन्तु वाणिज्य में लगे हुए भाई इससे अधिक लाभ उठा सकते हैं। अंग्रेजी की एक सहज और छोटी-सी कहावत है—'ऑनेस्टी इज दी बेस्ट पॉलिसी'। कितनी सच्ची है! इस पुस्तक में दिए गए कुछ अनुभव इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। मैंने सुना है, स्वयं नही जानता, सेठ जमनालालजी बजाज कहा करते थे—"मैं जब राजनैतिक जीवन मे सम्मिलित हुआ और कुछ उसके लिए कष्ट उठाया और क्षति भी सही, तो मेरी प्रतिष्ठा व्यावसायिक वर्ग मे अधिक बढ़ गई और व्यवसाय घटने की बजाय बढ़ा ही। स्पष्ट है कि यदि सत्य का मार्ग ग्रहण किया जाए, तो उससे लाभ होना अनिवार्य है। अपने को देखना और अपना आत्म-निरीक्षण, यह उन्नति और विकास का सच्चा साधन है। मुझे प्रसन्नता है कि इसकी ओर अणुव्रत-आन्दोलन पूरा ध्यान दे रहा है।"

—०—

: २५ :

श्री गोविन्दवल्लभ पंत : मिलन और निष्पत्तियां

प्रथम संपर्क

गृहमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पत से हमारी पहली मुलाकात केवल सात मिनटो की थी। उसमे भी दोतीनमिनट तो बीच ही मे उनकी नीद की झपकी मे चले गए। अणुव्रत आन्दोलन के विषय मे यथासम्भव बताया गया। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' उन्हे राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद व देश के अन्य विचारको के आन्दोलन-सम्बन्धी लेख आदि बताने लगे, तो उन्होने चट से कह दिया— 'किसी भी वस्तुस्थिति को समझकर व्यक्ति अपनी राय तो कायम कर ही सकता है। दूसरो की रायो को पढना कोई जरूरी बात नही है।"

हम सब सदिग्ध-सी राय लेकर वहा से उठे। किसी को लगा, आन्दोलन को न उन्होने समझा है और न समझना चाहा भी है, तो किसी को लगा, मुद्दे की बात उन्होने थोडे मे पकड ली है। आगे चलकर दूसरी राय ही यथार्थता के अधिक समीप निकली।

राज-कर्मचारियों मे अणुव्रत

आन्दोलन के कार्यक्रमो मे उन्होने जितना रस लिया, वह दूसरे मन्त्रियो से बहुत अधिक था। व्यवस्थित रूप से राज-कर्मचारियो मे नैतिक अभियान चलाए जा सके, इस विषय मे वे आन्दोलन के प्रथम सहयोगी थे। दिल्ली प्रशासन के कर्मचारियो मे सर्वप्रथम जो 'अणुव्रत सप्ताह' मनाया गया, उसकी सारी व्यवस्थाए तत्कालीन चीफ कमिश्नर श्री एन० डी० पडित व जन-सम्पर्क समिति के अध्यक्ष श्री गोपीनाथ 'अमन' ने उन्ही के संकेतानुसार की थी। राजकीय स्तर पर आन्दो-

लन के परिचायक परिपत्रों का निकलना, राजकीय कार्यालयों में सारी कार्य-व्यवस्था को स्थगित कर राज-कर्मचारियों का नैतिक चर्चाओं में रस लेना, एक अनहोनी बात थी। पर, वह मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' व मुनि मानमलजी के प्रयत्न तथा गृहमंत्री श्री पंत की दिलचस्पी के कारण सम्भव हुई। पं० पंत की भावना थी, यदि यह कार्यक्रम दिल्ली प्रशासन मे कुछ सफलता ला सके, तो फिर उसे केन्द्रीय सचिवालय के कर्मचारियो में भी चलाया जाए। उक्त कार्यक्रम के उद्घाटन समारोह मे गृहमंत्री श्री पंत स्वय भाग लेना चाहते थे, पर, उनको शारीरिक अस्वस्थता के कारण ऐसा न हो सका।

अवधान विद्या के प्रति आश्चर्य

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' का दिल्ली मे प्रथम अवधान-प्रयोग चांदनी चौक, दरबार हॉल मे हुआ। राजधानी के वातावरण मे एक नया कौतूहल छा गया। पत्र-पत्रिकाओ मे उन दिनो की वही एक प्रमुख चर्चा हो गई। अवधान-प्रयोग के कुछ ही दिनो बाद मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' किसी प्रयोजन विशेष से गृहमंत्री श्री पन्त की कोठी पर गए। उनके निजी सचिव श्री जानकीप्रसाद पन्त से उन्हे बाते करनी थी। मुनि महेन्द्रकुमारजी को देखते ही जानकीप्रसाद ने कहा—"अजी मुनिजी ! अभी दरबार हॉल मे आपके अणुव्रत वाले मुनियो मे से ही किसी ने अद्भुत स्मृति-चमत्कार दिखलाया था। उस समारोह मे मुरारजी भाई आदि अनेक केन्द्रीय मंत्री भी सम्मिलित थे। हमारे यहा कोठी पर इस विषय की बड़ी चर्चा है। गृहमंत्री स्वयं उन्हे देखना चाहते हैं।"

मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा—"आप मान सकते हैं, वह मुनिजी आपके सामने ही खड़ा है।"

जानकीप्रसादजी के आश्चर्य और उत्साह का ठिकाना ही न रहा। तत्काल वे मुनि महेन्द्रकुमारजी को पास वाले कमरे मे ले गए और पंतजी को बतलाते हुए बोले—"ये रहे वे मुनिजी, जिन्होने अद्भुत स्मृति-चमत्कार दिखलाया था।"

पंतजी बोले—"ये तो वही मुनिजी हैं, जो अक्सर अपने यहा आते रहते हैं। मुनिजी, आपने मुझे तो इस स्मरण-शक्ति के विषय मे कभी नही बतलाया। अब तो मैं ज्यो-का-त्यो प्रयोग ही देखना चाहता हूँ।"

मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा—"इस विषय मे तो आप मुनिश्री नगराजजी से ही बात करे।"

अगले ही दिन हम लोगो की उनसे फिर बाते हुईं। उन्होने पूछा—"अवधान

विद्या कोई अलौकिक सिद्धि है या कोई अभ्यास या अन्य उपलब्धि ?" उन्हें बतलाया गया—"इस विद्या का आधार व्यक्ति का सहज बुद्धि-वैशिष्ट्य और प्रयत्न ही है। इसमे कोई भूत, भविष्य बतलाने वाला लोकोत्तर ज्ञान नही है।" पंतजी ने कहा—"बिना लोकोत्तर सिद्धि के यह कैसे हो सकता है, मैं आखो से देखकर ही मान सकूगा।"

अवधान-प्रयोग कहां हो, इस विषय मे उन्होंने कहा—"मैं तो चाहूगा कि मेरी कोठी पर ही यह प्रयोग हो या ससद के मुख्य हॉल मे जहां कि सभी मत्री व ससद सदस्य सुगमता से देख सके। वैसे आप जहा करेंगे, मैं तो वही आ जाऊंगा।"

कोस्टीट्यूशन क्लब के विशाल हॉल मे अवधान-प्रयोग रखा गया। आमन्त्रित लोग ही प्रवेश पा सके। समय से पूर्व ही हॉल खचाखच भर गया। अनेक मत्री व ससद सदस्य भी स्थानाभाव से प्रवेश न पा सके। उस दिन गृहमत्री पतजी उद्घाटन-भाषण करने सपरिवार समय पर ही पहुच गए। गृहमत्री इस बात के लिए ख्याति पा चुके थे कि हर स्वीकृत आयोजन मे देर से पहुचते हैं। कुछ बार तो पहुचते ही नही।

अवधान-प्रयोग यथासमय चालू हुआ। श्री पतजी ने अपनी ओर से सख्या विषय का अवधान दिया व अन्य अवधानो को भी बडी सावधानी से देखते रहे। माला-गोपन को जब मुनि महेन्द्रकुमारजी ने बतलाया, तब तो वे आश्चर्य विभोर हो हो उठे। मुझे कहने लगे—"यह कोई आत्मिक ज्ञान नही है तो और क्या है ?" मैंने उन्हे सक्षेप मे बतलाया—"यह गणित का चमत्कार है, न कि कोई आत्मिक ज्ञान का।" वे कहने लगे—"आप भी बात छिपाना चाहते हैं।" चालू कार्यक्रम मे विस्तृत चर्चा करना मेरे लिए सम्भव न था। मैं चुप रहा और वे इसी रहस्यकथा मे निमग्न हो गए।

सहयोगात्मक दृष्टिकोण

दीक्षा-प्रतिबन्धक बिल, साधु-रजिस्ट्रेशन बिल आदि सम्बन्धो से तेरापथ की विधि व्यवस्थाओ को वे रुचि से सुना करते। प्रस्तावों के सम्बन्ध मे अपनी अधिकारपूर्ण राय देते थे। साधु-रजिस्ट्रेशन बिल के सम्बन्ध मे उन्होने सक्रिय होकर उसे वापस ही करा दिया था[1] कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि तेरापथ और अणुव्रत के विषय मे उनका दृष्टिकोण बहुत ही सहयोगात्मक रहा।

-- o --

---

[1] विस्तृत जानकारी के लिए देखें, इसी पुस्तक का 'प्रशासन पर प्रभाव की उपयोगिता' प्रकरण।

: २६ :

सिद्धान्त और व्यवहार के समन्वेता : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

गृह-त्यागियों की भारतीय संस्कृति को देन

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के साथ हुआ एक ही वैचारिक सश्लेष जीवन का एक अमिट आलेख बन गया। सिद्धान्त और व्यवहार का जो समन्वित क्रम उनमे पाया, अवश्य कुछ असाधारण था। सन् १६५७ की बात है। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' के दीक्षा-ग्रहण के उपलक्ष मे एक शुभकामना-समारोह दिल्ली के टाउन-हॉल मे आयोजित हुआ था। बम्बई विश्वविद्यालय का एक स्नातक (बी० एस-सी० ऑनर्स) दीक्षित होने जा रहा है, इस आकर्षण से सभा मे साहित्यकारो व पत्रकारो का भी खासा जमघट था। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' श्री जैनेन्द्र-कुमार, श्री गोपीनाथ 'अमन' प्रभृति अनेक साहित्य-जीवियो ने सम्भाषण किये। विषय शुभकामना का था, पर वह वर्तमान युग और दीक्षा के रूप मे परिवर्तित हो गया। शुभकामना-समारोह ने एक चिन्तन-गोष्ठी का रूप ले लिया। दीक्षा के पक्ष एव विपक्ष मे अनेक तर्क सामने आये। आयोजन मेरे सान्निध्य मे था, अत. अन्तिम सम्भाषण मेरा रहा। मैंने कहा—"लोग कहते हैं, साधु-समाज की देश को क्या देन है ? मैं कहता हू, साधु-समाज की जो देन भारतीय सस्कृति को है, उसे पृथक् करके देखा जाए, तो वह सस्कृति सस्कृति ही नही रहेगी। भारतीय सस्कृति के आधार स्तम्भ हैं—वेद, उपनिषद्, आगम, त्रिपिटक, महाभारत, रामायण, मनु-स्मृति आदि ग्रन्थ। कहना नहीं होगा, वे सब-के-सब ऋषि, मुनि, निर्ग्रन्थ, भिक्षु व श्रमण कहे जाने वाले लोगों की ही देन है।"

विचार नया था, पर लोगों के मानस को छू गया। 'अगले ही दिन हिन्दु-

स्तान दैनिक के सम्पादक श्री मुकुटविहारी वर्मा ने अपने सम्पादकीय मे कल के आयोजन की चर्चा करते हुए लिखा—"मुनि श्री नगराजजी का तर्क सर्वथा मौलिक एव नवीन था। उपस्थित हम सबने अनुभव किया, यह तर्क अनुत्तर है। देश के विद्वान् इस तर्क के विपक्ष मे लिखने के लिए सादर आमन्त्रित हैं।"

डॉ० अग्रवाल द्वारा प्रतिवाद

कुछ ही दिनो बाद २७ अक्टूबर, १६५७ को 'हिन्दुस्तान दैनिक' मे प्रस्तुत विषय के प्रतिपक्ष मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का एक लेख प्रकाशित हुआ। उन्होने गृह-त्याग की अनुपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डाला था। उनके प्रतिपादन का मुख्य आधार **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा**—यह श्रुतिवाक्य था। उन्होने यह भी लिखा था, वेदो और उपनिषदो के उद्गाता पत्नी और सन्तान वाले ऋषि थे, आदि।

उस लेख से विचार-जगत् मे पुन एक नया स्पन्दन आया। तर्कों से भी अधिक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के नाम पर प्रभाव पडा। मुझे अनेक लोगो ने कहा—"देश के एक दिग्गज विद्वान् ने आपके विचार का निराकरण किया है, क्या आप पुन अपने पक्ष के समर्थन मे कुछ लिखेंगे ?"

मेरा उत्तर था—"मैंने जो कहा है, वह कही से उधार लेकर नही कहा है। मैं क्यो नही लिखूगा अपने पक्ष के समर्थन मे ?"

प्रतिवाद का प्रतिवाद

कुछ ही दिनो बाद लगभग चार कॉलम का 'भारतीय सस्कृति मे ऋषि-मुनियो का योग' शीर्षक मेरा लेख 'हिन्दुस्तान दैनिक' मे प्रकाशित हुआ। मेरे लेख का मूल आधार '**यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्**' श्रुतिवाक्य था। मैंने यह भी बताया था—"वेदो और उपनिषदो के उद्गाता गृही नही, गृह-त्यागी ऋषि-मुनि ही थे। भले ही उनकी आश्रमिक मर्यादा पत्नी के साथ रहने की हो। त्याग की मर्यादाए वैदिक, बौद्ध, जैन आदि परम्पराओ की विभिन्न हैं ही।"

लोगो का विश्वास था, यह लेख-चर्चा आगे से आगे चलती ही रहेगी, पर उसके अथ और इति मे लम्बा व्यवधान नही पडा। मेरे लेख के साथ ही वह चर्चा भी परिसमाप्त हो गई।

दोनो ही लेखो की भाषा सयत तो होनी ही थी, परतु विषय के निराकरण मे कटु नही, तो अमृदु तो हो ही जाती है। दूसरी बात एक-दूसरे से हम कभी मिले नही थे; अत. लिहाज बरती जाने की भाषा भी नही थी।

बनारस में साक्षात् मिलन

इस चर्चा के लगभग पाच मास पश्चात् हम लोग अपनी पद-यात्रा से बनारस पहुचे। वर्षावास के लिए हमे पटना पहुंचना था। मेरे मन मे उत्सुकता थी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल से मिला जाए। मैंने यह भी सोचा था कि वे अवश्य रूखे व्यक्ति होगे, साधु-सस्कृति के प्रति उनकी अनास्था है ही। उस चर्चा-प्रसग का असर भी उन पर होगा ही, पता नही वे कैसे पेश आयेगे ?

कार्यकर्त्ताओ ने उन्हे सूचना दी कि कल प्रात. मुनिश्री नगराजजी अपने सहयोगी साधुओं के साथ आपके यहा आयेंगे। उन्होने प्रसन्नता व्यक्त की।

हम लोग समय पर उनके घर पहुंचे। वे रूखे है, मेरा यह विश्वास तो उन्हें प्रसन्न व अभिवादन-मुद्रा मे देखते ही चला गया। हमे वे अपने प्रमुख कक्ष मे ले गए। न्यायाचार्य प० महेन्द्रकुमार जैन प्रभृति अपने अनेक पडोसी एव परिचित विद्वानो को उन्होने हमारे पहुचने से पूर्व ही आमत्रित कर लिया था। सबका परिचय कराया। कक्ष मे एक दीर्घ काष्ठ-वेदिका थी। शेष स्थान पर कालीन बिछा था। मैंने अपने सहयोगी साधुओ से कहा—"यह काष्ठ-वेदिका उठा दी जाए और अपने आसन भूमि पर लगा लिये जाए।"

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा—"यह नही होगा, इस वेदिका पर आप बैठे। हम लोग सब सामने बैठेंगे।"

स्मितभाव से मैंने कहा—'यह कोई जैन उपाश्रय नही है। यह डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का घर है। इतने ऊचे आसन पर बैठकर मुझे क्या यहा धर्मोपदेश देना है। हम तो तत्त्व चर्चा के लिए आए हैं। वह समान स्थिति मे ही सुन्दरता से होगी।

अनेक क्षणो तक यह विवाद चलता रहा, पर, उन्होने नही माना। हार कर मुझे उस समुन्नत वेदिका पर ही बैठना पडा।

सिद्धान्त और व्यवहार-प्रतिपादन के भिन्न-भिन्न स्थान

मैंने तत्त्व-चर्चा का प्रारम्भ करते हुआ कहा—"आप तो गृह-त्याग और सन्यास मे विश्वास ही नही करते, फिर आपके द्वारा गृह-त्यागियो का समादर कैसा ? क्या यह सिद्धान्त और कर्म का विरोध नही है ?"

विनम्र-भाव से उन्होने कहा—"विरोध कसे ? यह तो सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय है। सिद्धान्त सिद्धान्त के स्थान पर हो और व्यवहार व्यवहार के स्थान पर। सिद्धान्त के प्रतिपादन का स्थान 'हिन्दुस्तान दनिक' था और

व्यवहार के प्रतिपादन का स्थान मेरा घर है।"

पं० महेन्द्रकुमार जैन ने उन्हें कहा—"आपकी वह चर्चा भी तो अधूरी ही होगी, उसे ही क्यों न चलाया जाए ?"

डॉ० वासुदेवशरण ने उत्तर दिया—"वह तो मुनिश्री ने सम्पन्न कर दी, अतः उसे क्या कुरेदना है।

मैं उनके इस उत्तर को सुनकर मन-ही-मन सोचे जा रहा था—'कितने व्यावहारिक और कितने सज्जन हैं। अपने ज्ञान का तनिक भी अहं नहीं है और न अपने पक्ष का तनिक भी आग्रह है। सिद्धान्त व व्यवहार के कितने समन्वेता हैं ?"

गभीर तत्त्व-चर्चाएं चली। उनमे उन्होने अवश्य अपना पाडित्य खोला। वेद और उपनिषद् तो मानो उनके कण्ठाग्र ही हो। उनके प्रत्येक कथन के पीछे अनेक शास्त्रों का अनेक बार का पारायण बोलता था। हमे लगा, वैदिक वाङ्मय का इतना पारदर्शी विद्वान् सम्भवतः देश मे कोई विरल ही हो।

लगभग दो घंटे का सलाप पूरा हुआ। हम प्रस्थान के लिए उठे। उन्होने आग्रह किया—"आपकी जो भी विधि हो, मेरे घर का भोजन ग्रहण करें तथा यही बैठकर भोजन करें और फिर प्रस्थान करे।"

उनका आग्रह टाला कैसे जा सकता था ! इस प्रकार दिल्ली से प्रारम्भ हुआ सम्पर्क वाराणसी मे आकर सम्पन्न हुआ।

—०—

: २७ :

विद्या-वारिधि एवं ज्ञा-पुत्र पं० श्री सुखलालजी

(कहानी प्रथम सम्पर्क से 'एक अवलोकन' तक की)

प्रज्ञाचक्षु प० श्री सुखलालजी विद्वज्जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उनकी आभा मे चिरकाल से चिन्तको एव विद्वानो के निर्माण की एक अजस्र धारा बहती रही।

कल्पना ही नही की जा सकती कि प्रज्ञाचक्षु स्थिति मे भी अथ से आरम्भ होकर इतनी पराकाष्ठा का विद्वान् कोई बन सकता है। लगता है, बाह्य नेत्र बन्द होने के साथ-साथ ही उनकी अन्त प्रज्ञा प्रबल रूप से उजागर हो उठी थी। अपने अध्ययन-काल मे चालीस हजार श्लोक परिमाण ग्रन्थो को कण्ठस्थ कर लेना इसी का परिणाम है। स्मरण-शक्ति से भी बढकर उनका प्रज्ञा का विकास गूढतम शोध-कार्य तथा अपने मुक्त चिन्तन, मनन एव निदिध्यासन मे हुआ था। नेत्र-विहीनता मे भी इतना अद्भुत बौद्धिक विकास विश्व-इतिहास का एक महान् आश्चर्य है।

किशोरावस्था की अपनी नेत्रयुक्त स्थिति मे तो वे सामायक आदि अनुष्ठान मे लगे रहना, स्नानादि न करना, मस्तिष्क के केशो से गिर जाने वाली यूकाओ को पुन. मस्तिष्क मे रख लेना; आदि क्रियाओ मे ही निमग्न रहे। पर, बाह्य दृष्टि का अन्तर्धान होते ही उनकी अन्तर्दृष्टि जीवन-विकास के बन्द कपाटों को खोलते ही गयी। जब लगभग नब्बे वर्ष की आयु मे थे, तब मेरा अपने 'आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन ग्रन्थ के सन्दर्भ से लगभग इक्कीस दिनों तक निरन्तर उनके साथ विचार-चर्चा का अवसर बना। मैंने पाया कि इस आयु मे भी उनकी स्मरण-शक्ति एव विचार-शक्ति मन्थर होने की अपेक्षा क्रमशः स्फूर्त होती-सी ही प्रतीत

हो रही है। ऐसे विद्या-वारिधि एव प्रज्ञा-पुत्र को पाकर सचमुच ही वर्तमान शती धन्य हुई।

उक्त प्रसग विक्रम सम्वत् २०२५ (सन् १९६८) के मेरे अहमदाबाद वर्षा-वास का है। इससे पहला वर्षावास वहा आचार्य श्री तुलसी का था। मैं तथा मुनि मानमलजी आदि ठा ४ शाही बाग के सागर सदन मे प्रवास कर रहे थे।

पण्डितजी से मिलने की उत्कण्ठा वर्षाकाल के आरम्भ से ही मेरे मन मे थी। उनके विचारो से भी मैं परिचित था। वैसे तो वे साधु सस्था मात्र को अपढ व रूढ़ि-ध्वस्त मानते थे। तेरापथ से तो उनका विरोध और भी कठोर था। बाल-दीक्षा, दान-दया आदि की परिभाषाओं से उनके मन में तिरस्कार की भावना थी। वक्ता के रूप मे उन्हे स्पष्ट भाषी या कटु भाषी कुछ भी कहा जा सकता है।

श्री गणेशमलजी दूगड ने उनसे हमारे मिलने का समय निश्चित किया। लगभग तीन मील की दूरी थी। मैं व मुनि महेन्द्रकुमारजी द्वितीय' एव श्री गणेशमलजी दूगड हम तीनो वहा यथा समय पहुचे। मैंने मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' को सावधान कर दिया था कि अपने शोध-साहित्य के विषय मे कोई चर्चा नही करनी है; क्योकि वे मूल धारणा के कारण व्यर्थ मे उपहास करेंगे। पहले तो हमे उन्हे ही सुनना है, समझना है।

श्री गणेशमलजी दूगड ने परिचय करवाया। मैंने उनके विषय मे ही जिज्ञासा-मूलक बाते आरम्भ कर दी। वार्तालाप सरस ही चलता रहा। उन्होने दिलचस्पी से अपने जीवन-क्रम का लेखा-जोखा बताया। बीच मे ही गणेशमलजी दूगड बोल पडे—मुनिश्री नगराजजी ने भगवान् महावीर व भगवान् बुद्ध पर तुलनात्मक व शोध-ग्रन्थ लिखा है। यह मेरे प्रथम खण्ड की बात थी। वह मुद्रण मे चल रहा था।

श्री गणेशमलजी की बात सुनते ही पण्डितजी का रग बदल गया। बोले—साधु लोग क्या शोध ग्रन्थ लिखेगे। उनकी तो लिखने की शैली ही साम्प्रदायिक होती है। गुजरात मे बडे-बडे ग्रन्थ आचार्यों व मुनियो के छपते है, लाखो-लाखो का व्यय होता है, पर, आधुनिक शैली का शोध-ग्रन्थ कह सके, वैसा मेरे सामने तो अभी एक भी ग्रन्थ नही आया।

इतना कह कर पण्डितजी कुछ मेरी ओर मुडे। कहने लगे—मुनिजी! बौद्ध-साहित्य मे आपने क्या क्या पढा है? यह पढ़ा है, वह पढा है, आदि पूछते ही गये। अस्तु, उत्तर मे मैं स्वय अपने मुह से कैसे कहता कि मैंने बौद्ध-साहित्य को गहराई से पढ़ा है और आप जो कहते हैं, वह सभी ग्रन्थ पढ़े हैं। मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' ने मेरे बदले समुचित उत्तर दिया—मुनिश्री ने बौद्ध-साहित्य का काफी

मन्थन किया है। और, मैंने एक बार के लिए इस विषय को मोड दे देना ही उचित समझा। अन्य प्रासंगिक बाते आरम्भ हो गईं। वातावरण फिर प्रफुल्लित हो गया। उठते-उठते मैंने कहा—पण्डितजी ! मैं चाहता था, मेरे ग्रन्थ के कुछ अश आप सुन पाते। इससे मुझे परिमार्जन व सशोधन का भी मार्ग मिलता। पण्डितजी ने कहा—मेरे पास कहा समय है ? पीएच० डी० करने वालो के समय यथाक्रम बधे हुये हैं। फिर भी आप चाहे तो कल दुपहर को आ सकते हैं। मैंने कहा—यह तो सम्भव नही है। तीन मील का रास्ता है, गर्मी का मौसम है।

हम सब उठकर वापिस सागर सदन आ गये। साय पण्डितजी का श्री गणेशमलजी दूगड के यहा फोन आया—कल सवेरे का समय मैंने खाली कर लिया है, मुनिजी सवेरे ही आ सकते हैं।

मैं तथा मुनि महेन्द्रकुमारजी यथा समय पण्डितजी के यहा पहुच गये। सामान्य शिष्टाचार के बाद मुनि महेन्द्रकुमारजी ने ग्रन्थ का वाचन आरम्भ किया। प्रथम दस-बारह पक्तिया ही पढी होगी कि पण्डितजी ने कहा—आपने ग्रन्थ का आरम्भ तो सुन्दर ढग से किया है।

वाचन चालू रहा। पण्डितजी मुग्ध होते गये। अवसर देखकर मैंने पूछा—ग्रन्थ आप केवल आज-आज ही सुनने की स्थिति मे हो तो हम विभिन्न प्रकरणो के कुछ कुछ मध्यवर्ती अश सुनाना चाहेगे। यदि लगातार प्रतिदिन सुनना सम्भव हो तो यथाक्रम ग्रन्थ ही सुनाना चाहेगे। पण्डितजी ने कहा—सुनाते चलिए, अब तो मैं भी चाहता हूँ, पूरा ही सुन लू।

अस्तु, इक्कीस दिन तक वह क्रम चला। पण्डितजी का ज्ञान देख कर हम प्रभावित थे और ग्रन्थ सुन-सुन कर पण्डितजी प्रभावित होते जा रहे थे। बीच-बीच मे पण्डितजी कहते—मेरी तो अब उम्र ढल आई है। आप लोग अभी साहित्य-कार्य मे बहुत कुछ नया कर सकते हैं। पण्डितजी को जो-जो अच्छे विषय याद आते, हमे नोट करा देते। कहते—इस विषय पर जरूर लिखना है।

इक्कीस दिनो का यह पारायण बहुत ही सुन्दर व सरस रहा। अन्त मे मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा—पण्डितजी ! अच्छा हो, इस ग्रन्थ पर आपके कुछ विस्तृत उद्‌गार भी हमे मिले।

पण्डितजी ने कहा—भूमिका के रूप मे आप ग्रन्थ पर ए० एन० उपाध्ये का नाम दे ही रहे हैं। वह प्राकृत का अधिकारी विद्वान् है। फिर भी 'एक अवलोकन' के रूप मे इस ग्रन्थ पर कुछ विस्तार से लिखना पसन्द कर सकता हूँ।

पण्डितजी बोलते व मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय' लिखते। सन्दर्भ ग्रन्थ आदि की नोध देकर सम्पादन भी मुनि महेन्द्रकुमारजी कर लेते। ग्रन्थ के छ -सात

पृष्ठों जितना 'एक अवलोकन' बन गया। पण्डितजी ने दुबारा सुना। कहा—दलसुख भाई मालवणिया विदेश में हैं। वे इसे एक बार देख लेते तो और अच्छा रहता। दलसुखभाई के पाण्डित्य पर पण्डितजी को पूरा भरोसा था। वे उन्हें अपना पट्ट-शिष्य जैसा ही मानते थे, ऐसा हमे लगता था। हम लोगो ने कहा—ग्रन्थ छप रहा है, अब देर होना सम्भव नहीं है। अब तो आप हमारे पर ही श्री दलसुख भाई जितना भरोसा करें। किसी विद्वान् ने आपके लिखने पर कोई आपत्ति उठाई तो वह आप तक नहीं आयेगी। हम ही उनसे निपट लेंगे। अस्तु, यह एक कहानी हुई पण्डितजी से प्रथम सम्पर्क की तथा 'एक अवलोकन' के लेखन की, जो स्वय मे एक ऐतिहासिक घटना है।

—o—

: २८ :

राजनीति और धर्म भी हमराही

(प्रशासन पर प्रभाव की उपयोगिता)

अनेक बार प्रश्न सामने आता है—राजनीति और धर्म सर्वथा पृथक् हैं, फिर क्यो धार्मिक समारोहो की गरिमा बढाने राजनेताओ को खोजा जाता है तथा राजनेता क्यो धार्मिक समारोहो मे आने की उत्सुकता दिखलाते हैं ?

साधारणतया देखे तो प्रश्न समुचित लगता है, क्योकि राजनीति की राह अलग है, मजिल अलग है, इसी प्रकार धर्म की भी। परन्तु, चिन्तन की थोड़ी-सी गहराई मे उतरते हैं तो स्पष्ट लगता है कि जीवन-व्यवहार की पगडडियां ऐसी घुली-मिली हैं कि बहुत बार धर्म और राजनीति को भी हमराही होकर चलना पडता है।

धार्मिक आराधना दो तरह से सम्पन्न होती हैं—एक व्यक्तिगत रूप से, एक सामुदायिक रूप से। व्यक्तिगत रूप से धार्मिक साधना करने वाला कहीं गिरि-कन्दरा मे जाकर बैठे। उसे राजनीति व अन्य प्रशासनिक प्रणालिया न उसके लिए बाधक बनेंगी, न कही भी बाधक। पर, आज तो धर्म समाज बनकर जी रहा है। सभी धर्मों के अपने-अपने धर्म-स्थल, बहुमूल्य मूर्तिया व अन्य सामग्रिया। आये दिन बनने वाले अनुकूल व प्रतिकूल कानून। अस्तु, यही सब अपेक्षा व सुरक्षा के सवाल राजनीति व धर्म को हमराही बनाते हैं। कहने का तात्पर्य, प्रत्येक समाज हर मायने मे वर्चस्वशील बनकर ही जीना चाहता है। प्रशासन पर उसका वर्चस्व छाया रहे, यह तो आवश्यकता व अनिवार्यता का ही प्रश्न बन जाता है। दूसरी बात धर्म तो सब के ही साथ प्रेम व सौहार्द की ही बात सिखलाता है, फिर राज-नेता व प्रशासक ही इसके अपवाद क्यो ? जैन धर्म तो वैसे भी राजनेताओं व राजकुमारो से आरम्भ होता है। चौबीस तीर्थंकरो मे हुआ है कोई ऐसा जो पहले राजा या राजकुमार न रहा हो ?

राजनेताओ के धर्म से परिचित होने से व धर्म-गुरुओ के निकट होने से कभी-कभी कितने उपयोगी बन जाते हैं, ऐसे प्रसग भी अनेक बार मेरे सामने आये हैं। सक्षेप मे उनकी जानकारी सर्वसाधारण के लिए उपयोगी हो सकती है।

बाल-दीक्षा विधेयक पर पं० नेहरू

आजादी के आदि दिनो मे ही एक बाल-दीक्षा विधेयक की चर्चा उठी। वह भी कांग्रेस के खेमे से। धार्मिक जगत् मे एक तहलका-सा मॅचा। उक्त सन्दर्भ मे ही मेरा प्रसग प्रधानमंत्री प० नेहरू से बातचीत करने का बना। मैंने उनसे कहा—पृथक्-पृथक् धर्म सघो मे जब अपने-अपने नियम इस विषय मे हैं, तब सरकार अलग क्यो नियम बना रही है ?

प० नेहरू—नाजायज तरीको से भी बहुत बार साधु बने, बनाए बनाये जा रहे हैं, जो आगे चलकर समाज मे भ्रष्टाचार फैलाते हैं, अत इस विधेयक की आवश्यकता लग रही है।

मैंने कहा—इसका मतलब जो जायज तरीको से साधु बनते-बनाते हैं, इस विधेयक से उन पर भी रोक आयेगी ?

प० नेहरू—यह तो बडा कठिन है कि सरकार निर्णय कर सके कि कहा जायज तरीके से व कहा नाजायज तरीको से साधु बनने-बनाते हैं। अलग अलग सघो के लिए अलग-अलग नियम भी नही बन सकते।

मैंने कहा—इसका तात्पर्य, बुरे लोगो के साथ अच्छे लोग भी कानून की चक्की मे जायेंगे !

प० नेहरू--किसी बुराई को मिटाने के लिए कुछ तो ऐसा होता ही है। इसका और कुछ चारा भी नही।

मैंने कहा—कानून की मौलिक मान्यता तो यह है कि निनानवे गुनाहगार भले ही छूट जाये, पर एक भी बेगुनाह को सजा नही मिलनी चाहिए।

इस बात पर प० नेहरू ने मेरी ओर आख उठाकर देखा और कहा—हाँ, कानून तो यही कहता है। खैर, अभी तो फिर चलता है, वैसा ही चलेगा। अस्तु, उस विधेयक को प० नेहरू ने फिर लोक सभा मे नही आने दिया। पहले से ही मेरा सम्पर्क प० नेहरू से चला आ रहा था, तभी उन्होने इस बात को गहराई से लिया। राजनेताओ से कोई सम्पर्क ही न रखा जाए तो अचानक ही इतने बड लोगो की धारणा को रूपान्तरित कर पाना सम्भव नही हुआ करता।

भिक्षा-बिल और पं० पन्त

भिक्षा-निरोधक बिल की बात एक बार सारे देश में गूंज उठी। साधु-रजिस्ट्रेशन बिल का सवाल भी शायद साथ-साथ था। दोनों ही बातें जैन साधुओं पर अधिक बाधक बनती थी। पूरे जैन समाज मे एक कुहराम-सा मचा हुआ था। हम लोग दिल्ली मे ही थे। गुजरात से श्री धीरजभाई टोकरसी के नेतृत्व में एक बहुत बडा शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। अन्य सम्बन्धित समाजें भी सक्रिय थीं। सम्पर्क का तथा बिल को रुकवाने का कार्य जोरो पर था, अतः हम लोगों ने तब तक बीच मे हाथ नही डाला था।

यह बिल काँग्रेस के ही वरिष्ठ सांसद श्री राधारमणजी ला रहे थे। पूरी काँग्रेस पार्टी भी समर्थन में थी। ससद मे बिल आए, उससे पहले दिन साय काँग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड मे इस पर चर्चा होनी थी। उसी दिन दोपहर को श्री धीरजभाई नयाबाजार आए। हमे बताया— बिल रुक नही सकता, हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ ही जा रहे हैं। अब आप कुछ चमत्कार दिखला सके तो बात बने। आपके सपर्क तो सब से ही विशेष कोटि के है।

मैंने कहा—सासद श्री राधारमण अपनी बात पर अड़े हुए हैं। पार्टी का भी उनको समर्थन है। उनसे तो मैं भी बात कर चुका हू। वे कुछ भी मानने को तैयार नही हैं। अब आप आए हैं तो एक प्रयत्न और करने की सोचता हूँ। लग गया तो तीर नही तो तुक्का, आप सब यही मानकर चलना।

दोपहर मे तीन या चार बजे का समय होगा। मैंने पास बैठे मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' की ओर देखा और कहा—अभी-अभी तुम गृहमत्री प० गोविन्दवल्लभ पन्त की कोठी पर जाओ और उनसे कहो—मुनिश्री नगराजजी कल प्रात. ९-१० बजे आपकी कोठी पर आपसे बात करने आ रहे हैं। भिक्षा-बिल के विषय मे बात करनी है।

अतुल साहसिक मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' बिना किसी सुविधा-असुविधा का ध्यान दिए द्रुत गति से गृहमत्री की कोठी पर पहुच गये। गृहमत्री उस समय बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे। कार मे बैठ चुके थे तथा कार चलने ही वाली थी।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' को देख कर श्री पन्तजी ने प्रणाम किया और जिज्ञासा भरी नजरों से उनकी ओर देखा। उन्होने कहा—कल सवेरे मुनिश्री नगराजजी आपके यहा पधारेंगे, जरूरी बात करनी है। श्री पन्तजी ने कहा—बडे मुनिजी क्यो कष्ट करते हैं। जो बात है, वह आप ही बता दे। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा—भिक्षा-बिल के विषय मे बात करेंगे।

श्री पन्त ने कहा—आप ही कहिए न कि वे इस बिल को चाहते हैं या नहीं चाहते हैं ?

मुनि महेन्द्रकुमारजी ने कहा— वे इसे बिलकुल नही चाहते।

श्री पन्तजी ने ठीक है, कहते हुए गाडी बढ़वा दी। उन्हे उसी समय कांग्रेस पार्लियामेण्टरी बोर्ड की मीटिंग को प्रजाइड करना था। अन्यान्य बातो के साथ श्री राधारमणजी से उन्होने कहा—तुम अपना भिक्षा-बिल वापिस कर लो। बड़ा विरोध है उसका। श्री राधारमणजी ने कहा—मैं अपना बिल हरगिज वापिस नही करूगा।

श्री पन्तजी ने कहा—मत करो वापिस, कांग्रेस पार्टी उसका समर्थन नही करेगी। बस, इतना कहना था कि राधारमणजी ढीले पड गये। एक घण्टे मे ही सारा ज्वार शान्त हो गया। थोडी ही देर पश्चात् गृहमन्त्रीजी के निजी सचिव का फोन श्री मोहनलालजी कठोतिया की कोठी पर आया कि मुनिश्री नगराजजी को बता दे कि भिक्षा-बिल वापिस करवा दिया है।

दीक्षा-बिल और श्री मोरारजी भाई

बम्बई मे श्री मोरारजी भाई देसाई मुख्यमन्त्री थे, तब भी एक बार बाल-दीक्षा निरोधक बिल तूफानी चाल से आया। उसे वहा उठाने वाले थे, श्री प्रभुदास पटवारी, जो आगे चलकर तमिलनाडु के राज्यपाल बने। इस बिल के पीछे कलकत्ता, बम्बई आदि सब नगरो के समाज-सुधारक एकजुट हो गये थे। उस समय हम लोग बम्बई मे ही प्रवास कर रहे थे। मुख्यमन्त्री श्री मोरारजी भाई से साप्ताहिक मिलन व अध्यात्म-चर्चा का क्रम चालू था। इस बिल की पूरे देश मे ही हलचल हो चुकी थी। आचार्यश्री तुलसी की प्रेरणा से श्री छोगमलजी चोपडा, श्री मदनचन्दजी गोठी आदि कतिपय मुख्य व्यक्तियो का एक शिष्ट-मण्डल बम्बई आ गया था। आचार्यश्री तुलसी का निर्देश था कि मुनि नगराजजी के साथ श्री मोरारजी भाई से मिलना है और तेरापथ की प्रशस्त दीक्षा-प्रणाली से उन्हे अवगत कराना है।

साप्ताहिक अध्यात्म-चर्चा मे एक दिन आगतुक लोग और हम सब श्री मोरारजी भाई से मिले। दीक्षा निरोधक बिल पर बातें चली। हम तेरापथ की दीक्षा-विषयक प्रशस्तता बताने लगे तो श्री मोरारजी भाई तीखी आवाज मे बोले—आप अपने तेरापथ की प्रशस्तता बता रहे हैं और यह बिल खासतौर पर तेरापथ के विरोध मे ही लाया जा रहा है; क्योकि सबसे अधिक बाल-दीक्षाए तेरापथ में ही होती है, ऐसा मुझे बताया गया है। मोरारजी भाई का रुख देखकर

तथा यह उत्तर सुनकर एक बार के लिए हम सब सकपका गये। फिर मैंने उस गर्म वातावरण में ही कहना आरम्भ किया—मोरारजी भाई! एक बात आप ध्यान से सुने! दीक्षा मे प्रशस्तता रह सके, इसलिए हमारे सघ मे एक नियम है कि एक-मात्र आचार्य ही दीक्षा देने का अधिकारी रहे, ताकि पारिस्परिक स्पर्धाओं के कारण ऐर-गैर को दीक्षा न दी जा सके। एक ही को दीक्षा देनी है तो जल्दबाजी भी कोई नही होती। सबसे अधिक दीक्षाए तेरापथ मे होती हैं, यह भी आपको सही नही बताया गया है। हमारे संघ मे ६००-७०० साधु-साध्विया हैं। सभी को दीक्षा देने का अधिकार हो तो दीक्षाए भी हमारे सबसे अधिक हो सकती हैं और आपको तथा आपत्ति उठाने वाले सज्जनो को यह आभास भी न हो कि तेरापथ मे साल-भर मे कितनी दीक्षाए हुई। हमारे यहा प्रशस्तता कायम रखने के लिए उक्त नियम बनाया गया है। उसका परिणाम आप उलटा ले रहे हैं। हमारे यहा एक हाथ से एक साथ ही दीक्षाए होती हैं, इसलिए वे अधिक लगती हैं, पर, सही गणित लगाए तो हमारे तेरापथ की व्यवस्था कुल मिलाकर औरो से अच्छी ही है। ऐसा आप भी अनुभव करेगे। अस्तु, नर्म-गर्म बातो के साथ उस दिन का वार्तालाप सम्पन्न हुआ। साथ वाले लोगो को लगा, मुख्यमत्री का ध्यान भी जब ऐसा बना रखा है, तब अच्छा होने की क्या आशा की जा सकती है? मैंने कहा—श्री मोरारजी भाई मे तेजस्विता तो है, पर, साथ साथ चिन्तन भी है। देखे, अपनी ओर से जो कुछ कहा गया है, उसका भी कोई असर होता है या नही।

विधान सभा मे बिल रखा गया। एक से आगे एक विधायक आज ही बिल पास कर देने पर जोर देने लगे। लगभग सारा सदन एक ही पक्ष मे था। सबके सामने मेजो पर बिल समर्थक साहित्य का ढेर-सा लगा था। दीर्घाए दर्शको से ठसा-ठस भरी थी। श्री छोगमलजी चोपडा आदि तेरापथ समाज के भी काफी लोग दर्शक-दीर्घा मे बैठे थे। सब लोग सोच रहे थे कि बिल तो पास हो ही गया। अब क्या बाकी रहा है?

अन्त मे मुख्यमत्री श्री मोरारजी भाई खड़े हुए। लगभग एक घण्टे भाषण दिया। अन्तर इतना ही था कि सदन बिल के पक्ष मे था और उनका भाषण बिल के विपक्ष मे। पर, भाषण कमाल का था। शास्त्रीय एव ऐतिहाहिक पूरावो से भरा-पूरा भी था। उनके भाषण मे मुख्य दलील थी—ध्रुव प्रह्लाद व शकर जैसी विभूतिया बाल-दीक्षा से ही आई हैं। हमे उक्त प्रकार के महापुरुषो के आने का रास्ता ही बद कर देने का क्या अधिकार है? आप कहेगे, आजकल ऐसे महापुरुष कहा आते हैं? पर, मैं पूछता हूँ, क्या आप गारन्टी ले सकते हैं कि ऐसे महापुरुष भविष्य मे आयेगे ही नही! शताब्दियो व सहस्राब्दियो मे एक भी ऐसा महापुरुष इस धरती पर आ गया तो मैं मानता हूँ, बाल-दीक्षा से आज जो आप हानियां

बतला रहे हैं, उस एक महापुरुष के आने से मानव जाति को जो लाभ मिलेंगे, वे कितने ही गुने अधिक होंगे।

श्री मोरारजी भाई का भाषण सुनकर सदन भी चकित था और दीर्घा मे बैठे लोग भी। लगता था, कोई ऋषि बोल रहा है। घण्टे भर के भाषण से सदन का सारा ज्वार शान्त हो गया तथा बिल के पास करने के बदले आम जनता की राय जानने हेतु आगे पर रख दिया गया।

श्री छोगमलजी आदि मेरे पास आए तो गद्‌गद् थे। बोले—आज तो श्री मोरारजी भाई में आचार्य श्री भिक्षु की आत्मा ही बोल रही थी।

कुछ दिन पश्चात् मैंने श्री मोरारजी भाई के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। जनता की राय पर छोडने का कारण पूछा। उन्होंने हंस कर उत्तर दिया—किसी बिल को समाप्त करने का यह तो एक राजनैतिक तरीका है।

—o—

: २९ .

अमावस्या की एक काल-रात्रि

(एक परीषह प्रसंग)

सन् १९५४ की बात है। ज्येष्ठ का महीना था। हम लोग दिल्ली से जयपुर की पद-यात्रा पर थे। अलवर और दिल्ली के बीच मे 'रामगढ' गाव आया। गाव के लोगो से हम लोगो ने जानकारी ली। पता चला, यहा से तीन-चार माईल दूर सडक के बाई ओर ही एक 'तिरवारी' है, एक कुआ है। आज साय तक आप लोग वहा पहुच जाते हैं और रात्रि-विश्राम वहां कर लेते हैं तो अगले दिन अलवर वहा से दस-ग्यारह माईल ही रह जाता है। जो एक ही मजिले मे पहुचा जा सकता है।

कार्यक्रम वैसा ही बन गया। दिल्ली के सात-आठ आदमी सेवा मे थे। केवल दो आदमी हमारे साथ रहे, शेष सब वही से सीधे अलवर पहुच गये। हमने सायकालीन आहार-पानी रास्ते मे ही कर लिया, जो कि गाव से जब प्रस्थान किया गया, तभी साथ मे ले लिया गया था। सूर्यास्त के लगभग हम उस तिरबारी मे पहुचे। देखा, छोटी-सी तिरबारी है। वह भी घास-फूस व गोबर आदि से भरी है। इन सबसे भी बड़ी मुसीबत यह थी कि वहां सैकडो-सैकड़ों 'मकोड़े' घूम रहे थे। उस दिन जेठी अमावस्या थी, पक्खी थी। जैसे-जैसे प्रतिक्रमण सम्पन्न किया, ध्यान लगाया। आस-पास दूर-दूर तक कोई दूसरी जगह नहीं है। अधेरा बढ़ता जा रहा है। सडक पर इक्के-दुक्के गुजरने वाले आदमियों से हम लोगो ने जानकारी मांगनी शुरू की। उन्होंने बताया—यहा तो भयकर जंगल है। इधर रामगढ़, इधर अलवर। बस्ती या गांव जैसी-कोई चीज आस-पास तो क्या दूर तक भी भी नही है, अब रात पड रही है। पहाडों मे जगली लोग रहते हैं। रात भर आग जलाए रखते हैं ताकि कोई सिह, बाघ, चीता आदि जगली जानवर उन पर व उनके पशुओ पर हमला न कर सके। फिर भी कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है।

हम लोगो ने पूछा—इस तिरबारी मे भी किसी जगली जानवर का भय हो सकता है ? सड़क दिन-रात चलती रहती है, अत. वैसे तो सम्भावना कम है, पर अभी जेठ का महीना है, लूए चल रही हैं, पानी के झरने सूख गये है। इस तिरबारी से सटा हुआ जो कुआं है, उसकी 'होदी' मे थोडा-बहुत पानी रहता है। बचे-खुचे पानी की तलाश मे आजकल तो रात में यहा हिंसक व जगली जानवर आ ही सकते हैं। चार साधु व दो अन्य भाई, छ लोग हम वहा थे, एक-दूसरे का मुह ताकने लगे। हम सबके सामने प्रश्न था—जाएं तो कहा जाए,करे तो करें क्या ? दो आदमी जो हमारे साथ थे, उनके पास प्रकाश का भी कोई साधन नही था। एक भाई की जेब मे दियासलाई की एक डिबिया थी। सोचते-विचारते एक तजवीज सब के समझ में आई, जो सब तरह के सुरक्षित थी। देखा, उस 'तिरबारी' के ऊपर एक सघन वृक्ष छाया हुआ है। छत पर जाने के लिए जीना तो नही है, पर, पत्थर के दाँते दीवार मे लगाए हुए हैं, जो सावधानी से काम लेने पर जीने का काम दे सकते हैं। एक-एक साधु ने सारा सामान लदा और एक हाथ मे रजोहरण लिया। एक-एक कर चारो साधु छत पर आ गये। कुछ चैन मिली। वहा न मकोड़े थे, न सिह, बाघ का भय भी। गरमा गरम लुए बेशक चल रही थी। सोचा, ज्यो-ज्यो रात ढलेगी, लुए ठण्डी होती जाएगी। तरीके से सामान जमाया और बैठने के लिए कम्बल बिछाए। उस यात्रा मे मेरे साथ मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', मुनि हर्षचन्द्रजी (वर्तमान मे कथालोक मासिक के सम्पादक), मुनि मानमलजी ज्योतिविद थे। उन गरम लुओ के चलते नीद ले पाने का तो सवाल ही क्या था ? कुछ सामूहिक स्वाध्याय, कुछ बाते चलने लगी।

लगभग दस के आस पास लुओ की गर्मी कुछ कम पडी। सोचा, अब कुछ लेट कर आराम करे। लेटने के पश्चात् घण्टा भर भी पूरा नही बीता होगा कि अचानक घोर तूफानी अधड आ गया। सारा जगल शाय-शाय कर उठा। वैसे अधिक घबराने वाला हम चारो मे कोई नही था। परिस्थिति के अनुसार सोचना व जो बन सके, वह करना। इतना तेज अधड मैंने तब तक के छत्तीस वर्षों मे कभी नही देखा और न अब तक के सत्तर वर्षों मे फिर कभी देखा। अब खतरा था तो वृक्ष के टूटने का और ऊपर आ गिरने का था। लगता था, वृक्ष अब टूटा कि अब टूटा। मैंने कहा—अब तो नीचे तिरबारी मे चलना ही कम खतरनाक है। आधी का वेग देखने के लिए मैं उठा। दो कदम आगे बढ़ाए। लगा, तीसरे कदम मे तो आधी अपने आप ही नीचे पहुंचा देगी। उस जेठी अमावस्या की काली-पीली रात मे पत्थर के दातो को टटोल पाना भी सम्भव नही था। दियासलाई से बेचारी से उस समय बन ही क्या पाता था ! चारो साधु एक दूसरे को थामे गर्दन नीची

करके बैठ रहे। जो होगा, वह भाग्य भरोसे ! कोई शान्तिनाथ भगवान् का जाप करने लगा तो कोई नवकारमंत्र का। मुनि मानमलजीजी ने तो कहा—मुझे सथारा 'पचखा' दीजिए। अगली गति तो सुधरे। मैंने कहा—सथारा कराने का मैं वैसे भी पक्षपाती नही हूं। मौत के डर से सथारा करना तो एक प्रकार से कायरता भी है। भाग्य पर भरोसा रखो, सब ठीक ही होगा।

लगभग दो घण्टे वह अन्धड हमारे ऊपर से गुजरता रहा। वह महाकाय वृक्ष झुक-झुक कर काल के रूप मे हमारे ऊपर मडराता रहा। हमारे साथ वाले दोनो भाई चिन्ता कर रहे थे, हम आपकी सेवा मे आए हैं, कुछ भी हो गया तो दिल्ली जाकर क्या मुह दिखलाएगे ? दो घण्टे पश्चात् अधड का वेग कुछ घटा और बुदाबादी होने लगी। अब तो ऊपर रहना कल्पता ही नही। एक-एक साधु अपने-अपने सामान के साथ एक सिपाही की तरह कटिबद्ध होकर पत्थर के टाते टटोल-टटोल कर नीचे पहुचे। एक-एक भाई भी साथ रहा। नीचे पहुच कर दोनो ने आवाज लगाई, हम सकुशल आ गए है। तब दूसरे साधु इसी तरह रवाना हुए। क्रमश छओ व्यक्ति तिरबारी मे पहुच गए। एक भाई ने दियासलाई जलाई। पता चला, अब मकोडे गायब हैं। सयोग की ही बात थी कि हम तिरबारी के अन्दर बाते कर रहे थे कि इतने मे ही तिरबारी के बाहर उसी वृक्ष की एक बहुत बडी शाखा टूट कर हमारे सामने आकर गिरी। वही शाखा कुछ ही क्षण पहले गिरती तो कोई साधु या भाई अवश्य उसकी चपेट मे आ जाता।

दोनो भाइयो ने कहा—मुनिश्री, आप चारो अब सोकर अराम करे। हम दोनो पहरे पर बैठे हैं। कोई सिंह या बाघ आया तो हमारे तक ही आएगा, आप लोगो तक नही। अस्तु, इस स्थिति मे दो-दो घण्टे की नीद सब सतो ने आराम से ली। उस काल-रात्रि का समापन वैसे वहुत ही सुखद रहा। प्रात काल विहार मे हमने देखा, वहा से अलवर तक पच्चासो वृक्ष तो सडक पर टूट कर आडे तिरछे पडे थे। सडक पर वाहनो का यातायात बन्द था। अस्तु, अमावस्या की एक काल-रात्रि भी एक अविस्मरणीय इतिहास बन गई।

चोर हैं या डाकू ?

उसी दिन ढलती रात मे एक रोचक-सा घटना-प्रसग और बन गया। लगभग दो घडी की रात शेष रह रही थी, हम लोग व दोनो भाई कुछ बाते कर रहे थे। जिधर से हम आए थे, उधर से ही ऊटो के इक्को का एक काफिला-सा आ रहा था। उस तिरबारी मे हमे बोलते सुना तो वे झिझक गए, जगल की इस तिरबारी मे इस समय कौन बोल रहे है ? कोई चोर हो सकते हैं या डाकू ! किसी-किसी ने सोचा, हो सकता है यह भूतो का डेरा हो। काफिला कुछ दूर पर ही ठहर गया।

टोर्च-लाइटें उधर से आने लगीं। हम समझ गए कि ये लोग डर गए है, वहम मे पड़ गए हैं। हमारे में से दोनों भाई बाहर निकले और बोले—आजाओ, आजाओ, कोई डर नहीं है! उन दोनों को सामने आते देखा तो भय के मारे काफिला वापिस मुड़ने लगा।

आखिर उन दोनो ने जोर से कहा—यहां साधुजी महाराज हैं, रामगढ़ से आए हैं। सवेरे अलवर जाना है। वे लोग भी रामगढ़ के ही थे। साधुजी महाराज का नाम सुनते ही उन्हे कुछ भरोसा हुआ, क्योंकि रामगढ में वे लोग व्याख्यान सुन चुके थे। आगे अलवर तक का रास्ता बताने की बात भी कुछ-कुछ सुन रखी थी। आखिर, हमारे दोनो भाई उनके पास पहुच गए। भरोसा कराया। तब तो सब लोगो ने नजदीक आकर दर्शन भी किए तथा अपने-अपने वहम की सम्बन्धित बातें भी बताईं। सच ही कहा जाता है, वहम मनुष्य को कहा-का-कहां पहुचा देता है! साधुओं को डाकू या भूत-पलीत समझ लेना तो मामूली बात है!

—०—

: ३० :

कतिपय अद्भुत संस्मरण

१ निकल गया तो वहम नहीं तो भूत

एक बार हम मारवाड़ की ओर से विहार करके लाडनू की ओर आ रहे थे। मैं तथा मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' आदि सात मुनि साथ-साथ थे। एक दिन का रात्रि का प्रवास 'बाटडी' गाव मे था। सर्दी का मौसम था। एक चौधरी के घर मे साफ-सुथरी 'साल' सोने के लिए मिल गई।

थके मादे थे, प्रतिक्रमण आदि करके शीघ्र ही सो गये। न जाने क्यो रात को लगभग एक बजे सातो ही साधु एक साथ 'हू-हू' की आवाज मे चिल्ला उठे। सब के सब जग तो पडे, पर भय से सब का सास भर गया था। कोई कुछ साफ बोल नही पा रहा था। कुछ देर तक सब यो ही भय की आवाज मे हांफते रहे। फिर हाफते-हांफते ही मैंने पूछा—यह क्या हुआ, क्यो हुआ, किसी को आभास भी हुआ है क्या ?

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने कहा—यह आवाज मेरे से आरम्भ हुई और तत्काल सबने साथ दिया। वजन मे ४-५ सेर की वस्तु ऊपर से मेरे पर आकर गिरी। मैंने हाथ का फटकारा दिया, जिसकी खरोच भी मेरे हाथ के लगी है। 'साल' मे अन्धेरा था। ऊपर से चीज गिरने का सबको आश्चर्य और भय हुआ। इस हू-हू की आवाज से घर के लोग भी जग गये। वे लालटेन लेकर आए। सारी साल को ऊपर से नीचे से देखा। कुछ नही ! हम लोगों ने घरवालो से पूछा—यहां कोई भूत-पलीत या देवी-देवता का चमत्कार तो नहीं है ? घरवालों ने सबने कहा—कतई नहीं, हमारे बच्चे भी इस कमरे में बहुधा सोते हैं, भय का कोई काम ही नहीं !

मैंने सब साधुओं से कहा—चलो बात खतम ! सब सो जाओ ! साधु लोग बोले—सो तो कैसे जाए ? यह तो चार-पांच सेर की वस्तु गिरी थी, अब दस-बीस सेर की भी गिर सकती है। अन्धेरा और सोना; ये दोनों बातें ही चलने वाली नही हैं।

हम सब काफी देर बैठे रहे। बाते करते रहे। अचानक मेरा ध्यान एक सम्भावना की ओर गया। मैंने घरवालो से पूछा—सायंकाल जब हम यहा आए थे, तब एक बकरी का बच्चा घर के आगन मे खुला घूम रहा था, वह अब कहा है ? घर के चौधरी ने आगन की ओर इसारा करते हुए कहा—वह तो यह रहा आंगन मे खुला घूम रहा है। मैंने कहा—बस, यही भूत-पलीत था। कपडे के 'पड़दे' को लाघ कर वह अचानक मुनि महेन्द्रकुमारजी पर कूदा है, जो कि ठीक दरवाजे के सामने सोए हैं। इन्होने हाथ का फटकारा मारा है और हाथ मे इसके पैर की खरोच आई है। अपने सब चिल्लाए तब वह पुन बाहर हो गया है। अस्तु, इसके सिवाय न कोई भूत है और न कोई पलीत ! यह बात सब को वाजिब लगी और सबका भय दूर हुआ। मैंने चौधरी से कहा—बकरी के बच्चे को खुला रखोगे तो फिर वही बात होगी। चौधरी ने उसे हलका-सा बांध दिया और हम सब आराम से रात-भर सोए। सवेरे उठे तब सभी ने कहा—होता तो अक्सर ऐसा ही है, निकल गया तो बहम नही तो भूत !

२ उसूल का सवाल

लखनऊ से हमने पटना चातुर्मास के लिए प्रस्थान किया। उस चातुर्मास मे मेरे सिवाय मुनि हसराजजी, मुनि मनोहरलालजी, मुनि मानमलजी, मुनि महेन्द्रकुमारजी 'द्वितीय', ये चार सन्त साथ थे। देश के विख्यात विद्वान् डा॰ भगवान्दासजी उन दिनो वही थे। वृद्ध थे, रुग्ण थे। पलग पर लेटे ही रहते थे। वे प॰ नेहरू के निकट सहयोगी श्री श्रीप्रकाशजी के पिता थे तथा कलकत्ता के मनोहरदास कट्टरा के मालिको मे से थे। उनसे भी वार्ता-प्रसग बना। उस सदर्भ मे दो बाते उल्लेखनीय व मनोरजक रही। पहली बात जो उल्लेखनीय थी, वह तो यह कि साधुओ के प्रति उनकी श्रद्धा। ज्ञान व श्रद्धा कैसे दूर-दूर रहती हैं, पर, उनमे वह युगपत् मिली। जिस दिन मिलना था, उसी दिन प्रात· हमारे एक प्रतिनिधि ने उनके परिवार वालो को सूचित किया—मुनिश्री नगराजजी आदि जैन सन्त सवेरे विश्वविद्यालय जायेंगे, आते समय डाक्टर साहब से बातें करेंगे। वैसे डाक्टर साहब शायद मुनिश्री के नाम से भी परिचित नही होगे। उनके आवास पर जाने का समय लगभग १०-११ बजे का बताया गया।

संयोग ऐसा बना कि वहां डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने परिचित विद्वानों को बुला लिया। एक अनौपचारिक चिन्तन—गोष्ठी-सी हो गई। फिर उनके आग्रह पर भोजन भी वही करना पडा। डा० भगवान्दासजी के यहां हम पहुचे तब लगभग तीन बज गए थे।

हमे आश्चर्य हुआ, तब तक घर के सब लोग भूखे बैठे हैं कि मुनिजनों को भोजन देकर ही हम भोजन करेंगे। बीमार व वृद्ध डा० भगवान्दासजी ने तो दवा तक नही ली। तीन बजे तक ऐसे रहना बडी परेशानी की बात थी। हम भोजन लेकर आए थे, फिर भी कुछ-कुछ वहा फिर लेना पडा। तब डा० भगवान्दासजी ने दवा और पथ्य ग्रहण किया। मुझे लगा, लोग कहते हैं, आधुनिक शिक्षा मनुष्य को धर्म से दूर करती है, पर, लगता है, आधुनिक नही, अधूरी शिक्षा मनुष्य को धर्म से दूर करती है। डा० राधाकृष्णन् की कोटि के विद्वान् और इतना श्रद्धा-भाव !

फिर हम वार्तालाप मे बैठे। मैंने कहा—आपका 'यूनिटी ऑफ ऑल रिलिजन्म' ग्रन्थ मैंने पढ़ा है। आपने बहुत सुन्दर लिखा है। किसी लेखक को अपना पाठक मिल जाए, तो कितनी खुशी होती है, यह मैंने उम दिन साक्षात् जाना। ऐसा लगा, डा० भगवान्दासजी रुग्ण से तत्काल अरुग्ण हो गये हैं। उन्होने खुशी मे बताना शुरू किया—आपने प्रथम संस्करण पढा है, द्वितीय सस्करण और पढें। उसमे मैंने बहुत कुछ नया जोडा है, पर, आजकल ऐसी पुस्तको के पाठक मिलते कहा हैं।

फिर मैंने जैन धर्म, तेरापथ, अणुव्रत आदि विषयो पर विस्तार से उन्हे जानकारी दी। वे लेटे-लेटे सुन रहे थे। समर्थन दे रहे थे। इस वार्तालाप को एक 'सरदारजी' पास बैठे सुन रहे थे। हमने उनसे कोई अलग से परिचय नही किया था।

वहा से उठकर हम चले। आधा मील ही चले होगे, अकस्मात् वे ही सरदारजी आ पहुचे। सब सन्तो के चरण छूए तथा मेरी ओर होकर कहा—आपका धर्म बहुत अच्छा है, पर, एक बात आपको मेरी माननी होगी। वह यह कि आप सब अपने मुख पर से ये पट्टिया उतार दे। स्वामीजी, अभी उतार दें, अभी उतार दें। सरदार जी की भावुकता देखकर हम दग थे। एक मिनिट मे उनको समझाए भी तो क्या समझाए। वे पैर पकडते रहे और एक हाथ मुखपति की ओर बढ़ाते रहे, जैसे अभी ये लोग उतार कर मुझे सौप देंगे। सडक का मामला था, कुछ लोग और भी जमा होने लगे, तमाशा देखने।

मैंने कहा—सरदारजी धर्म आपका भी बहुत अच्छा है, पर, एक बात

आपको भी माननी पड़ेगी । सरदारजी बोले—दसोजी (बोलीजी) । मैंने कहा – हम मुखपत्ति उतार देंगे, आपको यह दाढ़ी उतारनी पड़ेगी । यह सुनकर सरदारजी आवाक् से रहे । बोले—मुनिजी, यह तो नहीं हो सकता; क्योंकि यह उसूल का सवाल है। और बोले—बस, बस मैं समझ गया, मुख पर पट्टी रखना आपके भी उसूल का सवाल है। क्षमा करें, मैंने आपको कष्ट दिया ।

हम लोग हसी से ओत-प्रोत अपने गतव्य की ओर बढ़े ।

३ शेरों के भी सींग

दिल्ली का प्रथम वर्षावास समाप्त कर हम जयपुर जा रहे थे। अलवर से आगे शेरो का प्रसिद्ध जगल पडता है । अलवर की पहली मजिल मे ही रात को चीतो की आवाजे बार-बार सुनने को मिली। एक दिन का प्रवास 'सिरिस्का' मे था । उस दिन हम चारो सन्तो के साथ के भाइयो के मन मे यह धुन जगी कि जंगल मे चलता-फिरता शेर देखना है। 'सिरिस्का' की कोठी शेरो के लिए प्रसिद्ध है। वहा अलवर नरेशो द्वारा शिकार किए गए बीसो भयानक शेर केमिकल से सुरक्षित काच की आलमारियो मे वर्तमान थे। दोपहर का भोजन कर हम सब भयानक जगल के अदर निकल पडे । वहा भी गये, जहा शिकार करने के स्थान बने हुए थे। अस्तु, अब लगता है, वह लड़कपन ही था। एक भी शेर मिल जाता तो हमारे पास क्या बचाव था ? खैर, लगभग दो घण्टे के परिभ्रमण मे हमे भयानक जैसा कुछ नही मिला ।

वापिस कोठी पर आए। वहा के लोगों ने बताया—शेर देखना है तो यहा से तीन मील अन्दर जगल मे भर्तृहरि का स्थान है, वहा पानी का झरना है। आजकल तो मुख्यत' रात को वहा शेर पानी पीने आते ही है। वहां रात को रहने के लिए सुरक्षित मकान भी है । फिर क्या था, सबने वहा—आहार पानी करके आज का रात्रि-विश्राम वही किया जाये। मेरे स्वय के मन मे भीधुन थी । साय उस विकट व रमणीय स्थान पर चले गये ।

स्थान एक मजिल ऊपर का था, अत हम सर्वथा सुरक्षित थे। शेर यदि पानी के निर्झर पर आए तो ऊपर खडे रहकर आराम से देखा जा सकता था। पर, वहां भी कोई शेर देखने मे नही आया ।

सवेरे जब उठे तो हमारी मण्डली के एक सदस्य ने सिहो का झुण्ड देखने का दावा किया । वे थे पारखजी । वे कठोतिया परिवार से सम्बन्धित थे। भोले भाले भी थे और बातूनी भी थे। उन्होने बताया—आधी रात के पश्चात् मैं पेशाब करने

नीचे गया। जब पेशाब करने बैठा ही था, तब एक सिंहो का झुण्ड मेरे पास से गुजरा। एक सिंह ने तो अपना सर भी मेरी पीठ पर लगाया।

सुनने वालों के दिल मे यह बात जमी नहीं। किसी ने पूछ लिया—पारखजी, उन सिंहो के सींग कितने-कितने बडे थे ? तत्काल पारखजी ने अपने हाथ को लम्बा करते हुए कहा—कई शेरो के सीग तो इतने-इतने बडे थे। पारखजी का यह कहना था कि हम सब में हसी का फव्वारा फूट पडा। सब बोले, पारखजी खूब सिंह देखे, खूब सिंह देखे ! अस्तु, फिर उन्हे समझाया गया कि आप झूठ बोलने में भी कहां चुके हैं। कइयों ने कहा—पारखजी, झूठ बोलना भी तो कला है !

उपसहार मे मैंने कहा—चलो, शेर नही देखा, पर हम सबको उससे भी अधिक आनन्द पारखजी ने प्रस्तुत कर दिया।

४ आखिर खिड़की खुल गई

दिल्ली से जयपुर यात्रा मेरी एक ही बार हुई, पर, उसमे कई रोचक व भयावह प्रसग बन गये। उसी यात्रा मे जगल मे घूमता सिंह देखने की धुन मे एक रात्रि-प्रवास हमने एक शिव मदिर मे लिया। वह एक किले की तरह ऊंची व मजबूत दीवारो से बना है। अन्दर भी शिव मदिर के सिवाय भी काफी जगह है। मुख्य द्वार के बाहर बडा बरामदा भी है।

साय भोजन पानी से निवृत्त होकर प्रतिक्रमण के लिए हम बाहर ही बैठे। यह सोच कर कि कोई जंगली जानवर आया तो उसे दूर से ही देख कर ही अन्दर, चले जायेंगे। ज्यो-ज्यो अधेरा पडने लगा, कुछ अनजाने से जानवर दिखलाई दिए जिसे किसी ने नील गाय कहा, किसी ने 'जरख'।

यथा समय हम अन्दर आ गए। यथा स्थान सो भी गये। उस समय जयपुर व दिल्ली के मिलाकर कुल २५-३० भाई हमारी सेवा मे थे।

रात मे मन्दिर का आदमी वहा कोई नही रहता। पुजारी साय कहता गया, ताला मैं खुला छोड़ता हू, सवेरे आप जब जाए, इसको जरा दबा देना, स्वत. बन्द हो जायेगा। अस्तु, सोते समय सब अपने-अपने काम मे लग गये, पर, जिस भाई ने दरवाजा बन्द किया, उसने उसे दबा भी दिया। ताला पुराने जमाने का था, बड़ा मजबूत।

सवेरे तीन-चार बजे लोग उठे। हल्ला मचा—चाबी, चाबी ! पर, तत्काल भूल समझ मे आ गई। यह भी समझ मे आ गया, हम सब किले मे बन्द हो गये हैं। उपाय सोचने लगे। पीछे एक खिड़की थी, पर, पत्थरो-शिलाओ व भाटो से इतनी जबरदस्त पैक की हुई कि उसका खुल पाना असम्भव लगा।

फिर सोचा गया, धोतियो का मोटा रस्सा बनाकर एक-दो आदमियो को नीचे उतारा जाये। दो-तीन मील पर पुजारी का गाव है, वहां से चाबी ले आएं। रस्से की व्यवस्था हो गई। कुछ लोगो ने कहा— पहले हम उतरेंगे, पायखाने की जल्दी हो रही है। शिव मन्दिर मे ऐसा कोई स्थान था नही। अस्तु, पहले उन्हे उतारा। पीछे-पीछे पुजारी के गाव जाने वाले बहादुरो को। हम प्रतिक्रमण मे लगे। अब स्थिति ऐसी हो गई कि कुछ लोग बाहर, कुछ अन्दर। तब तक पुजारी के गांव जाकर आने वाले भी वापिस आ गए। वहा से जानकारी मिली—पुजारी चाबी लेकर पी अन्यान्य गाव चला गया है।

ताले को खोलने का भरसक प्रयत्न किया, पर, सब विफल। अब हम लोग भी तथा श्रावक भी खिडकी पर आए। तब तक सूर्य निकल चुका था, प्रकाश फैल गया था। खिडकी की किला-बधी को देखकर सब चकराए। फिर भी अपनी-अपनी सूझबूझ व अपनी-अपनी ताकत अजमाने लगे। काफी देर प्रयत्न चला, पर अन्त मे सब निराश ! पुजारी के आने का कोई निश्चित समय नही। अन्त मे सब लोग खिड़की से हार कर सब हट गये। केवल मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' अपनी दृढ़-निष्ठा से उसमे लगे रहे। लगभग घण्टा भर से भी अधिक वे अपने श्रम व भाग्य को अजमाते रहे। उन दिनों दिल्ली के कामो मे उनका सितारा बुलदी पर था। आखिर, उन अकेलो ने ही कहा—खिडकी खोल दी। बात ऊपर आई तो सब लोग दौड कर नीचे आये। देखा, बाहर निकलने का मार्ग निष्कटक है। सब लोग एक साथ ही बोलने लगे—मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी की जय, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी की जय।

मैंने उनसे पूछा—आखिर यह असम्भव सम्भव हुआ कसे ! मुनि महेन्द्र-कुमारजी ने बताया कि पत्थरो की उठा-पटक करते-करते ध्यान मे आया, जहा भाले की नोक खिडकी मे गाडी है, वह तो आखिर लकडी ही है। बस, मैंने पूरा जोर लगाकर भाले को बीच से ऊपर को खीचा। आखिर कपाट की लकड़ी चर्र बोल गई। मैंने आराम से कपाट खोल दिये।

लोगो ने कहा—यह तो चम्पा नगरी का दरवाजा ही खुला है। सती सुभद्रा के सिवाय किससे खुलता !

५ लुधियाना की 'ज्ञान गुदड़ी' मे

सन् १६५१ के लुधियाना चातुर्मास मे ज्ञान गुदडी' का एक अनोखा सस्मरण बना। उस चातुर्मास मे मेरे पास मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम', मुनि मानमलजी,

मुनि हस्तीमलजी व मुनि हर्षचन्द्रजी आदि चार सन्त थे। साध्वीश्री मोरांजी आदि ठा० ५ का चातुर्मास भी वहीं था। आचार्यश्री के वहां उस वर्ष का वर्षावास लुधियाना में नहीं दे पाने के कारण यह व्यवस्था की गई थी।

दशहरा का मेला वहा परम्परागत है। एकम से दशम तक बड़े मैदान में बडे ठाट से लगता है। उन्ही दिनो परम्परागत एक 'ज्ञान गुदड़ी' मेले के कोला-हल से दूर वृक्षों की ढलती छाया मे लगती है। उसमें धार्मिक प्रश्नोत्तर चलते हैं। हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान आदि विभिन्न धर्मों के लोग भाग लेते हैं। एक प्राज्ञ पण्डित बीच मे बैठता है और 'ज्ञान गुदडी' का सचालन करता है, उन दिनो पण्डित हसराजजी उसका सचालन किया करते थे। वास्तव मे ही वे विद्वान् व गम्भीर व्यक्ति थे। परम शास्त्रवेत्ता आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज के साथ वे जैन सूत्रो के अनुवाद मे भी हाथ बटाया करते थे।

वह परम्परागत ज्ञान गुदड़ी कार्यक्रम मुझे अच्छा लगा। कोई विज्ञापन नही, कोई अतिरिक्त व्यवस्था नही। सभी आगन्तुक स्वच्छ धूलि-आंगन मे गोला-कार बैठो और सयोजक के निर्देशन पर प्रश्नोत्तर चलाते रहो। हम पाचो ही साधु युवक थे। तमन्ना जगी, ज्ञान गुदडी मे भाग लेना चाहिए। स्थानीय श्रावको ने विशेष समर्थन नही दिया, पर, हम सब चले गये। हम जन मुनियो को देखकर सब लोग विस्मित हुए, क्योंकि ज्ञान गुदडी के इतिहास मे वह पहला ही मौका था। प० हसराजजी ने उठकर हमारा सम्मान किया एव अपने बराबर ही बठने का विनम्र अनुरोध किया। कुछ देर तक हम देखते रहे, कैसे प्रश्न होते हैं व कैसे उतर दिया जाता हैं। सयोजक ही प्रश्नकर्त्ता खडे लोगो मे से किसी एक को प्रश्न रखने का कहते। उत्तर कौन देगा, यह प्रश्नकर्त्ता ही किसी विज्ञ-विशेष से अनु-रोध करता।

हमे उपस्थित देखकर अधिकाश प्रश्न हमारी ओर ही आने लगे। उत्तर देने मे व प्रतिप्रश्न रखने मे हम पाचो मे कोई कमजोर नही था। खूब रग जमा। प्रश्न अधिकाशतया जैन धर्म व तेरापथ पर ही सीधे आ रहे थे। मुख्य प्रश्नकर्त्ताओं मे दिग्गज सनातनी व आर्यसमाजी थे। हमे देखकर कुछ एक जैन बन्धु 'चूहे-बिल्ली' व 'गाय के बाड़े' पर भी उतर आए।

उत्तर युक्ति-पुरस्सर हो रहे थे। आम जनता का उन साम्प्रयिक प्रश्नों से लगाव नही था; अतः हमारे उत्तरो को आम जनता भी समर्थन देती रही। प० हसराजजी इस रहस्य को समझते थ। उन्होने जनता के रुख को मोड़ना चाहा, पर, हमने सफलता नही मिलने दी।

यथा समय हम अपने स्थान पर आए। अगले दिनो मे भीआने का पण्डितजी

का आमन्त्रण हमने स्वीकार कर लिया। तीन दिनों तक कुलाहल चर्चाएं चलीं। वातावरण मे बहुत ही सरसता रही। सभी लोग हम युवक मुनियो की तर्क-प्रतिभा से प्रभावित थे।

हमारा लक्ष्य तनिक भी साम्प्रदायिक प्रश्नों का नहीं था, पर, जो भी वातावरण अनायास बना, कम-से-कम जैनियो में तो यही थी, तेरापंथी साधुओं ने ही अपने 'चूहे-बिल्ली' के व 'गायो के बाड़े' के जैसे प्रश्न भी ज्ञान गुदड़ी मे हल करवा लिए। सर्व साधारण पर प्रभाव भी यह तो था ही कि जैन साधुओं के आने से इस वर्ष की ज्ञान गुदड़ी बहुत ही सार्थक व सरस रही। अस्तु, इस सस्मरण मे हार-जीत का कोई सवाल नही था और न आज भी है, केवल प्राचीन परिभाषाओं, प्राचीन प्रश्नो एव ज्ञान गुदडी के प्राचीन क्रम को तरोताजा करने के लिए उक्त सस्मरण लिख दिया गया है।

—•—

परिशिष्ट

—ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी

[उक्त परिशिष्ट मे मुनिश्री मानमलजी के कतिपय लेख दिये जा
रहे हैं। यह लेख इस पुस्तक के पूरक रूप होने के साथ-
साथ ऐतिहासिकता व रोचकता की दृष्टि से भी
महत्त्वपूर्ण है। समय-समय पर लिखे गये
प्रस्तुत लेख दैनिक एव साप्ताहिक
पत्रो मे भी प्रकाशित होते
रहे हैं।]

श्रीमती गांधी का मुनिश्री के प्रति कितना समादर था

मैंने अपने लगभग २० वर्षों के सम्पर्क में स्व० प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाधो को अनेक आयामो से जाना, परखा। वे अपनी विरल विशेषताओ से विश्व-मान्य हो रही थी, यह तो सर्वविदित है, पर मेरे व उनके बीच मे मुख्य आयाम साहित्य, सस्कृति व सन्त ही थे। साहित्य मे उनकी कितनी रुचि थी, सस्कृति को वह कितना समझती थी, और सन्तजनो के प्रति उनके मन मे कितना मान था, यह सब मै हाल ही के एक घटना-प्रसग से अभिव्यक्त करना चाहूगा।

३१ अक्टूबर को उनका शरीरान्त हुआ। इससे केवल ६ दिन पूर्व २५ अक्टूबर का ही यह वार्ता-प्रसग है। राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० द्वारा सस्थापित 'राष्ट्रीय एकता समिति' का उद्घाटन समारोह उनके निवास स्थान पर ही था। उनके निवास परिसर मे दो कोठिया हैं। एक मे उनका पारिवारिक परिवास होता था, दूसरी मे वे आगन्तुक लोगो से मिलती थी तथा बडे-बडे कार्यक्रम भी वहा लेती थी। दोनो कोठियो के बीच बहुत ही छोटा-सा परिसर पडता है।

हम लोगो के साथ उस दिन लगभग १५० स्त्री-पुरुष थे। ठीक दूसरी कोठी के सामने ही कार्यक्रम होना था। प्रधानमन्त्री अपने आवास परिसर को पार करती (यह वही परिसर था, जहा ३१ अक्टूबर को उन्हे गोलिया मार दी गई) हम लोगों की ओर आई। सर्व प्रथम उन्होने प्रणत्ति पूर्वक मुनिश्री नगराजजी व हम सन्तो का अभिवादन किया। खड़े-खडे ही कुछ सामयिक प्रश्नो पर बाते हुई।

सन्तजनो के प्रति उनकी सहज श्रद्धा थी, पर, मुनिश्री नगराजजी के प्रति उनका विशेष ही श्रद्धाभाव था। उनके उद्घाटन भाषण के अनन्तर ही मुनिश्री

का सम्भाषण था। वे कुर्सी से खडी होकर बोली थीं, अत मुनिश्री भी सम्भाषण के लिए खड़े हुए। प्रधानमन्त्रीजी ने मुक्त स्वर से कहा—नहीं, आप बैठकर ही बोलें।

कुछ ही क्षणो पश्चात् मुनिश्री ने अपने भाषण मे जब कहा, समय सब के लिए निर्धारित है, अत मैं भी । इन्दिराजी बीच ही मे स्मित भाव के साथ बोली—आपके लिए कोई सीमा नही है, आप चाहे जितना बोले। अस्तु, उक्त दोनो प्रसगो से हम सबने जाना, प्रधानमन्त्री सत-समादर मे कितनी जागरूक हैं !

मुनिश्री ने अपने भाषण मे प्रसगोपात्त जैन सस्कृति की बात कही—जैन समाज पर भगवान् महावीर के आदर्शों का प्रभाव है। उनके लिए हिंसक कारनामो की तो बात ही कोसो दूर है। वह नारेबाजी व हुल्लडबाजी के जुलूसो मे भी कभी आगे नही आता। इन्दिराजी की ओर सकेत करते हुए मुनिश्री ने कहा—आप भी मानती होगी न कि जैन समाज ही आपको सबसे कम तग करता है। प्रधानमन्त्री मुक्त हास्य के साथ बोली—हा, यह आप ठीक ही कह रहे हैं।

उस दिन के कार्यक्रम का दूसरा पहलू था—साहित्य-विमोचन। सर्व प्रथम अभिधान राजेन्द्र कोश (जैन इन्साइक्लोपीडिया) का विमोचन हुआ। वह मागधी से सस्कृत का सात खण्डो मे विशालकाय कोश था। लगभग दश हजार पृष्ठो का यह प्रकाशन कार्य देखकर तो इन्दिराजी पुलकित हो रही थी। उसके प्रकाशक श्री नौरग रायजी (लोगोस प्रकाशन) से विस्मय भरी भाषा मे बोली—इतना सुन्दर व विशाल प्रकाशन आपने किया है ?

उक्त महाग्रन्थ को वह काफी देर तक उलट-पुलट कर देखती रही व सम्बन्धित जानकारी मुनिश्री नगराजजी से लेती रही।

तदनन्तर मेरी कथा-कृति व मुनि मणिकुमारजी की काव्य-कृति का विमोचन भी उन्होने किया। विमोचन की बात सामान्य थी, पर, प्रत्येक पुस्तक को वह जिस उत्सुकता से देखती थी, जिज्ञासा करती थी, वह उनके अत्यधिक साहित्य-प्रेम का सूचक था। अस्तु, इन्ही सब कारणो से २० मिनट का निर्धारित कार्यक्रम लगभग ४५ मिनट तक चला। मैं समझता हू, वह उनके जीवन की अन्तिम धर्म-सभा थी और उसमे भी महावीर के आदर्शों की चर्चा करते हुए जो धर्म व सद्भाव का सदेश उन्होंने दिया, वह भी उस रूप मे अन्तिम था।

कार्यक्रम के अनन्तर मुनिश्री के साथ एकान्त वार्तालाप का कार्यक्रम था। हम दोनो मुनि भी साथ थे। मुनिश्री से बात करने मे वह इतनी खुल रही थी कि

जैसे अपने दिल के एक-एक प्रतर खोलने के लिए उपयुक्त समय व व्यक्ति पा लिये हों' '। लगभग ४५ मिनट तक यह वार्तालाप चलता रहा, जबकि बाहर सैंकड़ो लोग उनका एक-आध क्षण का समय पाने के लिए प्रतीक्षारत थे। अस्तु, उक्त घटना-प्रसगों से हम भलीभांति ममझ सकते हैं कि स्व० प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के मन मे श्रद्धेय मुनिश्री नगराजजी के प्रति कितना समादर था।

—०—

आत्मीय भाव का एक निरुपम दिग्दर्शन

(राष्ट्रपति भवन के अवधान-प्रयोगों की भूमिका)

उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' लगभग ११ वर्ष की आयु मे अपने पूज्यपाद मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० के सान्निध्य मे आये। लगभग ४८ वर्ष की आयु मे उनके हाथो मे ही चले गये। मै स्वय भी दीक्षित होकर मुनिश्री के पास आया और आज ४० वर्ष के पश्चात् भी उनके सान्निध्य मे हू। उपाध्यायश्री व मुनिश्री के एकात्मभाव का साक्षात्-द्रष्टा जितना मैं हू, उतना कोई अन्य कैसे होगा ? हम सब जानते है, उपाध्यायश्री अपने ही चिन्तन व विचार के व्यक्ति थे। उनका निर्णय भी इतना अटल होता कि किसी के भी आग्रह-दबाव से वह बदलता नही। इस विषय मे उनके कोई अपवाद थे, तो मुनिश्री नगराजजी ही थे। वे वितर्क भी करते, अपने निर्णय की यथार्थता भी बताते, फिर भी मुनिश्री का चिन्तन भिन्न रहता, तो उसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार करते। मुनिश्री की बात उन्होने कभी टाली हो, ऐसा स्मृति का विषय नही है। सच बात तो यह है कि मुनिश्री सूझबूझ के अधिकारी थे और वे साहस के। उक्त दो विशेषताओ का युति-योग ही उनके जीवन की महान् उपलब्धियो का उपादान रहा। मुनिश्री की दुरूह कल्पना को भी उनका साहस मूर्तरूप से खडी कर देता। दोनो की सिद्धिया अन्योनाश्रित रही हैं।

पूज्यपाद मुनिश्री की सूझ-बूझ व उपाध्यायश्री के प्रति रही वात्सल्य-भावाना का एक उदाहरण है--बम्बई चातुर्मास मे उन्होने अवधान शुरू किये। मुनिश्री के सान्निध्य मे एक साथ १०० अवधान प्रस्तुत कर जन समुदाय को भाव-विभोर कर दिया।

बम्बई चातुर्मास के पश्चात् हम लोग विहार करके मेवाड पहुचे। भीलवाडा मर्यादा-महोत्सव था। उन्ही दिनो वहा अवधान-प्रयोग का एक कार्यक्रम बना। भाई-बहिनो व सन्त-सतियो मे धारणा बनी, यह अवसर मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

को मिलेगा; क्योंकि नये अवधानकार होकर आये हैं। सब मे उनके अवधान-प्रयोग देखने की समुत्सुकता भी थी। इस महज स्थिति की अवगणना कर यह अवसर दिया गया किसी अन्य अवधानकार को। वातावरण मे अद्भुत-सी बात लगी। खिन्नता व निराशा का-सा वातावरण बना तथा उपाध्यायश्री भी युवक थे, २४-२५ वर्ष के। इस अवगणना का उनके मन पर भी कुछ असर होना स्वाभाविक था। मुनिश्री ने उनके मन को भापा और कहा—"क्यो खिन्न होते हो, अवसर आने दो सब कसर निकल जावेगी।" सयोगत. उसी वर्ष का वर्षावास दिल्ली का निश्चित हुआ। मुनिश्री के मन मे बात घूम रही थी। दिल्ली पहुंच कर हम लोगो ने पूछा—"इस बार दिल्ली-प्रवास की हमारी विशेष दिशा क्या होगी ?" मुनिश्री ने तत्काल कहा—"इस बार हमारी विशेष दिशा होगी—अवधान प्रयोग।" हम लोगो ने कहा—"यहा 'अवधान' शब्द से ही लोग अज्ञात हैं। यहां तो विधान की झगडाबाजी से लोग फुरसत नही लेते। न यहा अतीत मे कोई अवधान-प्रयोग हुआ होगा। यहा इस विद्या को कौन-क्या समझेगा ?" मुनिश्री ने हमें योजना व रूपरेखा समझाई। हम लोग व कार्यकर्त्ता तदनुसार जुट गये। उसी वर्ष एक-एक करके तीन अवधान-प्रयोग दिल्ली मे हो गये। प्रथम पुरानी दिल्ली के दरबार हॉल मे, दूसरा वोट क्लब मे और तीसरा तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद के आवेदन पर राष्ट्रपति भवन मे। दिल्ली की जनता, पत्रकार, आकाशवाणी-विभाग सभी अप्रत्याशित रूप से सक्रिय हो गये। कार्ड-प्रवेश की व्यवस्था मे भी भीड पर नियन्त्रण पाना कठिन हो गया। मन्त्रियों, ससद सदस्यो को भी कठिनता से देखने का अवसर मिला। देश भर की पत्र-पत्रिकाओ मे मुख्य विषय अवधान हो गया। सपादकीय, इण्टरव्यू, गौरवपूर्ण टिप्पणिया धड़ाधड़ प्रकाशित हुई। विदेशी समाचार पत्रो का भी विषय बना। प० जवाहरलाल नेहरू, डा०एस० राधाकृष्णन् जैसे मेधावी लोग भी नत-मस्तक हुए। अस्तु, राष्ट्रपति भवन के प्रयोग के पश्चात् मुनिश्री ने हम लोगो को कहा—"अब मेरा काम पूरा हुआ। मै अवधान-विद्या व अवधानकर को जहा तक पहुचाना चाहता था, मैंने पहुचा दिया। अवधान विद्या, जो समाज विशेष तक सीमित हो रही थी, आज वह सारे देश का विषय बन गई। मुनि महेन्द्रकुमारजी से तो मैं इतना ही कहना चाहूगा, जहा अवगणना हुई, वहा तुम अवधान-प्रयोग दिखलाने की चाह मत रखना। न वह अब तुम्हारे लिए महत्व की बात रही है। मनुष्य को सदैव अपने भाग्य व पुरुषार्थ पर भरोसा रखना चाहिए। दीनता से प्राप्त उपलब्धि अभिशाप है।" अस्तु, मुनिश्री कम बोलते हैं, सदैव सहज स्थिति मे रहते हैं। उस दिन हम दोनो ने पहली बार उनमे बठे विराट् व्यक्तित्व को देखा। उपाध्यायश्री आगे

चलकर तो देश के जाने-माने अवधानकार बन गये ही। जहा अवधान नही करना था, वहा कभी भी अवधान न करके उन्होंने स्वय को ही गौरवान्वित माना। उपाध्यायश्री की एक क्षण की खिन्नता ही मुनिश्री के वात्सल्य भरे मानस को कितना सक्रिय बना देती, इस घटना-प्रसग से यह भली-भाति स्पष्ट हो जाता है।

आश्चर्य का विषय तो यह है कि पूज्यपाद मुनिश्री व उपाध्यायश्री का क्षेत्र एक था। साहित्य-लेखन आदि जीवन की सभी दिशाए एक थी। जीवन का अधिकाश समय साथ-साथ कटा, पर कभी कोई टकराव नही, ईर्ष्या नही, स्वार्थ-भाव नही। ऐसा विलक्षण एकात्मक-भाव विरल ही मिलता है। ऐसा तभी फलित हो सकता है, जब दोनो ही व्यक्तियो के दिल व दिमाग विशालता के विशेष तत्त्व से बने हों।

उपाध्यायश्री के मन मे भी दिन-रात यही चिन्तन चलता, पूज्यपाद मुनिश्री के लिए मैं क्या कुछ कर सकता हू, जो मेरी उऋणता का कण बन सके। कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री जुगलकिशोर ने जयपुर मे उपाध्यायश्री के दर्शन किये। वे उपाध्यायश्री के पूर्व-परिचित थे। उन्होने बताया, मैं शिक्षामत्री से उप कुलपति बन गया हू। मेरे योग्य कोई सेवा ? उपाध्यायश्री ने सुझाव दिया, मुनिश्री के व्यक्तित्व एव उनकी साहित्य साधना से तो आप परिचित ही हैं, उन्हे 'डी० लिट्०' की उपाधि से सम्मानित करिये, एक नया इतिहास बनेगा। आपका विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित होगा। बस, एक बार का इतना-सा सुझाव कारगर हो गया। कुछ ही दिनो पश्चात् देश भर के दैनिक पत्रो मे पढ़ने को मिला—कानपुर विश्वविद्यालय ने अपने दीक्षान्त-समारोह मे साहित्य-सेवा के उपलक्ष मे मुनिश्री नगराजजी को 'डी० लिट्०' की उपाधि से सम्मानित किया है। मुनिश्री तो उस समय बम्बई मे थे। सब कुछ सहज रूप से सम्पन्न हो गया। ऐसे थे, लक्ष्यबेधी उपाध्यायश्री। मुनिश्री को वे कितना महान् मानते थे, इसका एक और प्रमाण है—उनके द्वारा लिखित परिचय-पुस्तिका—"सागर मे से गागर"

—०—

श्री सुखाड़ियाजी का मुनिश्री नगराजजी के प्रति कितना श्रद्धा-भाव

सुहृदय व्यक्ति अनेक लोगो को अपने सौहार्द मे बाध लेता है। दो सुहृदय व्यक्तियो का ससर्ग कही हो जाता है तो सौहार्द का एक अनोखा ही रग खिल जाता है। राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० एव राजस्थान के मुख्य-मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाडिया का पारस्परिक सौहार्द ठीक वैसा ही था। श्री सुखाडियाजी के श्रद्धा-प्रसगो का ब्यौरा बहुत विस्तृत है, पर प्रस्तुत लेख मे मैं सक्षेपत उसका दिग्दर्शन करा देना चाहूँगा।

प्रथम सम्पर्क

श्री सुखाडियाजी से मुनिश्री का प्रथम सम्पर्क सन् १९६७ मे आकस्मिक ढग से हो जाता है। राजस्थान की राजधानी जयपुर मे उस समय राजनैतिक असमजसता पैदा हो रही थी। सरकार काग्रेस की बने या सयुक्त दल की, इसी विवाद को लेकर गोलिया तक चल गई थी। कतिपय लोग मर भी गये थे। वातावरण तनाव पर था। मुनिश्री उस समय राजनैतिक स्तर पर शान्ति-प्रयत्न मे लगे तो विभिन्न दलो के सभी राजनैतिक प्रतिनिधियो से मिलने के क्रम मे श्री सुखाडियाजी का नाम तो प्रथम पक्ति मे था ही।

तत्कालीन राज्यपाल डा० सम्पूर्णानन्द भी भयकर रूप से विवादग्रस्त बन चुके थे। राज्यपाल भवन से उनसे अपेक्षित बात कर मुनिश्री लौट रहे थे, बीच ही मे श्री सुखाडियाजी की कोठी पडती थी। समय पहले निर्धारित नहीं था, पर, मैंने आगे जाकर उनसे ज्यो ही कहा—मुनिश्री नगराजजी आपके यहा पधार रहे हैं। हालाकि उस समय वह बहुत व्यस्त थे, विधायको से घिरे बैठे थे, पर, सवाद सुनते ही तत्काल मुनिश्री की अगवानी मे बाहर आ गये। इससे पूर्व वे मुनिश्री से कभी मिले नही थे, पर दिल्ली के समाचार पत्रो के माध्यम से वे उन्हे यथावत

जानते थे। श्री सुखाड़ियाजी के जीवन की वह विषम वेला थी, पर उस दिन के समसामयिक वार्तालाप से ही दोनों महानुभावों का एक सनातन अनुबन्ध हो गया। फिर तो मिलने का क्रम चालू ही रहा। मुनिश्री का वह शांति-प्रयत्न कितना सफल रहा, यह इस लेख का विषय नहीं है। इस विषय में तो इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि जयपुर के दैनिक पत्रों ने उस शान्ति-प्रयत्न को लेकर रामराज्य व वशिष्ठ से मुनिश्री की तुलना की। अस्तु, हमारा वह चातुर्मास सी-स्कीम में ही श्री मन्नालालजी सुराणा के निवास में था। चातुर्मास में ही २-३ बार मुख्यमन्त्री श्री सुखाड़ियाजी मुनिश्री के दर्शनार्थ भी वहां आये। राजस्थान विधान सभा में अणुव्रतों के समर्थन का प्रस्ताव पारित हो, यह विषय मुनिश्री ने उनके पास चालू कर दिया था। मुनिश्री भी उनके यहां पधारने में संकोच नहीं करते। उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती इन्दुबाला का एक्सीडेंट हो गया था, घुटने की हड्डी टूट गई थी, तब मुनिश्री समय-समय पर उन्हें दर्शन देते व मंगलपाठ सुनाते। श्रीमती इन्दुबाला भी मुनिश्री के इस अनुग्रह से बहुत कृतज्ञ थी।

विधान सभा में अणुव्रत प्रस्ताव

श्री सुखाड़ियाजी ने अणुव्रत प्रस्ताव के विषय को भी गम्भीरता से लिया था तथा उसे यथाक्रम आगे बढ़ाने का मार्ग भी सुझा दिया था। क्योंकि मुनिश्री चाहते थे, प्रस्ताव पारित हो तो सर्वसम्मति से हो। श्री सुखाड़ियाजी के कथनानुसार हम लोग अन्य दलों से सम्बन्धित विधायकों व प्रतिनिधियों को भी सहमत करने में जुट गये थे। सफलता मिल ही रही थी। श्री भैरोंसिंह जी शेखावत आदि विपक्ष के नेता भी इस कार्य में सक्रिय सहयोगी हो गये थे। श्री सुखाड़ियाजी के अपने ही कुछ लोग अटकाव करने में लग गये थे। इससे श्री सुखाड़ियाजी के सामने धर्म संकट उपस्थित हो गया था, पर अन्ततोगत्वा उन्होंने मुनिश्री की ही बात को प्रधानता दी और यथासमय यथोचित ढंग से अणुव्रत प्रस्ताव पारित करवा दिया। कहना चाहिए, देश भर में अब तक वह पहला कार्य है, जो श्री सुखाड़ियाजी के नेतृत्व में राजस्थान विधान सभा ने किया।

तीन बड़ों का सम्मेलन

इसी वर्षावास में अन्तिम दिनों तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री मोरारजी देसाई का रात्रि भर के लिए जयपुर आगमन हुआ। श्री मोरारजी भाई की भावना व श्री सुखाड़ियाजी की व्यवस्था के अनुसार मुनिश्री व हम लोगों का उस दिन का रात्रि-प्रवास मुख्यमन्त्री भवन में ही रहा। सायं से सुबह तक तीन बड़ों का मिलन

मनिश्री के ही कक्ष मे हुआ। देश की राजनीति मे उस समय नया ज्वार आ रहा था। कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी बने या सुखाडियाजी, आदि ज्वलन्त विषय थे। मुनिश्री के प्रति दोनो ही महानुभाव समान श्रद्धा रखते थे। अत' समस्त बातें दोनों ने मुनिश्री के समक्ष ही कीं। रात १० बजे से १२ बजे का समय गम्भीर विचार-विनिमय का था। मुनिश्री भी अपनी आध्यात्मिक मर्यादा व देश-हित की सीमा को समझते हुए विचार-चर्चा मे भाग ले रहे थे। सचमुच ही तीन बड़ों की विचार-चर्चा का का वह एक ऐतिहासिक प्रसग था।

विदाई कार्यक्रम मेरे यहां से ही

चातुर्मास के पश्चात् भी काफी दिनो तक मुनिश्री का विराजना जयपुर ही रहा। अणुव्रत प्रस्ताव पारित होना था, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ठा० ३ भी एतदर्थ जयपुर आ चुके थे कलकत्ता से मुनिश्री धनराजजी ठा० ३ भी वहा पहुच चुके थे। चैत्र-बैसाख तक वहा से मुनिश्री का अहमदाबाद के लिए विहार होना था। कार्यकर्त्ता विदाई कार्यक्रम मे भाग लेने हेतु आमन्त्रित करने मुख्यमन्त्री श्री सुखाडियाजी के पास गये तो उन्होने कहा—मुनिश्री का विदाई कार्यक्रम मेरी ओर से व मेरे यहा से क्यो न रख लिया जाये। प्रतिनिधि श्री पन्नालालजी बाठिया ने कहा—आप की ओर मे तो पूरे राजस्थान की विदाई है। मुनिश्री को जाना भी गुजरात है, अतः यह तो सर्वोत्तम ही होगा।

कार्यक्रम यथाविधि आयोजित हुआ। कार्ड आदि छपे तो निवेदक मे एकमात्र नाम श्री सुखाडियाजी का ही रहा। समय रात्रि-कालीन था, अत. साय ही हम सभी १० सन्त उनकी कोठी पर पहुच गये थे। रात्रि-प्रवास वही होना था और अगले दिन प्रात वहा से गुजरात के लिए प्रस्थान होना था। तेरापथ समाज मे भी इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम को लेकर भारी उत्सुकता थी। यथासमय कार्यक्रम निर्धारित प्रकार से सम्पन्न हुआ। श्री सुखाड़ियाजी व अन्य वक्ताओ ने मुनिश्री के जयपुर प्रवास को ऐतिहासिक महत्व का बताया।

अगले दिन प्रात श्री सुखाडियाजी व श्रीमती इन्दुबालाजी ने 'गोचरी' करवाई। श्री नेमीचन्दजी गधैया आदि समागत भाई-बहिनो की भी भरपूर आवभगत की। तदनन्तर वहा से विहार हुआ तो श्री सुखाडियाजी व श्रीमती इन्दुबालाजी ३-४ फर्लांग तक पैदल ही सर्वसाधारण के साथ-साथ चले। वापिस मुड़े तो मगलपाठ सुना। उस समय उनका हृदय गद्गद् था, बोले—मुनिश्री! उदयपुर मे तथा अहमदाबाद मे भी आपके दर्शन कर सकू, ऐसा आशीर्वाद दे।

उदयपुर में

हम लोग जयपुर से भीलवाडा, गगापुर होते हुए उदयपुर पहुचे। श्रीमती इन्दुबालाजी ने खबर मिलते ही अपने निवास स्थान पर ठहरने का निवेदन किया। स्थान शहर से दूर था, अत केवल एक दिन ही हम लोगो का वहा रहना हुआ। श्रीमती इन्दुबालाजी का श्राविकाओं-जैसा गोचरी-पानी का उपयोग देख कर हम विस्मित हुए। उस दिन पूरे परिवार ने ही कच्ची-पक्की 'लिलोती' नही खाई। उन्होने बताया—बचपन मे जैन साधुओ से मेरा काफी सत्संग रहा है। श्री सुखाडियाजी कार्यवश उस समय उदयपुर नही पहुच सके।

हम लोग अहमदाबाद पहुंच गये। श्री सागरमल शुभकरण के यहां चातुर्मासिक प्रवास हुआ। आश्विन मास के लगभग श्री सुखाडिया जी दर्शनार्थ अहमदाबाद आये। सागर सदन मे ही एक दिन एक रात रहना हुआ। गुजरात के मुख्यमंत्री श्री हितेन्द्र देशाई भी उनके सम्मान मे वहा आये। दोनो मुख्यमत्रियो ने मुनिश्री की एक साथ सेवा की तथा गुजरात विधान सभा मे भी अणुव्रत-प्रस्ताव पास करने की बात मे श्री हितेन्द्र भाई को सहमत किया। पर, कुछ ही दिनो पश्चात् हम लोगो का विहार बम्बई वर्षावास के लिये हो गया, अत वह बात वही रह गई।

बम्बई प्रवास मे 'डी० लिट्०' की उपाधि से सम्बन्धित अनेको महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए। बम्बई वर्षावास के पश्चात् दिल्ली वर्षावास का आदेश हमे आचार्यश्री से मिला। अहमदाबाद होकर उदयपुर आये तो इस बार श्री सुखाडिया दम्पत्ति ने तेरापथी भवन मे समायोजित कार्यक्रम मे भाग लिया। अगले दिन विहार मे पुन दर्शन किये और कहा—इन्दुबाला ने कहलाया है तथा मैं भी निवेदन कर रहा हू कि हमारे लडके के विवाह-प्रसग पर आपको जयपुर ही रुकना है! मार्ग व तिथियो के अनुपात से वह बात सहज सभव ही थी। मुनिश्री का उस प्रसग पर जयपुर ही ठहरना हुआ। विवाह-प्रसग पर राष्ट्रपति आदि लोगो का भी आगमन होना था। इस व्यस्तता मे भी मुनिश्री के जयपुर पहुचने के दिन ही श्री सुखाडियाजी ने ग्रीन हाऊस मे समायोजित स्वागत कार्यक्रम मे भाग लिया।

विवाह के अगले दिन ही रविवार के व्याख्यान मे कुछ दिन पूर्व विवाहित लडकी व जामाता को तथा नव-विवाहित पुत्र व पुत्र वधू को श्री सुखाडियाजी मुनिश्री से मगलपाठ सुनवाने ग्रीन हाऊस मे लाये। अस्तु, ये सारे प्रसग महज औपचारिकता के नही, अपितु हार्दिक श्रद्धा भावना के थे। मदिर व धर्म स्थान जयपुर मे और भी बहुत थे, पर उन्होने मुनिश्री को ही अपने मागलिक विधान के लिए चुना।

मुनिश्री के दिल्ली पहुचने के पश्चात् रायपुर-प्रकरण मे उन्होने कितना

सहयोगात्मक रुख रखा, वह सर्वविदित ही है। यहा तक कि मुनिश्री के परामर्श पर उन्होंने रायपुर जाने का कार्यक्रम बना लिया था, पर मध्य प्रदेश सरकार की असहमति के कारण जा नही सके। अस्तु, व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध समाजगत भी होते हैं, पर वे इतने नही निभाये जा सकते, जितने कि श्री सुखाडियाजी ने दो वर्षों की अवधि मे ही मुनिश्री से निभाये। इसका आधार मैं इतना ही मानता हूँ कि दोनों ही व्यक्ति हृदय देकर सौहार्द की पहल करने वाले थे।

जिस समय श्री सुखाडियाजी मुख्यमन्त्री-पद से मुक्त हुए, समाचार पत्रो मे तरह-तरह की भ्रातिया खडी हो रही थी। प्रधानमन्त्री उनसे नाराज हैं, अत. हटा दिया गया है, आदि-आदि। मुनिश्री ने स्वय एक दिन श्रीमती इन्दिरा गाधी से ही इस विषय मे बात की। इन्दिराजी ने कहा—वे स्वय पद मुक्त हुए हैं। मैंने उनको इसके लिए बाध्य नही किया है। मुनिश्री ने कहा—तब आप सार्वजनिक रूप से इस बात का स्पष्टीकरण ही क्यो नही कर देती, ताकि अकारण ही उनके प्रति भ्रान्तिया खडी न हो। इन्दिराजी ने कहा—हम उन्हे राज्यपाल बनाने जा रहे है, अत भ्रान्तिया स्वत समाप्त हो जायेगी। अस्तु, तब तक राज्यपाल बनने की बात घोषित नही हुई थी, मुनिश्री ने इन्दिराजी के मनोभाव श्री सुखाड़ियाजी को भी यथासमय बता दिये थे। श्री सुखाडियाजी के दिवगत हो जाने से उक्त सारे सस्मरण ताजे हो गये। इसी का परिणाम प्रस्तुत लेख है, इतिहास सरक्षण की दृष्टि से इसकी उपयोगिता है ही।

—o—

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०
का चातुर्मास-क्रम

विक्रम सम्वत् 1991 माघ शुक्ला पचमी को अपने 18वें वर्ष मे पूज्य गुरुदेव कालूगणी से भागवती दीक्षा ग्रहण।

सम्वत्	सन्	वर्ष	चातुर्मास	
1992	1935	18 वा	उदयपुर	पूज्य कालूगणी के साथ
1993	1936	19 ,,	गगापुर	,, ,,
1994	1937	20 ,,	बीकानेर	आचार्य तुलसी के साथ
1995	1938	21 ,,	सरदारशहर	,, ,,
1996	1939	22 ,,	बीदासर	,, ,,
1997	1940	23 ,,	लाडनू	,, ,,

अग्रगण्य चातुर्मास

1998	1941	24 वा	पडिहारा	
1999	1942	25 ,,	रतनगढ	
2000	1943	26 ,,	गगाशहर	आचार्य तुलसी के साथ
2001	1944	27 ,,	लाडनू	,, ,,
2002	1945	28 ,,	सरदारशहर	
2003	1946	29 ,,	बीदासर	
2004	1947	30 ,,	सुजानगढ़	
2005	1948	31 ,,	सरदारशहर	
2006	1949	32 ,,	जयपुर	आ० तुलसी के साथ
2007	1950	33 ,,	हासी	,, ,,
2008	1951	34 ,,	लुधियाना	
2009	1952	35 ,,	सरदारशहर	आ० तुलमी के साथ
2010	1953	36 ,,	दिल्ली	
2011	1954	37 ,,	जयपुर	
2012	1955	38 ,,	बम्बई	
2013	1956	39 ,,	,,	

2014	1957	40 वा	दिल्ली	
2015	1958	41 ,,	पटना	
2016	1959	42 ,,	कलकत्ता	आ० तुलसी के साथ
2017	1960	43 ,,	दिल्ली	
2018	1961	44 ,,	,,	
2019	1962	45 ,,	सरदारशहर	
2020	1963	46 ,,	राजनगर	
2021	1964	47 ,,	बीकानेर	
2022	1965	48 ,,	सरदारशहर	
2023	1966	49 ,,	जयपुर	
2024	1967	50 ,,	जयपुर	
2025	1968	51 ,,	अहमदाबाद	
2026	1969	52 ,,	बम्बई	
2027	1970	53 ,,	दिल्ली	
2028	1971	54 ,,	,,	
2029	1972	55 ,,	,,	
2030	1973	56 ,,	चूरू	
2031	1974	57 ,,	शादुलपुर	
2032	1975	58 ,,	जयपुर	आ० तुलसी के साथ
2033	1976	59 ,,	सरदारशहर	,, ,,

अभिनिष्क्रमण के पश्चात्

2034	1977	60 वा	कलकत्ता
2035	1978	61 ,,	,,
5036	1979	62 ,,	,,
2037	1980	63 ,,	,,
2038	1981	64 ,,	,,
2039	1982	65 ,,	,,
2040	1983	66 ,,	दिल्ली
2041	1984	67 ,,	,,
2042	1985	68 ,,	कलकत्ता
2043	1986	69 ,,	दिल्ली
2044	1987	70 ,,	,,
2045	1988	71 "	,,

लेखक की अन्य कृतियां

हिन्दी

1 आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, खण्ड-1, 2
3. आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, खण्ड-3 (प्रकाशनाधीन)
4, अहिंसा विवेक
5 नैतिक विज्ञान
6 अहिंसा पर्यवेक्षण
7 जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान
8 नया युग नया दर्शन
9 अहिंसा के अचल मे
10 आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी
11 अणु से पूर्ण की ओर
12 प्रेरणा-दीप
13 नवीन समाज-व्यवस्था मे दान और दया
14, यथार्थ के परिपार्श्व मे
15 महावीर और बुद्ध की समसामयिकता
16 युग प्रवर्त्तक भगवान् महावीर
17 मन के द्वन्द्व शब्दो की कारा
18 सत्य मजिल समीक्षा राह
19 अणुव्रत जीवन-दर्शन
20 अणुव्रत विचार
21 सर्वधर्म सदभाव
22 अणुव्रत दिग्दर्शन
23 अणुव्रत-क्रान्ति के बढ़ते चरण
24 अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग
25 अणुव्रत-दृष्टि
26 अणुव्रत आन्दोलन
27 मजिल की ओर
28 तेरापथ दिग्दर्शन
29 युगधर्म तेरापथ

30 तेरापथ शासन प्रणाली
31 मर्यादा-महोत्सव इतिहास और परिचय
32 बाल-दीक्षा . एक विवेचन
33 आचार्य श्री तुलसी : एक अध्ययन

संस्कृत

34 भिक्षु चरित्रम्
35 माथेरान् सुषमा
36 भक्तेरुवनय
37 आशु काव्यानि
38 नीति नीलोत्पलानि
39 ललितांग चरित्रम्

अंग्रेजी

1 Agama and Tripitaka a Comparative Study, Vol-I
2 Theory Relativity and Syadyad
3 Jain Philosophy and Modern Science
4 Contemporariety and Chronology of Mahavira and Budha
5 Pity and Chairity in the new Pattern of Soeiety
6 Glimpes of Anuvrat
7 Light of inspiration
8 New Age a New out Look
9 A Pen-sketch of Acharya Shri Tulsi
10 Glimpes of Terapanth
11 Strides of Anuvrat Movement
12 Anuvrat ideology

●●●

ऐतिहासिक रंगीन चित्र
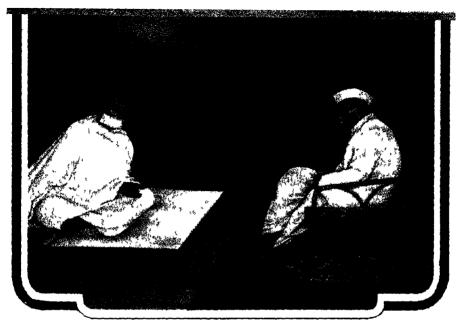
भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के साथ विचार-विनिमय करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०, सन् 1956।

विचार विनिमय--भारत के प्रथम प्रधानमंत्री प० जवाहरलाल नेहरू एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट,० सन् 1956।

प्रधानमंत्री चुने जाने के अगले दिन श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० से गम्भीर विचार-विनिमय करते हुए।

10 जनवरी 1971, विज्ञान भवन उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम के सान्निध्य मे एक **विचार-परिषद्** का कार्यक्रम समायोजित हुआ जिसमे हर्षित मुद्रा मे **उपाध्यायश्री** को प्रणाम करती हुई मुख्य अतिथि प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ।

बम्बई के अणुव्रत सभागार मे तत्कालीन उपप्रधानमत्री श्री मोरारजीभाई देशाई राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० से विचार विनिमय करते हुए सन 1969।
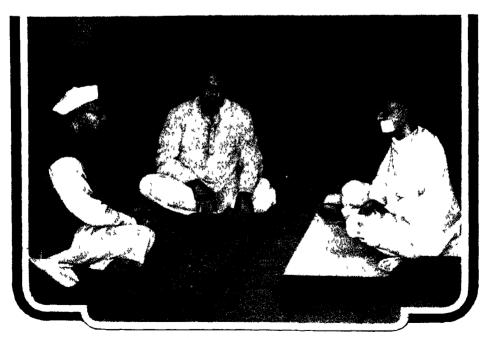
सन 1968, अहमदाबाद के सागर सदन मे राजस्थान के मुख्यमत्री श्री मोहनलाल सुखाडिया एव गुजरात के मुख्यमत्री श्री हितेन्द्र देशाई राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० से विचार-विनिमय करते हुए।

प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी एव ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी के साथ एकान्त वार्तालाप करते हुए 25 अक्तूबर 1984 अर्थात निधन से छ दिन पूर्व ।

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० द्वारा सस्थापित राष्ट्रीय एकता समिति का उद्‌घाटन भाषण करती हुई स्व० प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी जिसमे दिल्ली व बाहर के अनेक गणमान्य लोगों ने भाग लिया ।

राष्ट्रीय एकता समिति के उदघाटन समारोह मे स्व० प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के पश्चात भाषण करते हुए समिति के सस्थापक राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी ।

11 अगस्त 1987, राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० द्वारा लिखित आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन खण्ड- 1 के द्वितीय सस्करण का विमोचन करते हुए प्रधानमत्री श्री राजीव गाधी । बाईं ओर खड़े हैं युवामनीषी मुनिश्री रूपचन्द्रजी ।

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी के आगम और त्रिपिटक एक अनुशील खण्ड- I के अग्रेजी सस्करण का विमोचन करते राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह । बाई ओर खडे हैं मुनिश्री मानमलजी ।

राष्ट्रपति भवन के ग्रन्थ-विमोचन-समारोह मे गणमान्य लोगो को उपस्थिति का एक दृश्य ।
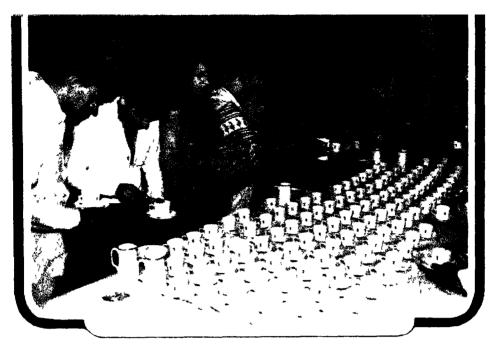
ग्रन्थ विमोचन समारोह के अनन्तर राष्ट्रपति भवन की ओर से अतिथियो के सम्मान मे अल्पहार कार्यक्रम ।

राष्ट्रपति भवन के अल्पाहार कार्यक्रम का दूसरा दृश्य ।

नव निर्वाचित राष्ट्रपति श्री आर० वेकटरामन राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी से मगल-पाठ श्रवण करते हुए। एक ओर युवा मनीषी मुनिश्री रूपचन्द्रजी आदि सन्त खडे हैं तथा दूसरी ओर जैन समाज के अग्रणी श्री पन्नालाल नाहटा डॉ० बी० एस० जैन श्री दौलत सिह जैन।

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्० के सान्निध्य मे उपराष्ट्रपति डॉ० शकरदयाल शर्मा ने युवामनीषी मुनिश्री रूपचन्द्रजी की 'तलाश एक सूरज की पुस्तक का विमोचन किया।

सन 1987 के तेरापथ व खरतरगच्छ के सुयुक्त पर्युषण पर्व मे भगवान महावीर के जन्म-समारोह का एक दृश्य।

दिगम्बर समाज के आचार्यश्री विद्यानन्दजी एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० के वार्तालाप का एक दृश्य। साथ में मुनिश्री मानमलजी एव श्री प्रेमचन्दजी जैन (शाकाहार) भी दिखाई दे रहे हैं।

राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह मुनिश्री रूपचन्दजी की सुना है मैंने आयुष्मन आदि पुस्तको का मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे विमोचन करते हुए । साथ मे बैठे हैं मुनिश्री मानमलजी ।

मुनिश्री नगराजजी को प्रदत ब्रह्मर्षि के अलकरण समारोह मे मुख्यत दिखाई दे रहे हैं बाये से नेपाल के भू० पू० प्रधानमत्री श्री रिजाल श्री कमलापति त्रिपाठी जस्टिस श्री कुदाल राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी एव आचार्य पुष्पराजजी ।

ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह को आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पुस्तक समर्पित करते हुए ।

महामन्डलेश्वर श्री वेदव्यासानन्द जी व राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० । साथ मे हैं स्वतन्त्रता सेनानी डा० मदन मोहन चोपडा।

ब्रहमाकुमारियो के सम्मेलन मे मुनिश्री नगराजजी भाषण करते हुए । पास मे बैठी हैं प्रमुखा दादी प्रकाशमाणि एव दिल्ली केन्द्र की प्रमुखा हृदय मोहिनी ।

दिल्ली की उप महापौर श्रीमती अजना कवर एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी एक विचार परिषद् मे।

दिल्ली के मौर्य होटल मे इण्डिया फाउण्डेशन की ओर से श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता मे भारत सुन्दरी सम्मेलन समायोजित हुआ। चित्र मे मुनिश्री नगराजजी से मगल-पाठ श्रवण हेतु करने आए हैं– मेहता दम्पत्ति एव सुश्री विनीता वासन और रेखा हाण्डे।

जन श्वे तेरापथी महिला समाज कलकत्ता के वार्षिक अधिवेशन का एक दृश्य। मच पर दिखलाई पड रहे हैं– मुनिजनो के अतिरिक्त निगम पार्षद श्री शान्तिलाल मिन्नी श्रीमती राधा भालोटिया श्रीमती मानीदेवी बाठिया श्रीमती चाद देवी सेठिया श्रीमती गायत्री देवी फाफरिया एव पीछे श्रीमती तीजा देवी दूगड एव तेरापथ ट्रष्ट के प्रधान ट्रस्टी श्री बच्छराज डागा।

उक्त अधिवेशन के मुख्य अतिथि कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एव सासद श्री एस पी मित्रा को विदाई देती हुई श्रीमती चाद देवी सेठिया एव श्रीमती तीजा देवी दूगड। साथ मे है श्री भुहर सिह जैन।

भगवान महावीर जयन्ती के उपलक्ष मे राष्ट्रीय एकता दिवस राष्ट्रपति को माल्यार्पण करते हुए समाजसेवी श्री पन्नालाल मेहता। साथ मे हैं – कार्यक्रम के स्वागताध्यक्ष श्री रिखबचन्द जैन।

राष्ट्रीय एकता समिति के उद्घाटन समारोह मे समिति के उपाध्यक्ष डा बी एस जैन प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी को साहित्यिक कृति भेट करते हुए।

तलाश एक सूरज की पुस्तक के विमोचन समारोह मे उपराष्ट्रपति डा शकरदयाल शर्मा को माल्यार्पण करते हुए स्वागताध्यक्ष श्री चादरतन दस्साणी।

ग्रन्थ विमोचन-समारोह मे भाषण करते हुए राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिह तथा पास मे खडे हैं - कार्यक्रम के सयोजक श्री तेजकरण सुराणा।
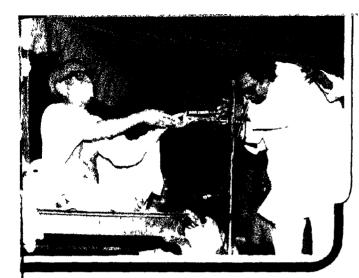
विश्रुत गायक श्री रवीन्द जैन को मुनिश्री नगराजजी ग्रन्थ प्रदान कर रहेहैं ।

आकस्मिक मिलन का अपूर्व आनन्द ।
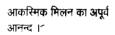
काग्रेस के वरिष्ठ नेता श्री उमाशंकर दीक्षित के जन्म-दिवस पर मुनिश्री नगराजजी श्री दीक्षितजी एव तत्कालीन वित्तमत्री श्री वी पी सिह से वार्तालाप करते हुए ।

ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी को राष्ट्रपति भवन के ग्रन्थ-विमोचन कार्यक्रम मे श्रमणरत्न एव अग्रगण्य की उपाधि से सम्मानित किया गया। अभिनन्दन-पत्र भेट करके ज्ञानी जैलसिह उन्हे भावभीनी बधाई देते हुए। बीच मे बैठे हैं मुनिश्री नगराजजी।

प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र कुमार एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी।

अर्हत सघ के कार्यक्रम मे भाषण करते हुए मुनिश्री नगराजजी। अन्य हैं – डा० राजेन्द्र कुमारी वाजपेयी श्री सुशील मुनिजी, श्री नरसिहराव शाहू श्रीमती इन्दु जैन।

इन्टरनेशनल जैन कॉन्फ्रेस विज्ञान भवन, नई दिल्ली के एक दृश्य में दायें से मुनिश्री नगराजजी आचार्य सुशील कुमारजी, केन्द्रीय मत्री श्रीमती मोहसिना किदवई श्री पी० एन० गाडगिल

अर्हत जैन सघ के कार्यक्रम मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह के साथ वार्तालाप करते हुए मुनिश्री नगराजजी एव श्री सुशील मुनिजी।

राष्ट्रीय एकता समिति के कार्यक्रम मे माल्यार्पण के पश्चात् राष्ट्रपति ज्ञानी श्री जैलसिह श्रीमती चन्द्रा मेहता को पितृ-वात्सल्य से आशीर्वाद प्रदान करते हुए।

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० का किशोरावस्था का एक दुर्लभ चित्र।

— श्री सुमेरमलजी भूमरमलजी दफ्तरी (सरदारशहर) के सौजन्य से।

ऐतिहासिक चित्रावलि

(ब्लैक एण्ड व्हाईट)

मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० के सान्निध्य मे राष्ट्रपति भवन के अशोका हॉल मे राष्ट्रपति भवन की ओर से समायोजित शतावधान कार्यक्रम मे प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरु अवधानकार मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' के समक्ष लैटिन भाषा का एक दुरूह वाक्य अवधान रूप मे प्रदान करते हुए। अन्य मुनि दिखलाई दे रहे है – मुनिश्री सम्पतमलजी मानमलजी हर्षचन्द्रजी आदि। २५ अक्टूबर १९५६।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद अवधानकार को सताईस अको का अवधान प्रदान करते हुए।

उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली डा राधाकृष्णन् अवधानकार मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम के समक्ष सस्कृत भाषा का एक क्लिष्ट श्लोक अवधान-रूप मे प्रस्तुत करते हुए।

राष्ट्रपति भवन के अशोका हॉल मे समायोजित अवधान समारोह की उपस्थिति का भव्य दृश्य। प्रथम पक्ति मे दाये से राजेन्द्र बाबू, प नेहरू एव डा राधाकृष्णन।
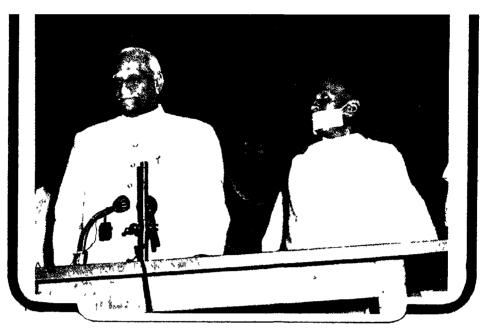
मावलकर सभागार नई दिल्ली राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे राष्ट्रीय चरित्र पर समायोजित विचार-परिषद मे मुख्य अतिथि श्री वी वी गिरि एव मुनिश्री नगराजजी जनता का अभिवादन स्वीकार करते हुए। ३ जुलाई १९७२।

राष्ट्रपति डा जाकिरहुसैन एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी विचार-विनिमय करते हुए। पास मे बैठे हैं– मुनिश्री मानमलजी एव श्री [illegible] जी बाफना।

जयपुर मे श्रृगेरी मठ के जगतगुरू शकराचार्य और श्री राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी लिट सौहार्दपूर्ण वार्तालाप करते हुए। पास मे बैठे हैं, मुनिश्री मानमलजी मुनिश्री महेन्द्रकुमारी द्वितीय एव जयपुर के प्रमुख कार्यकर्ता।

विख्यात गाधीवादी विचारक काका कालेलकर राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी से समसामयिक विषयो पर चर्चा करते हुए। काका साहब के पास खडे हैं दिल्ली जैन समाज के मुख्य प्रतिनिधि श्री सतीशकुमार जैन। 3 नवम्बर १९७२
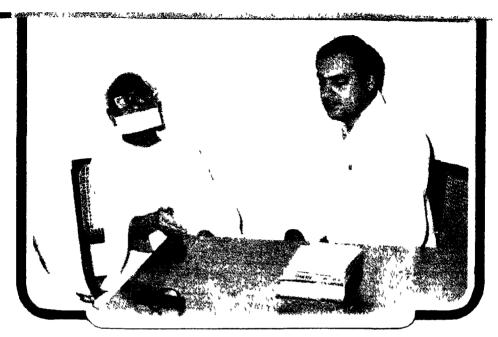
मानीय श्री राजीव गाधी और राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी गम्भीर विचार विनिमय मे।
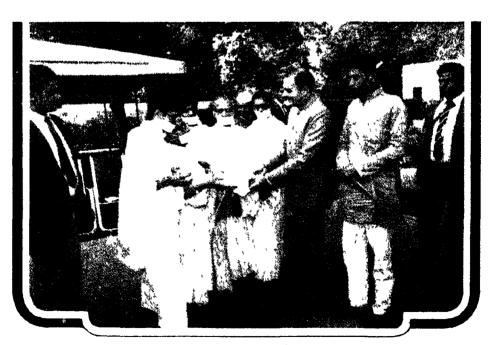
प्रधानमत्री श्री राजीव गाधी को आगम और त्रिपिटक एक अनुशलीन ग्रन्थ प्रदान करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० [illegible] मे खडे हैं मुनिश्री मानमलजी मुनिश्री प्रकाशकुमारजी आदि मुनिजन एव [illegible] स्वत।

जैन श्वे० तेरापथी महिला समाज कलकत्ता की ओर से समायोजित महिला सम्मेलन मे मुख्य अतिथि के रूप मे नोबेल शान्ति पुरस्कार व भारतरत्न आदि सम्मानो से अलकृत समाजसेवी श्री मदर टेरेसा ने मुख्य अतिथि के रूप में भाग लिया। उक्त समारोह मे राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी का अभिवन्दन करती हुई मदर टेरेसा।

कलकत्ता के महाजाति सदन मे राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० के सान्निध्य मे तेरापथ ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित महेन्द्र मुनि स्मारिका के विमोचन समारोह की उपस्थिति का एक दृश्य।

२५ अक्टूबर १९८४ राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० द्वारा सस्थापित राष्ट्रीय एकता समिति के उद्घाटन समारोह में मुनिजनों के आगमन पर भावभीना अभिवादन करती हुई प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी।

मुनिश्री नगराजजी द्वारा सस्थापित राष्ट्रीय एकता समिति के उद्घाटन समारोह मे उद्घाटन भाषण करती हुई श्रीमती [illegible]। चित्र मे मुनिजनो के अतिरिक्त मच पर दिखाई दे रहे हैं – आचार्य श्री पुष्प[illegible] [illegible] श्री कन्हैया लाल सेठिया उद्योगपति श्री जगदीश राय जैन। पीछे खडे हैं कार्यक्रम के संयोजक श्री तेजकरण सुराणा पत्रकार श्रीमती मनृहरि पाठक व पूर्व विधायक [illegible] जमूना सोलकी आदि।

राष्ट्रीय एकता समिति के उदघाटन समारोह क अन्तर्गत अभिधान राजेन्द्र शब्द कोश के सात खण्डो का विमोचन करती हुई श्रीमती इन्दिरा गाधी। साथ मे है- मुनिश्री नगराज जी एव पकाशक श्री नौरगरायजी कोन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी।

सन १९५७ मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे विराट विश्व मैत्री दिवस का कार्यक्रम रहा जिसके समायोजन मे अ भा अणुव्रत समिति के साथ सयुक्त राष्ट्रसघ (दिल्ली शाखा) आदि अनेको विदेशी सस्थाए भी सम्मिलित थी। मुख्य अतिथि के रूप मे भाषण करते हुए राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद। मुनिश्री के समीप बैठे हैं मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम ।

२८ अक्टूबर १९७२ भगवान् महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव की शृखला मे समायोजित सम्मेलन मे मुख्य अतिथि के रूप मे भाषण करते हुए रक्षामत्री श्री जगजीवन राम। अध्यक्षता कर रहे हैं शाहू शान्तिप्रसाद जैन। उनके बाई ओर मुनिश्री नगराजजी आदि मुनिजन ।

भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री अटलबिहारी वाजपेयी एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी एक गम्भीर विचार-विनिमय की मुद्रा मे । २७ जून १९८४

जयपुर मे समायोजित अणुव्रत अधिवेशन मे मुख्य अतिथि भू पू प्रधानमत्री श्री गुलजारी नन्दा मुनिश्री नगराजजी से विचार-विनिमय करते हुए । विचार-विनिमय मे सहभागी हैं श्री गोकुल भाई भट्ट एव अन्य विभिन्न स्थानो से आये हुए अणुव्रत प्रतिनिधि । दिसम्बर १९६७ ।

राजस्थान के पूर्व मुख्यमत्री व आन्ध्र के मनोनीत राज्यपाल श्री मोहनलाल सुखाडिया व राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी विचार-विनिमय करते हुए।

सन १९६७ का जयपुर चातुर्मास सम्पन्न कर मुनिश्री नगराजजी ने गुजरात की ओर प्रस्थान किया। मुख्यमत्री श्री सुखाडिया ने मुनि[illegible] विदाई-समारोह व रात्रि-विश्राम अपनी कोठी पर ही रखा। अगले दिन प्रात मुनि[illegible] मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम आदि मुनि-जनो के विहार के साथ श्री [illegible] इन्दुबाला सुखाडिया एव जयपुर के मुख्य श्रावक बन्धु दिखाई दे रहे हैं।

स्व उपराष्ट्रपति डा गोपाल स्वरूप पाठक ने टाऊन हॉल मे समायोजित एक विचार परिषद मे भाग लिया। चित्र मे डा पाठक **मुनिश्री का अ**भिवादन कर रहे है।

सन १९७२ के अग्नि-परीक्षा-प्रकरण पर मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे आयोजित विचार-परिषद् मे समर्थनात्मक भाषण करते हुए लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण।

मुनिश्री नगराजजी के कलकत्ता से वायुयान् द्वारा दिल्ली आगमन पर प्रधानमत्री भवन मे ग्रन्थ विमोचन एव अभिवादन करती हुई [illegible] श्रीमती इन्दिरा गाधी। साथ मे हैं दिल्ली के मुख्य प्रतिनिधि श्री अक्षयकुमार जैन, श्री [illegible]खचन्द नाहटा पन्नालाल नाहटा चाद रतन दस्साणी सोहनलाल बाफना [illegible] आदि।

राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० द्वारा सस्थापित राष्ट्रीय एकता समिति के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन मे महरौली के गुड़[illegible]ान मे सस्थापित भगवान महावीर की आद्वितीय प्रतिमा का एक चित्र मुनि[illegible]पति ज्ञानी जैलसिह को भेट करवाते हुए मूर्ति के सस्थापक श्री प्रेमचन्द [illegible]।

सन १९७८ राजस्थान क मुख्यमत्री श्री भैरोसिह शेखावत ने मुनिश्री नगराजजी एव मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी प्रथम क सान्निध्य मे समायोजित कार्यक्रम म मुख्य अतिथि के रूप मे भाग लिया। जाते समय मुनिश्री से मगल-पाठ सुनते हुए श्री शेखावत।

तेरापथ ट्रस्ट कलकत्ता द्वारा मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे स्व उपाध्याय मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी प्रथम की स्मृति मे स्टार थियेटर में आयोजित एक समारोह की उपस्थिति का एक दृश्य। कार्यक्रम के अनन्तर कलाकार श्रीमती तारा घेलाणी द्वारा निर्देशित चन्दन बाला और भगवान महावीर नृत्य-नाटिका का मंचन हुआ।

दिल्ली से कलकत्ता की ओर प्रस्थान करने के प्रसग पर मुनिश्री नगराजजी ने मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी प्रथम को प्रधानमत्री भवन से विदाई दिलवाई। विदाई भाषण करती हुई प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी। चित्र में मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी प्रथम मुनिश्री विनयकुमारजी व सेठ श्री रामलालजी [illegible] आदि दिखाई दे रहे हैं। सन १९७२।

दिल्ली के सदर बाजार की एक विशाल सभा मे मुख्य अतिथि गृहमत्री श्री उमा शकर दीक्षित एव मुनिश्री नगराजजी विचार-विनि[illegible]। साथ मे हैं मुनिश्री मानमल जी।

दिल्ली के कठोतिया भवन मे एक शिक्षित अमेरिकन युवक ने जैन सा साधु-चर्या प्रयोगात्मक रूप से अनुभव करने के लिए सात दिनों की दीक्षा मुनिश्री नगराजजी से ग्रहण की जिसकी दैनिक पत्र-पत्रिकाओ मे व्यापक चर्चा रही। सन् १९६१।

दिल्ली के नया बाजार स्थित श्री वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन मे मुनिश्री नगराजजी से विचार-चर्चा करते हुए जयपुर की महा[illegible] [illegible] [illegible]यत्री देवी एव बीकानेर के महाराजा डा करणी सिह।

प्रफुल्लित हरियाली की छाया के शान्त वातावरण मे एकान्त वार्तालाप – माननीय श्री राजीव गाधी मुनिश्री नगराजजी मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ।

राजस्थान के मुख्यमत्री श्री शिवचरण माथुर ने पहाडीधीरज दिल्ली मे मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० के दर्शन किए व एकान्त वार्ता

एकान्त वार्तालाप के अनन्तर भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश श्री पी० एन० भगवती को आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पुस्तक प्रदान करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विधिवेत्ता डा एल एम सिघवी एव राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० एक गम्भीर विचार-चर्चा की मुद्रा में।

मुनिश्री नगराजजी के सान्निध्य मे समायोजित मैं कहता आखन देखी आदि पुस्तको के विमोचन समारोह मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह लेखक मुनिश्री रूपचन्दजी एव साहित्यकार श्री अक्षयकुमार जैन।
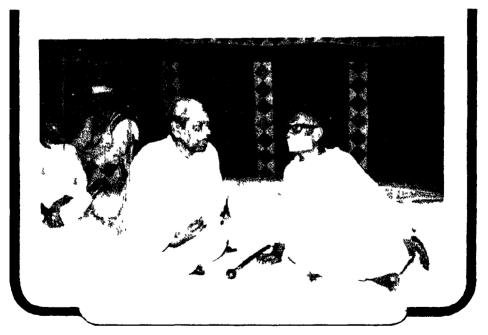
राष्ट्र कवि श्री भवानी शकर मिश्र एवं मुनिश्री नगराजजी विचार-विनिमय की मुद्रा मे।

नई दिल्ली अ[illegible] जैन कान्फ्रेंस विज्ञान भवन में मुनिश्री [illegible]राज जी का अभिवादन करते हुए स्वागताध्यक्ष [illegible] श्री श्रेयांसप्रसाद जैन।

विश्व धर्मायतन द्वारा हरिद्वार मे कुम्भ पर्व के अवसर पर समायोजित विशाल समागम मे भाषण करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट०। मच पर एक ओर बैठे है पूर्व विदेश सचिव श्री रमेश भण्डारी एव सिने कलाकार व अन्य अवस्थित है – श्री चन्द स्वामी आदि योगी सन्यासी एव महामण्डलेश्वर आदि।

कुम्भ पर्व के उसी समारोह मे श्री चन्द्र स्वामी द्वारा पर्व के प्रतीक मगल कुम्भ सिने कलाकारो को भेट किये गये। क्रमश बाये से श्रीमती हेमामालिनी श्री दारासिह श्री विनोद मेहरा।

सघ प्रवर्तिनी साध्वी श्री मजुलाश्रीजी दिल्ली आगमन के उपलक्ष मे समायोजित अपने स्वागत समारोह मे भाषण करती हुई। [illegible] है – उप महापौर श्रीमती अजना कवर साहित्यकार डा अमृता प्रीतम प्रमु[illegible]नोदकुमार मिश्र मुनिश्री नगराजजी मुनिश्री रूपचन्दजी।

सघ प्रवर्त्तिनी साध्वीश्री मजुलाश्रीजी के स्वागत कार्यक्रम म उपस्थित है– अग्रगण्या साध्वीश्री मजुश्रीजी साध्वीश्री भावनाश्रीजी, साध्वीश्री चान्दकवरजी साध्वीश्री दीपाजी।

महाजाति सदन कलकत्ता महेन्द्र मुनि स्मारिका-विमोचन-समारोह के मच का एक दृश्य। दिखलाई पड रहे हैं – मुनि[illegible] आदि सन्तो के अतिरिक्त क्रमश श्री सीताराम भियानीवाला श्री कानमल[illegible] श्री [illegible]चन्द भूतोडिया श्री विजय सिह नाहर श्री बी आर भण्डारी एव श्री सम्प[illegible] खडे हैं श्री विश्वनाथ लहारीवाला।

२८ जून १९८६ दिल्ली के लालकिला परेड मैदान मे समायोजित एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के आचार्य पद-प्रतिष्ठापना समारोह मे सम्भाषण करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट०। मच पर दिखाई दे रहे हैं—मुनिश्री रुपचन्दजी मुनिश्री मानमलजी दिगम्बर समाज के त्यागी वृन्द एव श्रावक प्रतिनिधि।

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी के आचार्य-पद-प्रतिष्ठापना-समारोह की विशाल उपस्थिति का एक ओर का दृश्य।

दिल्ली के विशाल गांधी ग्राउण्ड मे अ भा अणुव्रत समिति व यूनेस्को (दिल्ली शाखा) आदि अनेको अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओ की ओर से राष्ट्रपति डा **राजेन्द्रप्रसाद** की अध्यक्षता मे तथा मुनिश्री नगराजजी डी०लिट० के सान्निध्य मे **विश्व मैत्री दिवस** मनाया गया। चित्र मे डा राजेन्द्र बाबू की अगवानी करते हुए श्री कन्हैया लाल **दूगड़ (सरदारशहर) श्री** मोहनलाल कठोतिया श्री फतह कुमार आदि प्रतिनिधिगण।

दिल्ली के तत्कालीन महापौर लाला हंसराज गुप्ता मुनिश्री नगराजजी से आवश्यक विचार-विमर्श करते हुए।

१३ दिसम्बर १९५६ स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू प्रथम बार अणुव्रत सभा सप्रू हाऊस मे। पट्ट पर अवस्थित है आचार्य श्री तुलसी व सम्भाषण कर रहे है कार्यक्रम के समायोजक मुनिश्री नगराजजी। मच पर साधु-समुदाय के अतिरिक्त प० नेहरू के पास श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल व श्री गोपीनाथ अमन भी बैठे दिखाई दे रहे है।

राष्ट्रपति भवन के मुगल गार्डन मे प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की ओर से स्वागत कार्यक्रम। सयोजकीय भाषण कर रहे हैं, मुनिश्री नगराजजी।

राजस्थान विश्व विद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति श्री एम बी माथुर मुनिश्री नगराजजी व मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी द्वितीय को बता रहे हैं कि प्रो अलबर्ट आईस्टीन ने साक्षात् वार्तालाप मे मुझे बताया कि थियोरी ऑफ रिलेटीविटी के आधारभूत बीज मुझे भारतीय दर्शन मे मिले थे।

मुनिश्री नगराजजी स्पिरिचुअल सेन्टर क कार्यक्रम मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिह को बैज लगाते हुए युवा प्रतिनिधि श्री उम्मेद कुमार दूगड़।

राष्ट्रपति भवन के मुगल गार्डन मे अणुव्रतो का बीजारोपण। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद व मुनिश्री नगराजजी अणुव्रत चर्चा मे लीन।

प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी के साथ एक वार्ता-प्रसग। बाई ओर से बैठे हैं समाजसेवी श्री डूगरमल सुराणा मुनिश्री मानमलजी, मुनिश्री नगराजजी अपनी साहित्यिक कृतियो का सेट भेट कर रहे हैं कविवर श्री कन्हैयालाल सेठिया, अन्य दिखाई दे रहे हैं पत्रकार श्रीमती मनुहरि पाठक एव श्री हरि पाठक, श्री विनयप्रकाश सेठिया।
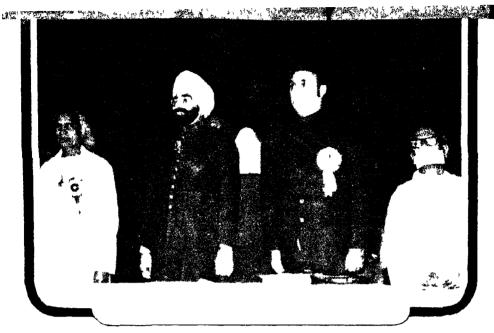
एकविश्व सदभावना परिषद् की ओर फिक्की सभागार मे समायोजित वार्षिक अधिवेशन का एक दृश्य। राष्ट्रगान के समय दाए से क्रमश राष्ट्र सन्त मुनिश्री नगराजजी डी० लिट० पूर्व केन्द्रीय मत्री डा० करण सिह राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिह व समायोजक आचार्य श्री पुष्पराजजी।

जयपुर के कला मण्डल सभागार मे समायोजित एक विशेष कार्यक्रम मे बाए से क्रमश मुनिश्री नगराजजी मुख्यमत्री श्री सुखाडिया उपकुलपति मुख्य न्यायाधीश श्री चन्दनमल बैद श्री राजमल सुराणा। सम्भाषण कर रहे हैं, श्री सम्पतकुमार गधैया।

जयपुर ३० जुलाई १९६६ के विराट जैन सम्मेलन मे आचार्य श्री देशभूषणजी म एव मुनिश्री नगराजजी एव मेवाड केशरी मुनिश्री विशाल विजयजी आदि त्यागीवृन्द।

माननीय श्री चन्द्रस्वामी द्वारा सस्थापित विश्व धर्मायतन आश्रम के शिलान्यास समारोह मे भाषण करते हुए राष्ट्रसन्त मुनिश्री [illegible] मच पर दिखाई दे रहे हैं माननीय श्री चन्द्रस्वामी मुनिश्री जयानन्दजी [illegible] श्री अर्जुनपुरीजी आदि अनेकानेक सन्तगण।
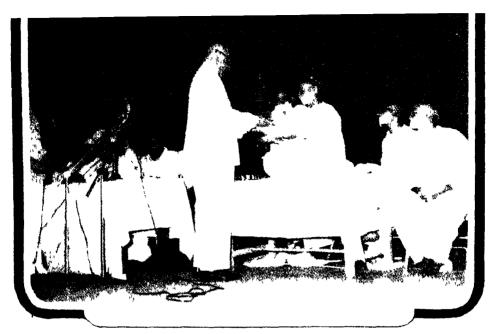
सन १९६९ कानपुर विश्व विद्यालय द्वारा प्रदत्त डी. लिट. का प्रमाण पत्र बम्बई के बिड़ला क्रीडाकेन्द्र मे महाराष्ट्र के **राज्यपाल श्री** चेरियन मुनिश्री नगराजजी को समर्पित करते हुए। मंच पर बैठे हैं कानपुर **विश्व विद्यालय** के उप कुलपति श्री [illegible] किशोर।
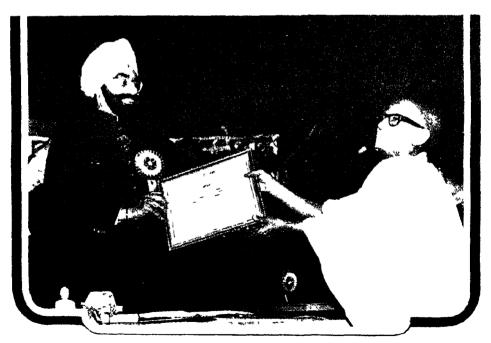
१८ जनवरी १९८४ को एकविश्व सद्भावना परिषद की ओर से फिक्की सभागार मे समायोजित कार्यक्रम मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह मुनिश्री नगराजजी को सदभावना रत्न की उपाधि प्रदान करते हुए।

युगप्रधान समारोह के निर्धारित कार्यक्रम को अन्तिम रूप देने की मुद्रा मे आचार्य श्री तुलसी एव मुनिश्री नगराजजी।

मुनिश्री नगराजजी द्वारा युगप्रधान पद दिये जाने की घोषणा के साथ ही जनता मे होने वाले हर्ष-ध्वनि-मय कोलाहल को शान्त करते हुए आचार्य श्री तुलसी एव मुनिश्री नगराजजी।

विख्यात बौद्ध भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायन व राष्ट्रसन्त मुनिश्री नगराजजी डी लिट विचार-विनिमय मे। साथ बैठे हैं– मुनिश्री हनुमानमलजी एव मुनिश्री मानमलजी।

सन १९६९ गुजरात के राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण द्वारा मुनिश्री नगराजजी के बम्बई से अहमदाबाद आगमन के उपलक्ष मे राजभवन में अहिसा व विश्व शान्ति विषय पर आयोजित सगोष्ठी मे भाग लेने जा रहे हैं गुजरात के महामान्य सर्वोदयी नेता दादा रविशकर एव मुनिश्री नगराजजी।

३० दिसम्बर १९८६ राष्ट्रपति भवन मे समयोजित ग्रन्थ विमोचन-समारोह मे ज्योतिर्विद मुनिश्री मानमलजी को अग्रगण्य एव 'श्रमणरत्न की उपाधि से सम्मानित किया गया। अभिनन्दन-पत्र प्रदान कर रहे हैं राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह। पास मे है मुनिश्री नगराजजी।

२७ मई १९८७ गाधी मेमोरियल सभागार मे अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष सम्मेलन मे दिल्ली की उप महापौर श्रीमती अजना कवर द्वारा मुनिश्री मानमलजी को ज्योतिषरत्न की उपाधि स अलकृत किया गया।

भगवान महावीर की २५०० वी निर्वाण-जयन्ती की प्रथम बैठक [illegible] श्रीमती इन्दिरा गाधी की अध्यक्षता मे आयोजित की गई जिसमे पूरे देश [illegible] जैन प्रतिनिधियो ने एव भारत सरकार द्वारा निर्धारित कतिपय विशेषज्ञ [illegible] ने भाग लिया। चित्र मे श्रीमती गाधी के दाई ओर शिक्षामत्री के अनन्तर [illegible] है मुनिश्री नगराजजी मुनिश्री सुशीलकुमारजी एवं मुनिश्री महेन्द्रकुमार [illegible]।

५ अगस्त १९८६ फिक्की सभागार मे मान्य सनातन सस्थाओ द्वारा समायोजित विशाल कार्यक्रम मे नेपाल के पूर्व प्रधानमत्री एव विश्व हिन्दु परिषद के अध्यक्ष श्री रिजाल मुनिश्री [illegible]गराजजी को ब्रह्मर्षि उपाधि का प्रशस्ति-पत्र प्रदान करते हुए।

सनातन धर्म सभाओ के उसी कार्यक्रम मे कॉग्रेस के वयोवृद्ध नेता श्री कमलापति त्रिपाठी ब्रह्मर्षि उपाधि की शील्ड मुनिश्री नगराजजी को प्रदान करते हुए। साथ मे खडे है मुनिश्री मानमलजी।

२९ दिसम्बर १९८६ अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन मे राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिह एव कश्मीर के महाराजा डा कर्णसिह मुनिश्री नगराजजी को 'योग शिरोमणि' की उपाधि प्रदान करते हुए।

२७ मई १९८७ गाधी मेमोरियल हॉल मे अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष सम्मेलन मे दिल्ली की उप-महापौर श्रीमती अजना कवर 'साहित्य मनीषी' की उपाधि पत्र मुनिश्री नगराजजी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए।